# अमरकोष का कोषशास्त्रीय तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन

# AMARAKOSA

## ( A LEXICOGRAPHICAL & LINGUISTIC STUDY )

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा राष्ट्रभारती ग्रन्थमाला

६

# अमरकोष का कोषशास्त्रीय तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन

## AMARAKOṢA

( A Lexicographical and Linguistic Study )

लेखक—

डॉ० कैलाशचन्द्र त्रिपाठी

एम० ए०, डी० फिल्०

प्राध्यापक एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

राजकीय महाविद्यालय, चन्दौली ( वाराणसी )

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

डॉ॰ सुबोध:

प्रकाशक
**चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन**
(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन
पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001
दूरभाष : 2335263
ई-मेल : csp_naveen@yahoo.co.in

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन
पुर्नमुद्रित संस्करण 2008
मूल्य : 100.00

अन्य प्राप्तिस्थान
**चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस**
4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)
गली नं. 21-ए, अंसारी रोड
दरियागंज, नई दिल्ली 110002
दूरभाष : 23286537

**चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान**
38 यू. ए, बंगलो रोड, जवाहर नगर
पो. बा. नं. 2113
दिल्ली 110007
दूरभाष : 23856391

**चौखम्बा विद्याभवन**
चौक (बैंक ऑफ बड़ोदा भवन के पीछे)
पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001
दूरभाष: 2420404

**मुद्रक**
डीलक्स ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-110027

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रथम अध्याय

# भूमिका

## कोष का महत्त्व

एक प्राचीन श्लोक में शब्दार्थ के ज्ञान के लिए व्याकरण, उपमान, कोष, आप्तवाक्य, व्यवहार, वाक्यशेष, विवृति और सान्निध्य—ये अनेक उपाय बताये हैं।[1] इन विविध उपायों में कोष का महत्त्व अति प्राचीनकाल से ही सुप्रतिष्ठित है और इसके लिए विशेष तर्क देने की आवश्यकता नहीं है। कोष (कोश) शब्द[2] सामान्यतः जनसमाज में उस ग्रन्थ के अर्थ में प्रयुक्त होता है, जिसमें शब्द इस प्रकार से संकलित किए गए हों कि उनके अर्थ का बोध सरलतया हो सके। यों कोष शब्द अनेकार्थी है[3] और उपर्युक्त अर्थ

१. शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्यात् व्यवहारतश्च,
वाक्यस्य शेषाद् विवृतेर्वदन्ति सान्निध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।
—श्लोक २०, शब्दशक्तिप्रकाशिका में जगदीश द्वारा उद्धृत एक प्राचीन श्लोक।

२. प्रस्तुत अर्थ में यह दोनों रूपों में प्राप्त होता है, परन्तु मूर्द्धन्यमध्य अधिक संगत प्रतीत होता है।
'कोषोऽस्त्री कुड्मले पात्रे पेश्यां शब्दादिसंग्रहे।
जातिकोशोऽर्थसंघाते दिव्ये खड्गपिधानके। 'इति मूर्द्धन्यान्तो मेदिनी' तालव्यान्तोऽप्ययम्।" भानुजि० अमर० २।५।३७ पर व्याख्या 'सुधा' टीका।
"मूर्द्धन्यमध्यस्तु अभिधानरूपे ७ शब्दपर्यायज्ञापनग्रंथे मेदिनी" वाचस्पत्यम् खंड ३, पृ० २२६८।
"कोषकार—कोषं अर्थैः सह शब्दसंयोजनरूपग्रंथविशेषं करोतीति। अभिधानकर्ता च।" शब्दकल्पद्रुम द्वितीयकांड; पृ० २०४।
यद्यपि हिन्दी विश्वकोष के प्रधान संपादक तथा भाषावैज्ञानिक डा० धीरेन्द्र वर्मा के अभिमतानुसार 'कोश' शब्द 'शब्दकोश' तथा 'कोष' शब्द 'निधि' के लिए प्रयुक्त होना चाहिए, फिर भी प्राचीन संस्कृत कोषों में मूर्द्धन्यमध्य की ही प्रधानता होने के कारण इस शोधप्रबन्ध में सर्वत्र इसी रूप का प्रयोग किया गया है। यदि भूलवश कहीं तालव्यमध्य रूप मिले भी तो वह सर्वथा क्षम्य है।

३. आवरणविशेष—यथा भागवते २।१।३४
अव्यक्तमाऽऽहुर्हृदयं मनश्च

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में इसका प्रयोग संस्कृत में पर्याप्त परवर्ती काल में हुआ जान पड़ता है, क्योंकि स्वयं अमरकोष में 'कोश' अथवा 'कोष' शब्द का यह अर्थ प्राप्त नहीं होता[1] और स्वयं अमरसिंह ने भी अपने कोष को कोष नाम न देकर 'नामलिंगानुशासन' नाम दिया है। अर्थज्ञान के प्रयोजन से पर्यायवाची शब्दों के संकलन की प्राचीन संज्ञा 'निघण्टु' है, जो कि वैदिक पर्यायवाचियों के उस संकलन का भी नाम है जो यास्क के निरुक्त के साथ सम्बद्ध है। पर्यायवाची शब्दसंग्रह के अर्थ में 'कोष' शब्द का प्रयोग सबसे पहले सम्भवत: पुरुषोत्तमदेव ने अपने 'त्रिकाण्डशेष' कोष में किया[2] और इसके बाद तो यह

---

स चन्द्रमा: सर्वविकारकोश: ।

मुकुल—यथा रघौ ३।८

तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयो:
सुजातयो: पंकजकोशयो: श्रियम् ।

अर्थसमूह—यथा रघौ ५।१

तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं
नि:शेषविश्राणितकोशजातम् ।

शब्दादिसंग्रह: । इति मेदिनी ६।१० ( यथा अमरकोष: )

शब्दकल्पद्रुम द्वितीय काण्ड, पृ० २०४–२०५ ।

ऋषिभेदे । 'अथो ह कोषा धावयन्त:' शत० ब्रा० १०।५।५।८ वाचस्पत्यम् खंड ३ पृ० २२७३ ।

कोषोऽस्त्री कुड्मले दिव्ये शास्त्रेऽर्थौघे गृहे तनौ ।१५।
गुह्येऽण्डे वेष्टके पेश्यां पुस्तकासिपिधानयो:····।१६।

यादवप्रकाशकृत 'वैजयन्ती' नानालिंगाध्याय, द्व्यक्षरकाण्ड, अर्थौघो भाण्डागारं, दिव्यं शपथ: । योन्यां पात्रविशेषेऽपि । अमरकोश ३।३।२२२ पर क्षीरस्वामीटीका । कूप या अवत से जल खींचनेवाला ढोल–ऋग्वेद १।१३०।२,३।३१।१६,४।१७।६ सूर्यकान्त वैदिक कोष:', पृ० ११० ।

Store-room, store, provisions, accumulated wealth (gold or silver wrought or unwrought, as plate jewellery etc. )

Monier Williams p.314.

१. 'पेशी कोशो द्विहीनेऽण्डम्' अमर० २।५।३७
'स्यात्कोशं च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते ।' अमर० २।९।९१
'कोषोऽस्त्री कुड्मले खड्गपिधानेऽर्थौघदिव्ययो: ।' अमर० ३।३।२२१

२. अलौकिकत्वादमर: स्वकोशे न यानि नामानि सुमुल्लिलेख । विलोक्य तैरप्यधुना प्रचारमयं प्रयत्न: पुरुषोत्तमस्य' ।२।

वर्गक्रमस्तथा नामलिंगयोस्तूपदेशता
परिभाषादिकं सर्वमत्राप्यमरकोषवत् ।३। प्रथमकाण्ड

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शब्द इस प्रकार के ग्रन्थों के अर्थ में रूढ़ हो गया और तब नानार्थशब्दकोष, अनेकार्थ-कोष, कल्पद्रुम-कोष इत्यादि नाम मिलने लगते हैं।

## भारतीय कोष-परंपरा

भारतवर्ष में जैसे शिक्षा, व्याकरण, छन्दोविचिति, ज्योतिष आदि विभिन्न शास्त्रों का सूत्रपात वैदिक वाङ्मय को समझने-समझाने तथा अविकलरूप से सुरक्षित रखने के प्रयत्नस्वरूप हुआ, उसी प्रकार कोषनिर्माण का क्रम भी वेदों के अर्थ-परिज्ञान में सौकर्य के लिए हुआ जान पड़ता है। निघण्टु[1] के रूप में हमें सबसे प्राचीन कोष प्राप्त होता है। निघण्टु में वैदिक पर्यायवाची शब्दों का संकलन है। यास्क ने निघण्टु के भाष्य के रूप में निरुक्त की रचना की।[2]

निघण्टु-निर्माण के इतिहास को स्पष्ट करते हुए स्वयं यास्क ने कहा है कि मंत्रद्रष्टा ऋषि साक्षात्कृतधर्मा थे। उन्होंने अपने आगे की पीढ़ियों का जो असाक्षात्कृतधर्मा थीं, उपदेश द्वारा मंत्र प्रदान किये। इन्होंने भी जब अपनी अगली पीढ़ियों को मंत्रों का उपदेश किया तो इन तीसरे स्तर के लोगों को मंत्रों के अर्थपरिज्ञान में बहुत कष्ट होने लगा। इनकी सुविधा के लिए वेद का विभाग किया गया, वेदांगों की रचना हुई और निघण्टु के रूप में वैदिक पर्यायवाची शब्दों का संकलन किया गया।[3] यास्क ने जिस निघंटु पर भाष्य की रचना की है, वह तीन काण्डों में विभक्त है—

(१) नैघण्टुक काण्ड

---

द्रष्टव्य काण्ड के अन्त की पुष्पिका 'इति त्रिकाण्डशेषकोशस्य द्वितीयः काण्डः समाप्तः।' तथा 'इति श्रीपुरुषोत्तमदेवविरचितत्रिकाण्डशेषाभिधानकोशः समाप्तः।'

पुरुषोत्तमदेवविरचित 'त्रिकाण्डशेषकोष' शीलस्कन्ध थेर 'विरचित' सारार्थ-चन्द्रिका' टीका सहित प्रकाशित, बम्बई १९१६।

१. 'निघण्टु' शब्द की व्युत्पत्ति पर विचार करते हुए यास्क ने कहा है—'निघण्टवः कस्मात्। निगमा इमे भवन्ति। छन्दोभ्यः समाहृत्य समाहृत्य समाम्नातः। ते निगन्तव एव सन्तो निगमनान्निघण्टवः उच्यन्त इत्यौपमन्यवः। अपि वा हननादेव स्युः। समाहता भवन्ति। यद्वा समाहृता भवन्ति।' इस प्रकार यास्क ने निघण्टु शब्द की व्युत्पत्ति (१) नि + गम् से (२) सम + आ + हन् से तथा (३) सम + आ + हृ धातु से प्रस्तावित की है। इनमें से 'हन्' धातु वाली व्युत्पत्ति ठीक जान पड़ती है। पाठार्थक 'हन्' धातु का प्राचीन रूप 'घन्' रहा होगा, जिससे कि नि + घन् + तु इस प्रकार 'निघंटु' शब्द व्युत्पन्न हुआ होगा।

२. निरुक्त के आरम्भ में ही यास्क ने लिखा है—'समाम्नायः समाम्नातः। स व्याख्यातव्यः।' इससे स्पष्ट है कि यास्क का निरुक्त निघंटुरूपी समाम्नाय का व्याख्यान है।

३. "साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्यो साक्षात्कृतधर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान्संप्राहुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे बिल्मग्रहणायेमं ग्रन्थं समाम्नासिषुः। वेदं च वेदांगानि च।"—निरुक्त १।२०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(२) नैगम काण्ड

(३) दैवत काण्ड

इनमें से पहले काण्ड में तीन अध्याय हैं। इन तीन अध्यायों में से पहले अध्याय में पृथ्वी, जल, वायु इत्यादि भौतिक पदार्थों के तथा मेघ, उषस्, दिवस्, रात्रि आदि प्राकृतिक पदार्थों के पर्यायवाची शब्द हैं। दूसरे अध्याय में मनुष्य के शारीरिक अंगों का तथा उससे सम्बद्ध गुणों, पदार्थों और क्रियाओ के पर्यायवाची शब्द हैं। तीसरे अध्याय में गुरुता, लघुता आदि अमूर्त पदार्थों के पर्यायवाचियों का संकलन है। नैगमकाण्ड में ऐसे शब्दों का संकलन किया गया है, जो अनेकार्थी हैं तथा दैवत-काण्ड में देवताओं के उन विभिन्न नामों का संकलन है, जो उनकी प्रधान स्तुतियों में प्राप्त होते हैं।

यास्क के निरुक्त के साथ जो निघण्टु जुड़ा हुआ है, जिसके स्वरूप का ऊपर संक्षिप्त निर्देश किया गया है, वह वस्तुतः कोई एक रचना है या अनेक निघण्टुओं का संकलन है, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। स्वयं यास्क ने 'निघण्टु' शब्द का बहुवचन में प्रयोग किया है,[1] इससे प्रतीत होता है कि उन्होंने अनेक निघण्टुओं का संकलन किया है।

निघण्टु कोष-रचना का प्रारम्भिक प्रयत्न है। इसमें जिस प्रकार पर्यायवाचियों का संकलन किया गया है, वह यद्यपि सुनियोजित तो नहीं है, तथापि पर्यायवाचियों को एक क्रम में रखने का प्रयास अवश्य है।[2]

यास्क के निरुक्त के साथ जुड़ा हुआ निघण्टु ऐसा प्रतीत होता है कि वैदिक निघण्टुओं की परम्परा में अन्तिम है। इससे पूर्व अनेक निघण्टुओं का संकलन हुआ होगा, ऐसी सूचना हमें पुराणों तथा अन्य ग्रन्थों के उल्लेखों से मिल जाती है।[3] यह निघण्टु

---

१. 'निघण्टव : कस्मात्।'

२. द्रष्टव्य—दि निघंटु एण्ड दि निरुक्त की भूमिका, पृ० १८ में डॉ० लक्ष्मण-स्वरूप की आलोचना।

३. वृषो हि भगवान् धर्मः ख्यातो लोकेषु भारत
निघण्टुकपदाख्यानं विद्धि मां वृषमुत्तमम्।
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते
तस्माद् वृषाकपिः प्राह कश्यपां मां प्रजापतिः।

—महाभारत—मोक्षधर्मपर्व अध्याय ३४२, पृ० ८६–८७।

पातंजल व्याकरण महाभाष्य में लुप्त वैदिक निघण्टु ग्रन्थों के प्रमाण—

| | |
|---|---|
| गृणतिः : | शब्दकर्मा ३।२।१४ |
| प्राति : | पूर्णकर्मा ३।४।३२ |
| दिवे : | ऐश्वर्यकर्माणः ५।१।५९ |
| दक्षे : | वृद्धिकर्मणः ५।१।५९ |

इसी प्रकार उवट के यजुर्वेदभाष्य तथा भट्ट भास्करः के तै० सं० भाष्य में लुप्त निघण्टुओं के प्रमाण 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' ( भाग १, खण्ड २, पृ० १६४–६५ ) में प्रो० भगवद्दत्त ने प्रस्तुत किए हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किस समय की रचना है, इसका निर्णय करने के लिए आज कोई प्रमाण-सामग्री नहीं है। स्वयं यास्क का समय ही विवादग्रस्त है[1], तो फिर निघण्टु के बारे में क्या कहा जा सकता है। फिर भी यास्क ने निघण्टु की रचना को वेदांगों के साथ हुआ बताया। इससे मोटे तौर पर यही कहा जा सकता है कि ईसा पूर्व की सातवीं शताब्दी में निघण्टु नामक ग्रन्थ विद्यमान रहे होंगे।

## निघण्टु और अमरकोष के बीच के कोष

आज संस्कृत के जो कोष उपलब्ध हैं, उनमें वैदिक निघण्टु के बाद अमरकोष का ही नाम आता है। परन्तु इस दोर्घकाल के मध्य में कोई कोष न बना होगा, ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती। स्वयं अमरकोषकार ने अपने कोष की प्रस्तावना में कहा है —

समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः।
संपूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिंगानुशासनम् ॥ अमर० १।२

इस कथन में 'समाहृत्यान्यतन्त्राणि' से ही विदित होता है कि अनेक प्राचीन कोषों का सहारा लेकर उनमें सुधार करते हुए अमरकोष की रचना हुई। जैसे पाणिनि की अष्टाध्यायी की लोकप्रियता के कारण उसके पूर्ववर्ती व्याकरण लुप्त हो गए, उसी प्रकार अमरकोष भी इतना लोकप्रिय हुआ कि उसके सामने उसके पूर्ववर्ती कोष टिक न पाए। परन्तु अमरकोष के अनेक टीकाकार अमरकोष के पूर्ववर्ती कोषों से परिचित जान पड़ते हैं। अमरकोष के टीकाकार सर्वानन्द ने अमरकोष के ऊपर उद्धृत श्लोक की व्याख्या करते हुए व्याडि, वररुचि के कोषों तथा त्रिकाण्ड एवं उत्पलिनी नामक कोषों का अमरकोष के पूर्व के कोषों में उल्लेख किया है।[2] दूसरे टीकाकार क्षीरस्वामी ने अमरकोष के पूर्ववर्ती कोषकारों में धन्वन्तरि और भागुरि का नाम लिया है और रत्नकोष तथा माला नामक कोषों का भी उल्लेख किया है।[3] परवर्ती कोषकार पुरुषोत्तम ने अपने

---

१. निरुक्त के बारे में आमतौर पर यह धारणा रही है कि यह पाणिनि के बहुत पहले का ग्रन्थ है और इसलिए इसका समय छठी-सातवीं शताब्दी ई० पू० होगा। परन्तु हैनेस स्कोल्ड ने (आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस में प्रकाशित) 'दि निरुक्त' में यास्क को पाणिनि के बाद का माना है।
डा० लक्ष्मणस्वरूप ने अपने निरुक्त के संस्करण की भूमिका में यास्क को ७००–५०० ई० पू० के बीच माना है। द्रष्टव्य-इण्ट्रोडक्शन टू दि निरुक्त पृ० ५३–५९।

२. 'अन्यतन्त्राणि व्याडिवररुचिप्रभृतीनां तन्त्राणि, समाहृत्य एकीकृत्य। अतएव सम्पूर्णमिदं, यतस्त्रिकाण्डोत्पलिन्यादीनि नाममात्रतन्त्राणि, व्याडिवररुच्यादिप्रणीतानि तु लिंगमात्रतन्त्राणि।' अमर० १।२ पर सर्वानन्द की टीका।

३. ये उल्लेख निम्नलिखित प्रकार से जाने जा सकते हैं—
अमरकोष २।४।९५ की टीका में क्षीरस्वामी ने अमरसिंह के द्वारा भागुरि के भ्रान्त

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हारावली नामक कोष में वाचस्पति व्याडि तथा विक्रमादित्य को भी अमरकोष का पूर्ववर्ती कोषकार बताया है,[१] जिन्होंने क्रमशः शब्दार्णव, उत्पलिनी तथा संसारावर्त नामक कोषों की रचना की थी।[२] महेश्वर ने अपने 'विश्वप्रकाश' के प्रारम्भ में वाच-

---

अनुकरण का उल्लेख 'वृहती तु निदिग्धिकेति' भागुरिवचनाद् ग्रन्थकृद् भ्रान्तः' कहकर किया है। अमरकोष की टीका ( २।४।५० ) में 'खदिर' शब्द के पर्याय 'वालतनय' को धन्वन्तरि के भ्रान्त पाठ 'बालपुत्र' के आधार पर लिया कहा गया है—'बालपत्रो यवासः खदिरश्चेति द्वयर्थेषु धन्वन्तरिपाठमदृष्ट्वा बालपुत्रभ्रान्त्या ग्रन्थकृद् बालतनयमाह।' क्षीरस्वामी टीका, के० जी० ओक, पृ० ६२ अमरकोष २।९।५१ की टीका में क्षीरस्वामी ने बताया कि मालाकार ने भागुरि को गलत पढ़ा और अमरसिंह मालाकार के पाठ से ही भ्रान्त हुआ—'एतच्च द्रप्सं शरमिति भागुरिपाठं सरमिति बुद्ध्वा मालाकृद् भ्रान्तः। केचिन्नष्टैस्तु नाशिता इत्ययमपि मालापाठेन विप्रलब्धः।' क्षीरस्वामी टीका, के० जी० ओक, पृ० १४०। अमर० १।१।४ की टीका में सर्वानन्द के अनुसार अमरकोष को लिंगविधायि पूर्ववर्ती 'रत्न-कोष' का अनुकरण करना चाहिए था—'ननु रत्नकोशादिवत् स्त्रीपुंनपुंसककाण्ड-विधानेनैव वचनमुचितम्।'—सर्वानन्द, पृ० ४, १–१९

१. शब्दार्णव उत्पलिनी संसारावर्त इत्यपि।
कोशा वाचस्पतिव्याडिविक्रमादित्यनिर्मिताः। हारावली श्लोक २७५

२. अमरकोष के पूर्ववर्ती कोषकारों में कोलब्रोक विल्सन तथा वेबर ( द्रष्टव्य—दि हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिट्रेचर-ए० वेबर, प्रकाशित ट्रुवनर एण्ड कं० लंदन १९१४ पृ० २२७ ) महोदय ने 'रभस' का भी नामोल्लेख किया है। डा० मोहन मंगेश पाटकर ने अपने बम्बई विश्वविद्यालय से अप्रकाशित शोधप्रबन्ध ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लेक्सिकोग्राफी में रभस या रभसपाल नाम से जिस कोषकार का उल्लेख किया है उसको क्रम में अमरकोष के बाद रक्खा है तथा उसका समय पांचवीं शती से नवीं शती ई० के मध्य माना है। रभस के कोष का नामोल्लेख नहीं हुआ है। इस मत की पुष्टि प्रो० रामावतार शर्मा ने अपने द्वारा संपादित केशवकृत 'कल्प-द्रुमकोष' ( बड़ौदा ओरियण्टल इंस्टीट्यूट, १९२८ ) की भूमिका ( पृ० ३४ ) के इस अंश में की है—

कोलब्रोक तथा विल्सन के अनुसार ( इंडीशे वॉर्टेवुखेर पृ० ६ ) रभस को अमरकोष के स्रोतों में गिना गया है, परन्तु सत्य इसके विपरीत है। सर्वानन्द की टीका के कुछ उद्धरणों में हम देखते हैं कि रभस अमरसिंह से सहमत ही नहीं है, वरन् उसमें अपनी ओर से भी मत देता है, जिससे उसका परवर्ती होना सिद्ध होता है। पर्यायों तथा नानार्थों के संयोजन तथा नानार्थों को अन्तिम व्यंजन के अनुसार प्रस्तुत करने के कारण यह बात और भी अधिक पुष्ट होती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्पति व व्याडि के साथ कात्यायन का भी स्मरण किया है।[1] अमरकोष के पूर्ववर्ती इन कोषकारों और उनकी रचनाओं का जैसा कुछ विवरण प्राप्त होता है वह नीचे संकलित किया जा रहा है—

## व्याडि

ऋक्प्रातिशाख्य तथा महाभाष्य द्वारा उद्धृत 'संग्रह' व्याकरण ग्रन्थ के कर्ता व्याकरणकार व्याडि से भिन्न एक दूसरा ही व्याडि एक ख्यात कोषकार था।[2] व्याडि का कोई भी कोष उपलब्ध नहीं है। इसलिए उसके व्यक्तित्व, काल तथा कृतियों पर कोई निश्चित मत नहीं बनाया जा सकता। परवर्ती लेखकों तथा टीकाकारों के उद्धरणों से इसके कोष का उल्लेख मिलता है। व्याडि का कोष अमरकोष के समान ही पर्यायशैली में निर्मित ग्रन्थ जान पड़ता है। उदाहरणार्थं, व्याडिकोष के उद्धरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं—

'मृगो बिन्दुः पृषंश्चैव पृषतश्च प्रकीर्तितः।'[3]

'अमरस्तु खनिः खानिः।'[4]

'पत्पादांघ्रिश्चरणोऽस्त्री।'[5]

ऋक्प्रातिशाख्य में व्याडि के उल्लेख विभिन्न स्थलों पर मिलते हैं। कुछ ये हैं ३ : २३, २८, ६ : ४३ तथा १३ : ३१,३७ इत्यादि।

अपने 'अभिधानचिन्तामणि' में स्वयं टीका करते हुए हेमचन्द्र ने जो लम्बे-लम्बे उद्धरण व्याडि के कोष से दिए हैं, उनसे प्रतीत होता है कि व्याडि का कोष एक विशाल कोष रहा होगा। इस कोष में अनेकार्थं शब्दों के संकलन वाला भी एक अध्याय रहा होगा। उदाहरणार्थं त्रिकाण्ड चिन्तामणि का यह उद्धरण प्रस्तुत है—

---

१-२. विल्सन महोदय ने (दि हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पादटिप्पणी पृ० २२७-२८) तो दोनों को एक ही व्यक्ति माना है। अमरचन्द्र ने अपने ग्रन्थ 'काव्यकल्पलतापरिमल' में दो बार के उद्धरणों में 'उत्पलिनी' का उल्लेख इन शब्दों में किया है— 'व्याडिकृतोतपलिनीमध्यात्' (इंडी-वॉर्ट पृ. ८)। सर्वानन्द तथा रायमुकुट ने उत्पलिनी को नाममात्रतन्त्र तथा व्याडिकृत कोष को लिंगमात्रतन्त्र कहकर दो भिन्न लेखक बताये हैं (ऊपर देखिए, पृ० ६ पादटिप्पणी १)। यह भेद वास्तविक हो सकता है, क्योंकि व्याडि ने एक प्रचलित कोष लिखा होगा जिसे सर्वानन्द ने उद्धृत किया है: 'चाषः किकी दिविः स्मृत' इति व्याडिना दीर्घं उक्तः। टीकासर्वस्व २,१,१५ पृ०२३० "चाषो दिविः किकिः स्मृत" इति व्याडिः।—भानुजिदीक्षित २।५।१६। व्याडि ने एक अन्य लिंगानुशासन बनाया जिससे हर्षवर्द्धन (फ्रैंक पृ० १६-९६) तथा वामन (लिंगानुशासन, गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, पृ० २१,१८) परिचित थे।

३. अमरकोष २।५।१० पर रायमुकुट तथा भानुजि की टीका।

४. त्रिकाण्डचिन्तामणि, पृ० ८२–८७

५. अभिधानचिन्तामणि, हेमचन्द्र, पृ० २५०, १–२३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"जिह्वास्वादनिनादेषु रसनं करिमण्डने"[१]

व्युत्पत्ति के आधार पर भी अर्थ दिए गए होंगे—

"अर्थात् निघण्टयत्यस्माद् निघण्टुः परिकीर्तितः [२]।"

"चण्डमालं ( चाण्डालः ) मृषा यस्येत्यर्थः शब्दविदां मतः।"[३]

हेमचन्द्र की टीका में आए उद्धरणों से ज्ञात होता है कि व्याडि ने अपने कोष में न केवल शब्द और उनके अर्थ प्रस्तुत किए, अपितु साथ-ही-साथ सम्बद्ध सूचनाएँ भी दीं। उदाहरण के लिए विभिन्न ऋतुओं में सूर्य की किरणें कैसे बढ़ती और घटती हैं, चन्द्र के अश्वों के नाम, गणों के नाम, अप्सराओं की उत्पत्ति, मूल आदि तथा बौद्धधर्म से सम्बद्ध अनेक तथ्यों का परिचय हमें व्याडिकोष के उद्धरणों से मिलता है। व्याडिकोष से बौद्ध धर्मशास्त्र के सम्बन्ध में दिए गए अनेकानेक उद्धरणों के आधार पर रामावतार शर्मा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि व्याडि बौद्ध था या कम-से-कम बौद्धधर्म से भलीभांति परिचित था।[४]

स्पष्ट है कि व्याडि का अस्तित्व केवल कालान्तर की कृतियों के उद्धरणों के आधार पर जाना जा सकता है। उसके कोष के उदाहरण हमें हेमचन्द्र, महेश्वर, केशव, पुरुषोत्तम ( हारावली ), मेदिनीकर, उज्ज्वलदत्त, रायमुकुट, भानुजि तथा शिवराम ( वासवदत्ताटीका ) में प्राप्त होते हैं। 'धातुरत्नाकर' में सोमसुन्दरगणि ने भी उसके उद्धरण दिए हैं।[५]

व्याडिकोष के निम्नलिखित उद्धरण बाद के टीका-ग्रन्थों में मिलते हैं—

पर्याय : तदुक्तं व्याडिना–'लक्ष्मीसरस्वती धा(त्री)त्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु।
उपकरणवेशरचनाविधानेषु च श्रीरिति प्रथिता॥'

टीकासर्वस्व तथा भानुजि १।१।२७

'द्वन्द्वं द्वन्द्वं युगलं युग्मं युगं मिथुनं मिथः' इति व्याडिः

टीकासर्वस्व २।५।३८

नानार्थ : 'नक्षत्रे नेत्रमध्ये च तारास्यात्तार इत्यपि'। इति व्याडिः

भानुजि १।३।२१

'मृगशीर्षे हस्तिजातौ मृगः पशुकुरंगयोः' इति व्याडिः भानुजि १।३।२३

'स्त्रियां सुमनसो भूम्नि पुष्पे जातौ तु भेदतः
विदुष्यपि यदा दृष्टस्तदा भेदेन शिष्यते।' इति व्याडिः

भानुजि० २।४।७२

१. त्रिकाण्डचिन्तामणिं, पृ० १५३–९१
२. हेमचन्द्र, पृ० १०९,१–१९
३. ,, पृ० २७२,१–२८
४. कल्पद्रुमकोष—भूमिका, पृ० १२
५. आॅफ्रेट—कैट. कैट. १,६ (८)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'कुशा वल्गा कुशी फालः कुशो दर्भः कुशं जलं।' इति व्याडिः
टीकासर्वस्व २।९।१००

विशेष : तथा च व्याडिः 'निधिं रक्षन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः।'
मानुजि० १।१।११

'मित्रावरुणयोः सूनुरौर्वशेयश्च वारुणिः' इति व्याडिः
मानुजि० १।३।२०

'पुंसि क्लीबे च पल्लवः।' इति व्याडिः टीका २।४।१४

'कुन्दं वा च तथा स्मृतम्।' इति तु व्याडिः टीका २।४।७२

तथा च व्याडिः—कर्पूरागरुकस्तूरीकक्कोलघुसृणानि च
एकीकृतमिदं सर्वं मक्षकर्दम उच्यते।
सर्वा० टीका २।६।१३३

कलायस्त्रिकटः प्रोक्तः सतीनो वर्तुलो मतः
हरेणुरङ्कटो ज्ञेयः, इति व्याडिः।
टीका सर्वस्व २।९।१६

## कात्य

अमरपूर्व के कोषकारों में कात्य भी एक प्राचीन कोषकार हैं। व्याडि की ही भांति कात्य भी केवल उद्धरणों से ज्ञात हैं। पुरुषोत्तमदेव ने त्रिकाण्डशेष २।७।२-५ में कात्य, कात्यायन तथा वररुचि को एक ही व्यक्ति माना है। परन्तु प्रो० रामावतार शर्मा इनको भिन्न-भिन्न व्यक्ति मानते हैं।[1] एक पूर्ण कोष के कर्ता कात्य 'लिंगानुशासनविधि'[2] के रचयिता से भिन्न प्रतीत होते हैं।

कात्य के कोष का नाम 'नाममाला' था।[3] इसमें पर्याय तथा अनेकार्थं दोनों प्रकार के शब्दों का संकलन मिलता है। उदाहरणार्थ—

यत्कात्यः—'प्रच्छन्नमन्तर्द्वारं स्यात् पक्षद्वारं तदुच्यते।'
क्षीरस्वामी, पृ० १,३३

'प्रधानान्यासहायेषु संख्यायां चैक इष्यते।'
क्षीर० ३।१।८३

'आसारो वेगवद्वर्षं वातास्त्रं वारि शीकरः।'
क्षीर० १।२।१२

---

१. कल्पद्रुम कोष—भूमिका, पृ० १३

२. डॉ० आर० औटो फ्रैंक द्वारा सम्पादित, १८८०

३. वामन—काव्यालंकारवृत्ति १।३।६ में
'नाममालाप्रतीकम्।' तथा अमर० ३।३।२१३ की क्षीरस्वामी टीका में 'नाममाला' का कर्ता कात्य को कहा गया है—
'नीविराग्रन्थनं नार्या जघनस्थस्य वासस' इति नाममालाप्रतीकमपश्यन्''''आदि।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यही नहीं, कात्य ने अमरसिंह के समान न केवल पर्यायशब्द साथ-साथ प्रस्तुत किए अपितु, उनके अर्थ को वर्णनों से स्पष्ट भी किया है। उदाहरणार्थ—

'चालनी तितउः पुमान्' अमरकोष २।६।२६ पर
'क्षुद्रच्छिद्रसमोपेतं चालनं तितउः पुमान् ।'
क्षीर० पृ० १८४, १, १६

'विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम्'— अमर० २।४।१४ पर
'स्कन्धादूर्ध्वं तरोः शाखा कटप्रो विटपो मतः ।'
क्षीर०, पृ० ५५, १, १७

हर्षवर्द्धन, वामन तथा सर्वानन्द प्रभृति प्राचीन लेखकों ने वररुचिकृत 'लिंगानुशासनविधि' का ही सर्वत्र प्रसंग प्रस्तुत किया है, जब कि क्षीरस्वामी तथा हैमचन्द्र, केशव, रायमुकुट, भानुजिदीक्षित प्रभृति बाद के लेखकों ने केवल कात्य के ऐसे उद्धरणों का संकेत किया है जो कि लिंगानुशासनमात्र के न होकर किसी पूर्ण कोष के रहे होंगे।[1] मंख ने अपने 'अनेकार्थकोष' में भी कात्य के सन्दर्भ दिए हैं।[2]

## भागुरि

आफ्रेट[3] के अनुसार भागुरि के कोष का नाम 'त्रिकाण्ड' था। डा० पाटकर ने अपने शोधप्रबन्ध में त्रिकाण्ड और अमरकोष को एक ही कहा है। उनके अनुसार त्रिकाण्ड अमरकोष का ही नामान्तर है। परन्तु यह मत समीचीन नहीं प्रतीत होता।

सर्वानन्द, रायमुकुट तथा अन्य टीकाकारों ने त्रिकाण्ड के उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। सर्वानन्द के अनुसार त्रिकाण्ड में लिंगनिर्देश नहीं हुआ है। केवल पद की विभक्ति से लिंग का ज्ञान हो सकता है। विषयवस्तु के आधार पर भागुरि तथा त्रिकाण्डकोष दोनों ही में पर्याय प्रस्तुत किए गए हैं तथा ये अनुष्टुप् छन्द में हैं।
उदाहरणार्थ—

भागुरि—'ब्रह्मर्षिर्ऋष्यकेतुश्च विष्वक्सेनात्मजात्मजः ।'
क्षीर०, पृ० ७,१,२४

'नासत्यदस्रौ यमजावरजावश्विनीसुतौ ।'
क्षीर०, पृ०११,१,२७

त्रिकाण्ड—'महीरुहः कुलो वृक्षो वनस्पतिरनोकहः । अगो नगः प्रकाण्डश्च शाखी कुश्च तरुः स्मृतः ।'
—संक्षिप्तसारव्याकरण १।३२३

१. आफ्रेट–कैट–कैट १–९१
२. आर० मित्रा–'नोटिसेज' १० संख्या ४१०५
३. जेड–डी० एम० जी–२८–११३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## रत्नकोष

सर्वानन्द के अनुसार रत्नकोष लिंगानुसार अध्यायों में विभक्त था। इसका कर्ता अज्ञात है। यह एक पर्यायकोष था। भिन्न लिंग के शब्दों को या तो किसी विशेष शब्द के आधार पर स्पष्ट किया गया था या विभक्ति के आधार पर।

उदाहरणार्थं—

'ह्रीर्लज्जापत्रपा व्रीडा मन्दाक्षं षण्डके त्रपा।'

त्रिकाण्डचिन्तामणि, पृ०५१–१९७

'वीर्यं वीर्यातिशक्तिता' त्रिकाण्डचिन्तामणि, पृ० ५२, २०४

## माला तथा मालाकार

विभिन्न टीकाकारों के ग्रन्थों में मालाकोष, मालाकार तथा अमरमाला नाम से विभिन्न उद्धरण मिलते हैं। अमरमाला का कर्ता सम्भवतः अमरदत्त था, जिसके नाम के आधार पर ही उसके कोष का नाम 'अमरमाला' पड़ा। इस मालाकोष या मालाकार के काल का निर्णय नहीं हो सका है। अमरसिंह की ही भांति यह अतिप्राचीन कोषकार था, जिसे कालान्तर में हलायुधकार ने अपने कोष के लिए प्रमाण माना। कई स्थलों पर अमरमाला तथा हलायुधकोष में साम्य दृष्टिगत होता है। यह स्थल क्षीरस्वामी ने अपनी टीका में मालाकार की त्रुटि या अन्य कोषकारों के मतों से भिन्नता स्पष्ट करने के लिए प्रस्तुत किए हैं। उदाहरणार्थं—

'द्राप्सं दध्यघनं स्यात्।' हलायुध, ११।१२०

माला—द्रप्सं दध्यघनं तथा। एतच्च द्रप्सं शरमिति भागुरिपाठं सरमिति बुद्ध्वा मालाकृद् भ्रान्तः।

क्षीर०, पृ०१४८, १.८१

'पलिक्नी बालगर्भिणी।' हलायुध, ११।११५

प्रष्ठौही गर्भिणीति सर्वः, असिक्नी बालगर्भिणीति भागुरिः, पलिक्नी बालगर्भिणीति माला। क्षीर०, पृ०१५१, १.१८।

यह कोष लिंगानुसार विभागों में विभक्त था। उदाहरणार्थं—

'दशपूरं दशपुरं स्तवनं जीविताह्वयम्।' क्षीर०, पृ०११६, १३०

'मालाकारो हि स्त्रीलिंगादीन् प्रकरणे निरादिशत्।' क्षीर०,पृ०२,१.३४

'इति पुंस्काण्डेऽमरमाला।' रायमुकुट, ११, ५.७

'कंकती च प्रसाधनीति स्त्रीकाण्डेऽमरमाला।' त्रिकाण्डचिन्तामणि, पृ०७०–६

क्षीरस्वामी, हेमचन्द्र, सर्वानन्द तथा रायमुकुट के ग्रन्थों में इस कोष के उद्धरण मिलते हैं। उदाहरणार्थं—

'श्येने पत्रिशशादनौ इत्यमरमाला।' रायमुकुट, २।५।१५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माला—'श्येनः पत्रिशशादनौ ।' क्षीर०, पृ०८५, १.३१
'वा ना द्वीपं च पुलिनमित्यमरमालायाम् ।'
अमर० १।९।९ पर त्रिकाण्डचिन्तामणि, पृ० ५९. २३
तद् द्वीपमिति माला—वा ना द्वीपं च पुलिनम् ।—क्षीर,पृ०४१, १.१६
तथा—'किण्वं पुंसि तु नग्नहूः' अमर०, २।१०।४१ पर
'नग्नहूर्मालायाम्' । क्षीरस्वामी टीका
'क्लीबे किण्वं च नग्नहूरित्यमरमाला च ।' सर्वानन्द 'वही' ।

## वाचस्पति तथा शब्दार्णव

वाचस्पति का कोष सम्भवतः शब्दार्णव था । इसमें विभिन्न पर्याय शब्द प्रस्तुत किए गए तथा एक ही शब्द के कई रूप प्रस्तुत किए गए थे । उदाहरणार्थ—

'अविगन्धर्वगान्धर्वदिव्यगायनगालवाः ।' —सर्वा० टीका १, पृ०४०,१.६
कृष्णपाकफलः कृष्णफलपाको वनालकः
कृष्णपाकः पाककृष्णः फलकृष्णो वनालकः
पाककृष्णफलः पाकफलकृष्णः कराम्लकः
फलपाकः पाकफलो बोलः कृष्णफलो रसः ।
त्रिकाण्डचिन्तामणि, पृ०९९. ६७.

वाचस्पति का कोष अनुष्टुप् छन्दों में था । उदारणार्थः—

'मल्लिका शतभीरुश्च गवाक्षी भद्रमल्लिका
शीतभीरुर्मदयन्ती भूपदी तृणशून्यकम् ।' त्रि० चि०, पृ०५०–७५
'दशपूरं दशपुरं स्तवनं जीविताह्वयम् ।'
त्रि० चि०, पृ०११६. १३०

शब्दार्णव में एक अध्याय अनेकार्थ शब्दों का भी था जो कि अन्तिम व्यंजनध्वनियों के क्रम पर आधारित था । उदाहरणार्थ—

'कोषो दिव्यघनेऽपि स्यात् कुड्मलासिपिधानयोः ।
पनसादिफलस्यान्तः कोषः शब्दस्य संग्रहः' । इति मूर्द्धन्यान्ते शब्दार्णवः
शब्दार्णव । —त्रिकाण्डचिन्तामणि, पृ० ६४,३९

हेमचन्द्र ने अपनी अभिधानचिन्तामणि की टीका के प्रारम्भ में वाचस्पति तथा अन्य को अपना प्रमाण माना है—

प्रामाण्यं वासुकेर्व्याडिर्व्युत्पत्तिर्धनपालतः ।
प्रपंचश्च वाचस्पतिप्रभृतेरिह लक्ष्यताम् ॥

## धन्वन्तरिनिघण्टु

धन्वन्तरिकृत धन्वन्तरिनिघण्टु औषधियों का एक कोष है ।[1] एक कथन के अनुसार

१. रायल एशियाटिक सोसायटी की बम्बई शाखा का डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग संख्या १७६-७

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसमें सात अध्याय थे ।[1] जबकि दूसरे मत के अनुसार इसमें नौ अध्याय थे ।[2] एक अन्य मत से इसमें दस अध्याय भी माने गए हैं ।[3] इस ग्रन्थ का एक अन्य नाम द्रव्यावलि-निघण्टु भी है ।[4] द्रव्यावलि का विषय धन्वन्तरिनिघण्टु के समान होने के कारण इन दोनों को एक ही कहा जा सकता है । यद्यपि कुछ अंशों में दोनों में भेद भी द्रष्टव्य है । द्रव्यावलि ग्रन्थ की संज्ञा निम्नलिखित पंक्तियों में मिलती है—

द्रव्यावलिं विना वैद्यास्ते वैद्या हासभाजनम् ।
द्रव्यावल्यभिधानं हि तृतीयमपि लोचनम् ।
........................

उक्तं मयेद प्रविभोज्यभोज्यं द्रव्यावलीनाम समुच्चयोऽयम् ।[5]

स्पष्ट है कि ग्रन्थकार ने स्वयं अपने ग्रन्थ को द्रव्यावलि संज्ञा दी । यह निघण्टु निम्नलिखित सात वर्गों में इस क्रम में विभक्त है[6]—

गुडुच्यादि, शतपुष्पादि, चन्दनादि, करवीरादि, कंचनादि, आम्रादि तथा मिश्राकादि ।

किन्हीं हस्तलिखित प्रतियों में अन्तिम मिश्राकादिवर्ग मिश्राक, विषोपविष तथा विषघ्न—इन तीन उपविभागों में विभक्त है ।[7] इसमें औषधियों से सम्बद्ध शब्दावली दी गई है । ग्रन्थकार ने इस शब्दावली के साथ-ही-साथ उक्त औषधियों के गुणों का भी उल्लेख किया है । उदाहरणार्थ 'निम्ब' शब्द के सर्वप्रथम 'नियमन, नेता, पिचुमन्द, सुतिक्तक, अरिष्ट, सर्वतोभद्र, प्रभद्र तथा परिभद्रक' आठ पर्याय देकर उसके गुण इस प्रकार उल्लिखित किए गए हैं—

गुणाः—'निम्बस्तिक्तरसः शीतो हृल्लासश्लेष्मपित्तनुत् । कुष्ठकण्डूरयान् हन्ति शोफहार्यतिशीतलः । अपक्वं च पचेच्चोपं व्रणं पक्वं विशोधयेत् ।[8]

---

१. हस्तलिखित ग्रन्थों का ऑक्सफोर्ड कैटलाग संख्या ४५१
इण्डिया आफिस कैटलाग संख्या २७३७
२. इण्डिया आफिस कैटलाग संख्या २७३६
बीकानेर हस्तलिखित ग्रन्थों का कैटलाग संख्या १३९२
३. भंडारकर प्राच्यविद्याशोधसंस्थान, पूना की १८८६-९२ की हस्तलिखित संख्या १०५७, इसके फोलियो ३० की यह पुष्पिका द्रष्टव्य है—
'इति धन्वन्तरिविरचितनिघण्टुनाममालायां दशमो वर्गः समाप्तः ।'
४. भंडारकर प्राच्यसंस्थान के राजकीय हस्तलिखित ग्रन्थों के पुस्तकालय में स्थित हस्तलिपियों के डेसट्‌स वॉल्यूम १६ भाग १ संख्या १०५-१०
५. यह अन्तिम पंक्ति इण्डिया आफिस कैटलाग संख्या २७३६ में प्राप्त होती है ।
६. ऑक्सफोर्ड कैटलाग संख्या ४५१ यह वर्गीकरण आनन्ददेव संस्कृत सीरीज संख्या ३३ में प्रकाशित धन्वन्तरिनिघण्टु के संस्करण से साम्य रखता है ।
७. मद्रास डिस्क्रिप्टिव कैटलॉग २३ संख्या १३२८४
८. आनन्ददेव संस्कृत सीरीज संख्या ३३, पृ० १३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, धन्वन्तरिनिघण्टु का रचनाकार धन्वन्तरि को माना जाता है। इसके विषय में कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता। वैद्य नारायणशास्त्री पुरंदरे के मतानुसार यह धन्वन्तरि के एक शिष्य ने बनाया था।[1]

रचना की सरलता के आधार पर धन्वन्तरिनिघण्टु तथा सुश्रुतसंहिता में जो साम्य मिलते हैं, उनके आधार पर कहा जा सकता है कि वही प्राचीन धन्वन्तरि था जिसके निघण्टु का उल्लेख सुश्रुत के द्वारा किया गया।

धन्वन्तरि के समय के विषय में मतान्तर से उसे विक्रमादित्य के समय ( लगभग ५०० ई०) का माना जाता है। अपने कल्पद्रुमकोष की भूमिका में प्रो० रामावतार शर्मा ने धन्वन्तरि को अमरसिंह का पूर्ववर्ती ( ५०० ई० पू० ) माना है।[2]

## शाश्वतकृत अनेकार्थसमुच्चय

इस कोष को भी कहीं-कहीं[3] अमरकोष का समकालिक कहा गया है, परन्तु यह उचित नहीं है। यह कोष, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, नानार्थ प्रस्तुत करता है। इसमें कुल ८०० अनुष्टुप् छंद हैं, जो छह भागों में विभक्त है। पहले तीन अध्यायों में प्रत्येक शब्द का अर्थ क्रमशः पूर्ण, अर्ध तथा चौथाई श्लोक में स्पष्ट किया गया है। चौथे में चौथाई श्लोक में अर्थ है। पाँचवें और छठे में केवल अव्ययपद अर्द्ध और चौथाई श्लोक में संगृहीत है। इस विभाजन के अतिरिक्त कृति में कोई क्रम नहीं दीखता। शब्द के रूप में ही लिंगनिर्देश किया हुआ मिलता है।

शाश्वत का काल निश्चितरूप से निर्धारित नहीं है। अपने कोष के अंत में[4] उसने कहा है कि उसके ग्रन्थ का निर्माण कवि महाबल तथा वराह के परामर्श से किया गया था। बोरोह तथा पंवेलिनी ने[5] वराह को वराहमिहिर से सम्बद्ध बताया है, जिसका समय छठी शती ईसवी है। के० जी० ओक ने[6] पूर्ण तथा अर्द्ध छंद के कई ऐसे उदाहरण शाश्वत कोष के प्रस्तुत किए हैं, जो अमरकोष के प्रयोग से पूर्ण साम्य रखते हैं। प्रो० रामावतार शर्मा ने शाश्वत के कोष में 'प्रस्तुतीकरण की अधिक पूर्णता'[7] के आधार पर और क्षीरस्वामी-जैसे प्राचीन टीकाकार द्वारा उद्धृत होने के कारण उसे अमरकोष

---

१. धन्वन्तरिनिघण्टु ( आनन्ददेव संस्कृत सीरीज़ ) की भूमिका, पृ० २ में संपादक के अनुसार—'अयं ग्रन्थः धन्वन्तरेः अन्तेवासिना केनचिदपि छात्रेण ग्रथितः इति…… जीवत्स्वायुर्वेदाचार्येषु धन्वंतरिष्वस्य ग्रन्थस्य विरचने प्रवृत्तिः जातेत्युदितवचनात् सुनिश्चितमेव।'

२. कल्पद्रुमकोष, पृ० १

३. "दि क्लासिकल एज"—पृ० ३१९, भारतीय विद्याभवन, बम्बई से प्रकाशित।

४. के० जी० ओक का संस्करण, पृ० ६०, श्लोक ८०७

५. इंडी-वॉर्ट, पृ० २४

६. शाश्वत कोष के उनके संस्करण की भूमिका, पृ० ४

७. कल्पद्रुम कोष, पृ० २४,२५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के बाद स्थान दिया है। पं० बलदेव उपाध्याय[1] तथा डा० एम० एम० पाटकर[2] ने भी कोषों के क्रम में उसे अमरकोष के परवर्तीकाल में ही स्थान दिया है। वराहमिहिर के आधार पर उसे छठी शती ई० में माना गया है।

## रभसपाल

इसके कोष को कोलब्रोक तथा विल्सन ने[3] अमरसिंह का आधार-स्रोत बताया है, परन्तु रामावतार शर्मा ने इसको अमान्य घोषित किया है।[4]

सर्वानन्द की टीका से प्राप्त इसके उद्धरणों से ज्ञात होता है कि रभस के कोष से अमरकोष में साम्य ही नहीं है, अपितु रभस अमरकोष से अधिक ही विषय प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त पर्याय तथा नानार्थ शब्दों के विभिन्न विभाग तथा नानार्थ शब्दों को अन्तिम व्यंजनों के आधार पर नियोजित करने की पद्धति के आधार पर भी रभसपाल को अमरकोष का परवर्ती मानना ही अधिक संगत प्रतीत होता है। डा० पाटकर ने अपने क्रम में इसे अमरकोष का परवर्ती ही स्वीकार किया है।

## अग्निपुराण में कोष

अग्निपुराण[5] के अध्याय ३४८ में 'एकाक्षराभिधान' कोष तथा आगे के अध्याय ३६० 'स्वर्गपातालादिवर्गः' से ३७१ अध्याय 'नरकनिरूपणम्' तक में कोषसामग्री उपलब्ध है।

अध्याय ३४८ के एकाक्षराभिधान कोष को छोड़कर शेष ११ अध्यायों की सामग्री में अमरकोष से बहुत अधिक साम्य दृष्टिगत होता है।

अग्निपुराणकार ने इस कोष-सामग्री में अमरकोष को ही काट-छाँट करके तथा कई वर्गों को एक ही में समाहित करके प्रस्तुत किया है। इसके ११ वर्ग इस प्रकार विभाजित हैं—

(१) स्वर्गपातालादि वर्ग
(२) अव्ययवर्ग
(३) नानार्थ वर्ग
(४) भूमिवनौषध्यादि वर्ग
(५) नृब्रह्मक्षत्रविट्शूद्र
(६) ब्रह्मवर्ग
(७) क्षत्रविट्शूद्रवर्ग

---

१. हिन्दुस्तानी भाग १९, अंक २, अप्रैल–जून, १९५८
'संस्कृत में कोषशास्त्र का इतिहास', पृ० ६२
२. डा० एम० एम० पाटकर का अप्रकाशित शोधप्रबन्ध
३. इंडी वॉर्ट, पृ० ६
४. कल्पद्रुमकोष, भूमिका, पृ० ३४
५. अग्निपुराण—पं० बलदेव उपाध्याय द्वारा संपादित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी से १९६६ में प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy Kathmandu Collection

(८) सामान्यनामलिंगानि
(९) नित्यनैमित्तिकप्राकृतप्रलयाः
(१०) आत्यन्तिकलयगर्भोत्पत्तिनिरूपणम् तथा
(११) नरकनिरूपणम् ।

वर्ग-विभाजन में व्यतिक्रम भी स्पष्ट है। स्वर्गपातालादि वर्ग के बाद यहाँ अमरकोष के अन्तिम तृतीय 'सामान्यकाण्ड' की सामग्री अव्यय तथा नानार्थ वर्गों में प्रस्तुत की गई है। अमरकोष के कई वर्ग काल, दिक्, नाट्य, सिंहादि यहाँ नहीं मिलते हैं।

पर्यायशैली के अतिरिक्त इस कोष में परिभाषापक्ष अधिक है। प्रारम्भ के अल्पांश से ही स्पष्ट होता है कि यह पूर्णतया अमरकोष पर आधृत है।

उदाहरणार्थ—

"स्वः स्वर्गनाकत्रिदिवा द्योदिवौ द्वे त्रिविष्टपम् । १ ।
देवा वृन्दारका लेखा रुद्राद्या गणदेवताः
विद्याधरोऽप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः । २ ।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।
देवद्विषोऽसुरा दैत्याः सुगतः स्यात्तथागतः" । ३ । इत्यादि

स्वर्ग के कुल ७ पर्याय, देव के ३ पर्याय, दैत्य के ३ तथा बुद्ध के केवल २ पर्याय यहाँ परिगणित हैं। निम्नलिखित पंक्तियों में अमरकोष १।१।११ के शब्दों और शैली को बिना किसी परिवर्तन के रख दिया गया है—

"विद्याधरोऽप्सरोयक्षोरक्षोगन्धर्वकिन्नराः ।'
"पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ।"

इसी प्रकार अन्यत्र अध्यायों में भी द्रष्टव्य है। जैसा कि अग्निपुराण के विषय-वैविध्य से स्पष्ट है, इसके विभिन्न विषयों की रचना समय-समय पर होती रही होगी और कालक्रम से आये अंश पुराणवाङ्मय में समाविष्ट होते रहे होंगे। इसी आधार पर विद्वानों के अनुसार अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय अंश दण्डी के काव्यादर्श की अपेक्षा अर्वाचीन है। दण्डी का काल सातवीं शती ई० होने से इसको इसके बाद का माना जा सकता है। अपने संस्करण की भूमिका[1] में पं० बलदेव उपाध्याय ने विभिन्न प्रमाणों के आधार पर अग्निपुराण का समय नवीं शती के आस-पास का स्वीकार किया है।

कोषसामग्री अग्निपुराण में पर्याप्त बाद के भाग में संगृहीत है, अतः यह अंश आठवीं शती के आस-पास का माना जा सकता है। अमरकोष का काल इसके पूर्व का ही निर्धारित किए जाने के कारण अग्निपुराण में अमरकोष संक्षिप्तरूप में जोड़ दिया गया होगा, ऐसी सहज कल्पना की जा सकती है।

---

१. अग्निपुराण—पं० बलदेव उपाध्याय द्वारा संपादित, चौखम्बा संस्कृत सीरोज़, वाराणसी से प्रकाशित, १९६६, पृ० ४१-४२।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## अमरकोषकार का व्यक्तित्त्व

'अमरकोष' में प्रत्येक काण्ड के अन्त में एक श्लोक मिलता है, जिससे ज्ञात होता है कि इस कोश के रचयिता का नाम 'अमरसिंह' है।[1] इसके अतिरिक्त कोषकार ने अपने विषय में कुछ भी परिचय नहीं दिया है। कोषकार के इस नाम से उसे क्षत्रिय माना जा सकता है।[2] इस प्रसंग में एक श्लोक के अनुसार अमरसिंह शबरस्वामी के पुत्र थे और उनकी शूद्रा पत्नी से उत्पन्न हुए थे। श्लोक इस प्रकार है—

ब्राह्मण्यामभवद् वराहमिहिरो ज्योतिर्विदामग्रणी
राजा भर्तृहरिश्च विक्रमनृपः क्षत्रात्मजायामभूत्।
वैश्यायां हरिचन्द्र-वैद्यतिलको जातश्च शंकुः कृती
शूद्रायाममरः षडेव शबरस्वामिद्विजस्यात्मजाः ॥[3]

इस श्लोक में गिनाये गये शबरस्वामी के पुत्र यदि ऐतिहासिक व्यक्ति हैं, तो उनका समसामयिक होना ही संदिग्ध है, एक पिता के पुत्र होना तो बहुत दूर की बात है।

अमरकोष के मंगलाचरण के श्लोक तथा अन्य देवों से पहले बुद्ध के पर्याय गिनाने के आधार पर विद्वानों की यह धारणा रही है कि अमरसिंह बौद्ध थे।[4] इस धारणा की पुष्टि इस तथ्य से भी होता है कि अमरकोष के नानार्थं वर्ग में

---

१. तीनों काण्डों के अन्त में श्लोक की प्रथम पंक्ति इस प्रकार है—'इत्यमरसिंहकृतौ नामलिंगानुशासने।'

२. द्रष्टव्य-डी. इंडीवॉर्ट, पृ० १८ द्वारा टी. जकारिया स्ट्रास्बर्ग, १८९७।

३. इण्डियन कैटलाग, वाल्यूम ६, पृ० २०९।

४. द्रष्टव्य-मिससिलेनियस ऐसेज़ वाल्यूम २ द्वारा एच. टी. कोलरिज पृ० ८० पर अमरकोष के संस्करण की भूमिका।

'अमरकोष का कर्ता अमरसिंह एक कविरूप में भी ज्ञात है। वह निश्चय ही बौद्ध था, महायान से परिचित था और कालिदास के ग्रन्थों का उसने उपयोग किया था।'

— 'संस्कृत साहित्य का इतिहास : ए० बी० कीथ

'इह तु बुद्धादिपदोल्लेखे कृते दक्षिणापथपथिकसार्थानामनुपादेयता स्यात्, कृष्णादिपदोल्लेखे तु तत्कालकवलितमदोद्धराणां बौद्धानामित्युभयसाधारण्येनोपादेयतार्थं मुख्यार्थानुद्देशो न दोषाय।'

—अमरकोष के प्रथम श्लोक 'यस्य ज्ञानदयासिन्धोः........'इत्यादि पर रायमुकुट की 'पदचन्द्रिका' टीका, पृ० ४, संस्कृत कालेज, कलकत्ता से १९६८ में प्रकाशित।

'अमरदीपिका' में भी कहा गया है—'समुद्रपक्षे सर्वज्ञानलक्षणं धियं बुद्धिं रान्ति गृह्णन्तीति धीराः देवाः। बुद्धपक्षे, मो धीराः पण्डिताः स बुधः सेव्यताम् इति।'

—महेश्वरटीकासहित अमरकोष की प्रस्तावना। छठा संस्करण—वो० झलकीकर, निर्णयसागर प्रेस, १९०७ ई०।

'त्रिकाण्डरहस्य' में रामनाथ की यह उक्ति है—'यदाऽसौ कविरमरसिंहो ग्रन्थमेतं चकार तदानीमनपहृतवेदपथानां मदोद्धराणामतिप्राबल्यमासीत्। अतएव कृष्णादिपदोल्लेखे

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'धर्मराजौ जिनयमौ' ( अमर० ३. ३. ३१ ) कहा गया है। इसमें कोषकार ने 'जिन' शब्द का पूर्वनिपात किया है। यह पूर्वनिपात पाणिनि के 'अल्पाच्तरम्' (२. २. ३४) सूत्र पर 'अभ्यर्हितंच' इस वार्तिक के अनुसार किया गया है। इससे स्पष्ट है कि कोषकार की दृष्टि में 'जिन,' जो बुद्ध का पर्याय है, यम की अपेक्षा अभ्यर्हित है। कहा जा सकता है कि यदि अमरसिंह वैदिक धर्मानुयायी होते तो 'यम' को अभ्यर्हित मानकर छन्दोभंग किये बिना 'यमजिनौ' लिख सकते थे।

परन्तु इन प्रमाणों के आधार पर यदि अमरसिंह को बौद्ध मान लिया जाय तो आश्चर्य की ही बात है कि 'अमरकोष' में बौद्ध-संघ के पारिभाषिक शब्दों का नितान्त अभाव है। इसके विपरीत कोषकार ने वर्णाश्रम व्यवस्था तथा यज्ञ-संस्था को अपने कोश में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इससे तो यही प्रतीत होता है कि अमरसिंह के समय के हिन्दू-समाज ने उदारतावश बुद्ध को आत्मसात् कर लिया था और बाद में तो वे दशावतारों में भी प्रतिष्ठित हो गये। फिर भी, बुद्ध को अन्य देवों से पहले स्थान देने में अमरसिंह का पक्षपात बुद्ध के प्रति उनके अनुराग को द्योतित अवश्य करता है। क्या इसका कारण यह तो नहीं है कि अमरसिंह ने तक्षशिला-जैसे किसी बौद्ध-विद्यापीठ में शिक्षा प्राप्त की हो ओर श्रौत स्मार्त होते हुए भी विद्यार्थि-जीवन के अभ्यास-वश उन्होंने ग्रन्थ के प्रारम्भ में भगवान बुद्ध का स्मरण किया हो और उनके नाम अन्य देवों से पहले गिनाये हों।

'अमरकोष' इस बात का प्रमाण है कि अमरसिंह बहुश्रुत थे। व्याकरण तथा अपने पूर्ववर्ती कोष-साहित्य से तो उनका घनिष्ठ परिचय था ही, इसके अतिरिक्त ज्योतिष,

---

तेषामनुपादेयता स्यात् बुद्धादिपदोल्लेखे तु दक्षिणापथप्रवृत्तानामनुपादेयता स्यादित्युभयेषां तमोपादेयतार्थम् अस्य मंगलश्लोकस्य तादृशी गूढार्थता' इति।'

—महेश्वर टीका, अमरकोष की प्रस्तावना, छठा संस्करण : वी० झलकीकर, निर्णयसागर प्रेस, १९०७ ई०।

'अमरकोषोद्घाटन' में क्षीरस्वामी ने भी लिखा है—'इति ग्रन्थारम्भेऽभीप्सित-सिद्धिहेतुं जिनमनुस्मृत्य श्रोतृप्रोत्साहनार्थं स्वप्रवृत्तिप्रयोजनं साभिधेयमादिवाक्येनाह समाहृत्येति।' इति

सर्वानन्द की टीका में आया है—'अत्र चानुक्तोऽपि शाक्यलक्षणोऽर्थो ज्ञानदया-दिभिः स्पष्टं प्रतीयत इति।'

पण्डित शिवदत्त शर्मा ने भानुजिदीक्षित की 'व्याख्यासुधा' टीका से युक्त अमरकोष के अपने संस्करण में स्पष्ट किया है—

'अयममरसिंहः कदा किंजातीयः कुत्रत्यं महीमण्डलं मण्डयांचकारेति न निश्चितम्। परन्तु (अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः—इत्यादिना) देवसामान्यनामान्युक्त्वा देवविशेषनामारम्भे 'सर्वज्ञः सुगतो बुद्धो धर्मराजस्तथागतः। समन्तभद्रो भगवान् मार-जिल्लोकजिज्जिनः' इत्यादिना बुद्धनाम्नां लेखनेन बौद्धत्वमवसीयते।'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आयुर्वेद आदि अनेक शास्त्रों का उन्हें प्रौढ़ ज्ञान रहा होगा। राजशेखर ने 'काव्यमीमांसा' में उल्लेख किया है कि उज्जयिनी में कवियों की एक परीक्षा में अमरसिंह ने भी भाग लिया था।[1]

## अमरकोष का रचना-काल

जैसे अमरकोषकार के व्यक्तित्व के विषय में हमें कोई निश्चित सूचना प्राप्त नहीं होती, उसी प्रकार संस्कृत के इस प्राचीनतम उपलब्ध कोष की रचना कब और कहाँ हुई होगी, इसके विषय में भी कोई सुनिश्चित उल्लेख नहीं उपलब्ध होता। अतः इसके रचना-काल का निर्धारण केवल बाह्य साक्ष्य तथा अन्तः साक्ष्य के आधार पर ही किया जा सकता है।

अमरकोष के रचना-काल के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। यहाँ इन मतों की समीक्षा कर प्राप्त प्रमाणों के आधार पर अमरकोष का रचना-काल निर्धारित करने की चेष्टा की जा रही है।

एक प्राचीन किंवदन्ती के अनुसार अमरकोष के रचयिता अमरसिंह को विक्रमादित्य के नवरत्नों में गिना गया है। यह किंवदन्ती निम्नलिखित श्लोक में निबद्ध है—

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशंकुवेतालभट्टघटखर्परकालिदासाः ।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य ॥

परन्तु यह नृपति विक्रम कौन हैं और कब हुए, यह प्रश्न अभी तक एक पहेली ही बना हुआ है और इसका अद्यावधि कोई निर्णय नहीं हो पाया है। चार्ल्स विल्किन्स महाशय को बोधगया में एक अभिलेख प्राप्त हुआ था, जिसका अनुवाद उन्होंने 'एशियाटिक रिसर्च वाल्यूम १, पृ० २८६ में प्रकाशित कराया था, जिसके अनुसार नृपति विक्रम के नवरत्नों में अमरदेव नामक एक विद्वान् थे, जिन्होंने बुद्धगया में एक बौद्ध मठ का निर्माण कराया था। दुर्भाग्यवश आज यह अभिलेख प्राप्त नहीं होता। अतः इसकी परीक्षा नहीं की जा सकती और विल्किन्स महाशय के कथन की सत्यता प्रमाणित नहीं की जा सकती। जनरल कनिंघम ने विल्किन्स द्वारा उल्लिखित अमरदेव को अमरसिंह का ही दूसरा नाम मान लिया और प्रो० कर्न ने भी इस मत को स्वीकार कर लिया। यह अभिलेख ५८१ ई० का बताया गया है।

विल्सन महोदय[2] ने अमरसिंह को ५वीं शती ईसवी का माना है। डा० कर्न

---

१. 'श्रूयते चोज्जयिन्यां काव्यकारपरीक्षा—
'इह कालिदासमेण्ठावत्रामररूपसूरभारवयः ।
हरिचन्द्रचन्द्रगुप्तौ परीक्षिताविह विशालायाम् ॥'
प्रथम अधिकरण का दशम अध्याय
गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज ( वॉल्यूम ४९, बड़ौदा से स्व० सी० डी० दलाल तथा पं० आर० ए० शास्त्री द्वारा १९३४) में प्रकाशित।

२. अपनी पुस्तक 'संस्कृत' की भूमिका में, १८१९ में प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ने[1] वराहमिहिर और अमरसिंह को समकालिक बताकर षष्ठ शती ईसवी के पूर्वार्द्ध में दोनों का होना सिद्ध किया है। वेबर महोदय ने[2] अमरकोष के अतिरिक्त अन्य सभी कोषों की स्थिति ११-१२वीं शती ईसवी तक ही मानकर उसे भी उससे बहुत अधिक प्राचीन नहीं माना है। इस प्रकार अमरकोष का समय ईसा की पाँचवीं शती से लेकर ईसा की ग्यारहवीं शती तक के बीच में विभिन्न विद्वानों द्वारा माना गया है।

अमरकोष के उद्धरण अभिनवशाकटायनकृत शब्दानुशासन की स्वोपज्ञ टीका (अमोघवृत्ति)[3] में मिलते हैं। यह टीका प्रसिद्ध राष्ट्रकूटनरेश अमोघवर्ष के शासन-काल (८१४-८८०[4]) में लिखी गई थी, परन्तु इस कृति के अप्रकाशित होने के कारण[5] इस तथ्य की सप्रमाण पुष्टि नहीं की जा सकती।

डा० भंडारकर[6] के अनुसार जिनेन्द्रबुद्धि ने अपनी काशिकाविवरणपंजिका में अमरकोष (३।३।१८५) 'तंत्रं प्रधाने सिद्धान्ते'......उद्धृत किया है। परन्तु कीथ[7] तथा श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती[8] ने इस बात को यह बताकर असत्य ठहराया है कि 'न्यास' के बंगला तथा मलयालम में उपलब्ध पाठ में यह अंश नहीं है। परन्तु न्यास का यदि अमरकोष के उद्धरण वाला पाठ सही मान लिया जाय तो अमरकोष को ८वीं शती ईसवी के पूर्व की रचना मानना पड़ेगा, क्योंकि ए० बी० पाठक[9] के अनुसार जिनेन्द्र-बुद्धि को ८वीं शती ईसवी में रक्खा जा सकता है।

दण्डी के 'काव्यादर्श' में जिसका काल सप्तम शती का उत्तरार्द्ध माना जाता है,[10] समानता के अर्थ में निम्नलिखित श्लोक मिलता है—

इव-वद्वा-यथाशब्दाः समाननिभसन्निभाः
तुल्यसंकाशनीकाशप्रतीकाशप्रतिरूपकाः ।

---

१. 'वृहत्संहिता' के अपने संस्करण के आमुख में।
२. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर। —वेबर
३. जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास ५.११. २६ में टी० आर० चिन्तामणि।
४. श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती (काशिकाविवरणपंजिका की भूमिका, पृ० २६) के अनुसार टीका का निश्चित समय ८६७ ई० है।
५. कैटेलोगस कैटेलोगोरम, पृ० ३५६।
६. क्षीरस्वामी की टीका सहित अमरकोष के शर्मा तथा सरदेसाई के संस्करण की भूमिका, पृ० ११।
७. द्रष्टव्य-ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ० ४१३।
८. द्रष्टव्य-काशिकाविवरणपंजिका की भूमिका द्वारा श्रीशचन्द्र चक्रवर्ती, ढाका विश्व-विद्यालय, १९२३, पृ० २०।
९. द्रष्टव्य-न्यासमंजरीसहिता काशिकावृत्तिः, प्रथमो भागः, पृ०५, प्राच्य भारती प्रकाशन, वाराणसी, १९६५ में अमरकोष का यह उद्धरण है।
१०. अमरकोष का के० जी० ओककृत संस्मरण, भूमिका, पृ० ९।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सदृक्सदृशसंवादि - सजातीयानुवादिनः
सलक्षणसदृक्षाम - सपक्षोपमितोपमाः ॥

इनमें से अधिकांश शब्द दण्डी ने अमरकोष की निम्नलिखित पंक्तियों से लिए होंगे, ऐसा प्रतीत होता है—

'वद्वा यथा तथैवैवं साम्ये।' ३।४।९
'वाच्यलिंगाः समस्तुल्यः सदृक्षः सदृशः सदृक्।
साधारणः समानश्च स्युरुत्तरपदे त्वमी।
निभसंकाशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः' । २।१०।३६–३७

डा० रामावतार शर्मा ने अपने सम्पादित[1] 'कल्पद्रुमकोष' की भूमिका में लासेन के द्वारा उल्लिखित[2] अमरकोष के एक चीनी अनुवाद का उल्लेख किया है। मैक्समूलर[3] ने भी अमरकोष के चीनी अनुवाद का उल्लेख किया है। यह अनुवाद उज्जयिनी के गुणरत्न द्वारा किया हुआ है। जिसका काल ईसा की छठी शती था। निश्चित है कि अमरकोष इस अनुवाद के बहुत पहले से विद्यमान रहा होगा।

अमरकोष के पूरक ग्रन्थों के रूप में तीन ग्रन्थ मिलते हैं। एक तो है मुक्तावली या विश्वलोचन[4] जिसे मुनिसेन के पुत्र श्रीधरकृत कहा जाता है। यह ग्रन्थ अप्राप्त है और केवल इसका उल्लेखमात्र मिलता है। श्रीधर ने कहा है कि अमरसिंह ने एक सुन्दर रेशमी वस्त्र बनाया है और वह उसमें मोती टाँक रहा है। यह मोती उसने अमरसिंह के बाद के समय के कवियों की कृतियों से लिए हैं। लेखक सेन-परिवार का है। वह बौद्ध जान पड़ता है, क्योंकि अपनी लम्बी भूमिका के आठवें श्लोक में उसने स्वयं को बुद्ध के चरणों में समर्पित किया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में शब्द अकारादिक्रम से व्यवस्थित किए गए हैं तथा अन्त में क, ख इत्यादि क्रम में रक्खे गए हैं। लेखक का काल भी अज्ञात है।

दूसरा ग्रन्थ 'शेषामर'[5] है। लेखक का नाम अज्ञात है। इसमें अनेक नये शब्द जोड़े गए हैं तथा लिंग-निर्देश के अतिरिक्त नियम दिए गए हैं। लेखक का काल भी अज्ञात है।

---

१. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, वॉल्यूम १, १९२८, पृ० १७।
२. इंडी आस्टर—४, ६३३।
३. इण्डिया : ह्वाट कैन इट टीच अस, प्रथम संस्करण, पृ० ३२८।
४. संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरणात्मक कैटेलॉग, संख्या ४६५५, एशियाटिक सोसायटी बंगाल, वॉल्यूम ६, कलकत्ता १९३१, म० म० हरप्रसाद शास्त्री, सी० १९
५. गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास वॉल्यूम—३, पृ० १२१८-१९, रंगाचारी का संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का कैटेलाग।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तृतीय और सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है—पुरुषोत्तमदेवकृत 'त्रिकाण्डशेष'।[१] इसका प्रकाशित संस्करण[२] भी उपलब्ध है। इसमें तीन विभाग, पच्चीस अध्याय तथा कुल एक हजार और तिरपन श्लोक हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार इस लेखक के इस ग्रन्थ के अतिरिक्त 'हारावली' तथा 'एकाक्षरकोष' को मिलाकर ही अमरकोष पूर्ण होता है। लेखक बौद्ध माना जा सकता है।[३] अमरसिंह ने बुद्ध के १७ नाम तथा शाक्यमुनि के लिए ५ नाम दिए हैं। पुरुषोत्तमदेव ने अपने ग्रन्थ में बुद्ध के ३७ अधिक नाम तथा शाक्यमुनि के लिए तीन अधिक नाम परिगणित किए हैं। इन दोनों कोषकारों के बीच में समय में बौद्ध धर्म में कई यान चल गए थे, जिनमें प्रचलन में आए शब्दों को पुरुषोत्तम ने ग्रहण किया, यह उसने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही[४] कहा है—

'अलौकिकत्वादमरः स्वकोशे न यानि नामानि समुल्लिलेख।
विलोक्य तैरप्यधुना प्रचारमयं प्रयत्नः पुरुषोत्तमस्य॥
(१।१।२)

एक मराठी कृति 'कविचरित'[५] में यह उल्लेख आया है कि पुरुषोत्तमदेव ने कलिंग पर शालिवाहन शक वर्ष की १४वीं शती में शासन किया। इसकी राजधानी कटक थी। पं० श्री आनन्दराम ने[६] इन्हें १३वीं शती ईसवी का माना है। प्रो० राजेन्द्र मित्र[७] ने इनको दशम या एकादश शती का माना है। विल्सन महोदय का भी यही मत है।[८] इस आधार पर कई विद्वानों का यह मत है कि अमरसिंह ११वीं शती के थे, स्वयमेव खण्डित हो जाता है।

---

१. संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों का विवरणात्मक कैटेलाग, संख्या ४६५३, एशियाटिक सोसायटी बंगाल, वॉल्यूम–६, कलकत्ता १९३१, म० म० हरप्रसादशास्त्री, सी–१९।

२. सी० ए० सीलक्खन्ध महाथेर की 'सारार्थचन्द्रिका' टीका सहित, खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा श्री वेंकटेश प्रेस, बम्बई से १९१६ में प्रकाशित।

३. वही। ग्रन्थ का प्रारम्भ 'नमः सम्यक्सम्बुद्धाय' से हुआ है तथा सर्वप्रथम 'बुद्धोऽकनिष्ठगमहामुनिधर्मचक्रा''''इत्यादि में बुद्ध के ही नाम परिगणित किए हैं।

४. सी० ए० सीलक्खन्ध महाथेर की 'सारार्थचन्द्रिका' टीका सहित, खेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा श्री वेंकटेश प्रेस, बम्बई से १९१६ ई० में प्रकाशित।

५. 'त्रिकाण्डशेष' का आमुख पृ० १, खेमराज श्रीकृष्णदास, बम्बई से १९१६ में प्रकाशित।

६. 'नानार्थसंग्रह' की भूमिका, पृ० १९।

७. अपने 'नोटिसेज़ ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट्स' में प्रो० राजेन्द्र मित्र।

८. विल्सन की डिक्शनरी, भूमिका, पृ० २७।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्व० डा० हरदत्त शर्मा[1] ने अमरसिंह द्वारा अपने कोष में किए गए सांख्यदर्शन के उल्लेख को अपने मत का आधार बनाते हुए उन्हें ईश्वरकृष्ण का पूर्ववर्ती ठहराने का प्रयत्न किया है। कपिलदेव के सांख्य सिद्धान्त का परिचय अमरकोष में इन शब्दों में मिलता है—

'क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः प्रधानं प्रकृतिः स्त्रियाम्।' (२।४।२९)

ईश्वरकृष्ण (या विन्ध्यवासी[2])' ने सांख्य के आदिमुनि कपिलदेव के सिद्धान्त में संशोधन किया था, सम्भवतः अमरसिंह इससे अपरिचित ही रहे। अमरसिंह ने एक स्थल पर कहा है—

'अन्तराभवसत्त्वेश्वे गन्धर्वो दिव्यगायने।' (३।३।१३३)

अन्तराभवसत्त्व ( अन्तरा मरणजन्मनोर्मध्ये भवं सत्त्वं यातनाशरीरम् ) गन्धर्व शब्द का ही एक अर्थ है और मृत्यु तथा पुनर्जन्म की यह मध्यस्थिति अमरसिंह को मान्य है। परन्तु यह सिद्धान्त ईश्वरकृष्ण को सर्वथा अमान्य है।[3] स्व० डा० हरदत्त शर्मा का भी यही मत है।[4]

५४६ ई० में परमार्थ ईश्वरकृष्ण की सांख्यकारिका को अपने साथ चीन देश में ले गए तथा ५५७-५६९ ई० के भीतर उन्होंने एक प्रामाणिक टीका के साथ इस ग्रन्थ का चीनी भाषा में अनुवाद किया। अतः ईश्वरकृष्ण का समय इसके पूर्व ही होगा। वह छठी शती के बाद के नहीं हो सकते। ईश्वरकृष्ण बुद्धमित्र तथा उसके शिष्य वसुबन्धु ( ए० डी० ४८० ) के विपक्षी थे, अतः इनका भी समय पंचम शती ही होगा। इनके ग्रन्थ पर न्यायभाष्य के रचयिता वात्स्यायन का कुछ प्रभाव दीख पड़ता है। ईश्वरकृष्ण की कारिका में दिया गया अनुमान का लक्षण ( न्यायसूत्र १।१।५ पर ) वात्स्यायनभाष्य के अनुरूप ही है। वात्स्यायन के गुप्तकालीन ग्रन्थकार होने के कारण इसी आधार पर डा० वासुदेव उपाध्याय ने[5] ईश्वरकृष्ण का समय पाँचवीं शती का अन्त तथा

---

१. क्षीरस्वामी टीका सहित अमरकोष के अपने संस्करण की भूमिका में। ओरियण्टल सीरीज़ पूना से १९·१ में प्रकाशित।
दोनों व्यक्ति भिन्न भी बताए गए हैं। देखिए—'गुप्त साम्राज्य का इतिहास' द्वितीय खण्ड, वासुदेव उपाध्याय, पृ० ११६–११७।

२. दोनों व्यक्ति भिन्न भी बताए गए हैं। देखिए—'गुप्त साम्राज्य का इतिहास' द्वितीय खण्ड, वासुदेव उपाध्याय, पृ० ११६-१७।

३. 'अन्तराभवदेहस्तु नेष्यते विन्ध्यवासिना। तदस्तित्वे प्रमाणं हि न किंचिदवसाम्यते।' कुमारिलभट्टकृत 'श्लोकवार्तिक', पृ० ७०४ 'सांख्या अपि केचन नान्तराभवमिच्छन्ति विन्ध्यवासिप्रभृतयः मेधातिथिभाष्य, पृ० ३२ ( ए० सो० सं० )।

४. द्रष्टव्य—क्षीरस्वामी की टीका सहित अमरकोष की भूमिका, पृ० १०, पूना ओरियण्टल सीरीज़, १९४१।

५. गुप्तकालीन सांस्कृतिक इतिहास, पृ० ११८।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

छठीं शती का प्रारम्भ माना है। इससे अमरसिंह का काल पाँचवीं शती के बाद का नहीं माना जा सकता।

श्री के० जी० ओक ने क्षीरस्वामी की अमरकोषोद्घाटन टीका सहित संपादित अमरकोष के अपने संस्करण में[1] अमरकोष के कुछ ऐसे स्थल प्रकाश में लाने का सुप्रयास किया है, जिनके आधार पर अमरसिंह का समय निर्धारण हो सके। प्रथमकाण्ड के चतुर्थ 'कालवर्ग' में अमरसिंह ने कहा है—'द्वौ-द्वौ माघादिमासौ स्यादृतुस्तैरयनं त्रिभिः' ( अमरकोष १।४।१३ )। अमरकोष पर प्राचीन और सर्वमान्य टीकाकार क्षीर-स्वामी ने इस उक्ति को स्पष्ट करते हुए लिखा है—''माघाद्युपक्रमस्ततोऽयनारम्भात्'' स्पष्ट है कि अमरसिंह के समय या उसके कुछ ही समय पूर्व उत्तर में सूर्य का चक्र माघ मास में होता होगा। क्षीरस्वामी ने भी 'हेमन्ताद्धि वत्सरस्यारम्भः' कहकर उक्त मत को और भी अधिक पुष्ट किया है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अमरसिंह का काल अब से लगभग १५-१६ सौ वर्ष पूर्व रहा होगा।

प्रारम्भ में ही हम उस प्राचीन किंवदन्ती का उल्लेख कर चुके हैं, जिसमें अमर-कोष के रचयिता अमरसिंह को विक्रमादित्य के नवरत्नों में गिना गया है। यद्यपि नृपति विक्रमादित्य सदैव से एक विवादास्पद चरित्र माने गए हैं और उनका काल विवाद का विषय ही रहा है, इतना तो सुनिश्चित ही है कि नवरत्न वाला यह तथ्य केवल कोरी कल्पना नहीं है। सुबन्धु ने अपनी 'वासवदत्ता' में 'नवका विलसन्ति' लिखकर यह स्पष्ट किया है कि विक्रमादित्य की मृत्यु के उपरांत प्राचीन नवरत्नों के स्थान पर सामान्य कोटि के ९ विद्वान् आसीन हो गए हैं।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के सम्बन्ध में मथुरा के अभिलेख ( नं० ५ ) के भग्न भाग की तिथि को दो प्रकार से लिया गया—प्रथम तथा पंचम। श्री आर० सी० मजूमदार[2] के अनुसार द्वितीय तिथि ही अधिक उचित जान पड़ती है और इसके अनुसार चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण ३७६-७७ ईसवी में माना जा सकता है। उनके सैनिक आक्रमण ओर शक राज्यों पर प्राप्त विजय चतुर्थ शती के अन्त तथा पंचम के प्रारम्भ में मानी गयी हैं।[3] इन्हीं चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विक्रमादित्य की उपाधि धारण की थी जो कि 'विक्रम' और 'विक्रमार्क' के साथ ही इनके सिक्कों में पाई जाती है। इन्हीं को विद्वानों ने आख्यान के चरित्र विक्रमादित्य बताया है, जिन्होंने शकों को हराया तथा ५८ ई० पू० में विक्रम संवत् चलाया तथा उज्जयिनी में राज्य किया। इन तथ्यों की सत्यता के विवादास्पद जाल में न पड़कर इतना तो कहा ही जा सकता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के जिस आख्यानक्रम में ये तथ्य आते हैं, वे ही कालिदास को भी इनके राजदरबार का कवि बताते हैं। जहाँ तक विक्रमादित्य उपाधि का प्रश्न है, स्कन्दगुप्त तथा पुरुगुप्त ( या

१. अमरसिंह का नामलिंगानुशासन, भूमिका, पूना से १९१३ में प्रकाशित।
२. भारतीय इतिहास परिषद् द्वारा प्रकाशित 'ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इण्डियन पीपुल वॉल्यूम ६, अध्याय ८, पृ० १६६
३. दि वाकाटक गुप्त पीरियड—मजूमदार एण्ड आल्टेकर, पृ० १६७।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बुद्ध गुप्त ) ने भी यह उपाधि धारण की थी। अतः उक्त आख्यानक्रम सम्पूर्ण गुप्तकाल का द्योतक है।[1] चन्द्रगुप्त द्वितीय की तो ज्ञात अन्तिम तिथि ४१२-४१३ ईसवी है और क्योंकि उसका पुत्र ४१५-४१६ ईसवी में सिंहासनारूढ़ हुआ अतः उसने लगभग ३६ वर्ष तक राज्य किया।[2] कालिदास भी इन्हीं के समय में हुए, क्योंकि उनका समय ३६०-४२० ईसवी माना जाता है।[3]

आगे अध्याय ४ में कालिदास के कुछ काव्य-ग्रन्थों से अमरकोष के शब्दों का मिलान करके बताया गया है कि अमरसिंह ने कालिदास की शब्दावली का संकलन किया है। इस प्रकार ए० बी० कीथ महोदय[4] के इस मन्तव्य से सहमत होना उचित ही है कि विक्रमादित्य की राजसभा के एक रत्न के रूप में अमरसिंह की स्थिति को छठी शती ई० बताना किसी दृढ़तर प्रमाण पर आधृत नहीं है।

अमरकोष में परिगणित शब्दों के आधार पर यदि अमरसिंह के समाज का थोड़ा भी आभास मिलता है तो वह गुप्तकाल की व्यवस्था से बहुत मिलता-जुलता प्रतीत होता है। उसके वर्ग-विभाजन के अनुसार चारों जातियों में से ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ हैं और फिर क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र आते हैं। ब्राह्मणों को 'ब्रह्मबिन्दु' ब्रह्म का अंश ( अमर० ८।७।३९ ) की संज्ञा दी गई है। उनका मुख्य कर्म है 'सत्त्व' ( नैतिक व भारतीय आत्मिक श्रेष्ठता ) का आचरण। प्लेटो की 'रिपब्लिक' में सबसे उच्च स्थान में देश के रक्षक तथा सहायक आते हैं, अमरकोष में ये स्थान दूसरे वर्ग में क्षत्रियों को मिला है। वे देश की सुरक्षा के आधार होने के साथ-ही-साथ अन्य दो वर्गों—ब्राह्मण तथा वैश्यों के कार्य की प्रगति में सहायक भी हैं। शूद्र आर्य तथा 'भूमिस्पृक्' ( अमर० २।९।१ ) कहलाए, जिसका तात्पर्य यह है कि ये मूल रूप में भूमिखनन करने वाले कृषक होंगे। क्योंकि कृषि पर ही सभी व्यापार आधृत हैं, इसलिए ये कालान्तर में व्यापारी बने। 'वृत्ति' ( जीविका, अमर० २।९।१ ) शब्द सर्वप्रथम इनके सम्बन्ध में ही आया। भीख माँगकर भोजन प्राप्त करना 'मृत' ( अमर० २।९।३ ) अर्थात् मृत्यु के समान कहलाया तथा बिना भीख माँगे 'अमृत' कहा गया है। कृषि को 'अनृत' (मिथ्या, अमर० २।९।१) की संज्ञा दी गई और धान्य काटने के उपरान्त शिलोञ्छ को 'ऋत' (सत्य) की संज्ञा दी गई। अर्थात् जो फसल में प्राप्त धान्य है वही सत्य हैं, खेत में स्थित फसल असत्य है। इसी प्रकार व्यापार को 'सत्यानृतम्' (अमर० २।९।३ ) कहा गया, जिसमें सत्य और मिथ्या का ही बोलबाला है। इस प्रकार एक उच्च व्यवस्था हिन्दू समाज की परिलक्षित होती है।[5] शूद्र 'अवरवर्ण' ( अमर० २।१०।१ ) तथा 'इतर' ( अमर० २।१०।१६ )

१. वही, पृ० ७१-७२।
२. वही, पृ० १७२।
३. वही, अध्याय २०, पृ० ४०४-४०६।
४. कीथ—इण्डियन आफिस कैटेलाग २, पृ० ३०३। भंडारकर—वैष्णविज्म, पृ० ४५।
५. द्रष्टव्य—रिफ्लेक्शंस ऑफ दि अमरकोष—वी. के. राजवाड़े एनल्स ऑफ दि भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीटयूट, पूना वाल्यूम ७, १९२५, पृ० ७५-८२।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कहलाये । इतनी ही समृद्ध और विकसित व्यवस्था गुप्तकाल में पाई जाती है । इसी प्रकार आर्थिक क्षेत्र में व्यापार तथा बैंक के अतिरिक्त हमें विभिन्न प्रकार के व्यापार में लगे व्यक्तियों के समूहों का उल्लेख[1] भी अमरकोष में मिलता है । अमरकोष के तृतीय काण्ड के द्वितीय वर्ग के अन्त में 'माणव्य' ( बालकों का झुंड ) सहायक, समूह ( ३।२।४० ), वाडव्य ( ब्राह्मणों का समूह ), 'वर्मण' ( कवचधारियों के समूह ) इत्यादि इसी का संकेत करते हैं । क्षत्रिय वर्ग के अन्तर्गत राजा, उसके अधीन विभिन्न कर्मचारियों, अनुचरों आदि का विस्तृत उल्लेख अमरकोष में मिलता है । सन्धि, विग्रह, दूतकर्म, गुप्तचर-व्यवस्था, कोष आदि के लिए प्रयुक्त शब्द एक सुदृढ़ शासन-व्यवस्था का आभास देते हैं । इसी प्रकार 'वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा.........' ( अमर० २।६।१९ ), 'पुनर्भूः' ( दो बार विवाहिता स्त्री, अमर० २।६।२३ ), 'दिधिषू' ( ऐसी स्त्री का पति, अमर० २।६।२३ ), 'अग्रेदिधिषूः' (ऐसी स्त्री के द्विजाति पति), वैमात्रेय, 'विमातृज' ( सौतेली माँ का लड़का, अमर० २।६।२५ ) इत्यादि शब्द तत्कालीन उदार सामाजिक व्यवस्था के द्योतक हैं ।

धर्म के सम्बन्ध में भी गुप्तकाल सामंजस्य का काल माना जाता है ।[2] अमरकोष में भी बुद्धदेव के नाम परिगणन के साथ ही पौराणिक वेदों का व्यवस्थित क्रम ऐसा प्रस्तुत किया गया है कि अमरसिंह के वैदिक धर्म में विश्वास की धारणा दृढ़ होती जाती है ।[3] गुप्तकाल में राम की उपासना का कहीं उल्लेख नहीं मिलता ।[4] कालिदास ने अवश्य उन्हें विष्णु का रूप मानकर उल्लेख किया है । अमरकोष में राम एक देव के रूप में स्वर्ग वर्ग में नहीं आये हैं ।

उपर्युक्त सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए अमरसिंह का काल ५वीं शती ईसवी में मानना ही उचित प्रतीत होता है । ईश्वरकृष्ण ( ५वीं शती का उत्तरार्द्ध तथा छठी शती का पूर्वार्द्ध ) से पूर्व इनकी स्थिति मानने पर इनका समय पाँचवीं शती का पूर्वार्द्ध मानना तर्कसंगत होगा ।

## अमरकोष की टीकाएँ

थियोडोर ऑफ्रेट ने अपने कैटेलोगस कैटेलोगोरम के द्वितीय खण्ड में अमरकोष की ४० टीकाओं का उल्लेख किया है । इनमें से कुछ प्रकाशित हो चुकी हैं, कुछ अप्रकाशित और हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हैं तथा कुछ के केवल उल्लेखमात्र यत्रतत्र मिलते हैं । इनमें से ११वीं शती के उत्तरार्द्ध से प्रारम्भ करके १८वीं शती तक की प्राप्त कुल १७

१. द्रष्टव्य-दि वाकाटक गुप्ता पीरियड, मजूमदार एण्ड आल्टेकर, पृ० ३५५ ।
२. वही, पृ० ३६४ ।
३. द्रष्टव्य-रिफ्लेक्शंस ऑफ दि अमरकोष वी० के० राजवाड़े एनाल्स ऑफ़ दि भंडाकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट पूना वॉल्यूम ७, पृ० ७५-८२, १९२५ ।
४. द्रष्टव्य-वाकाटक गुप्ता पीरियड—मजूमदार एण्ड आल्टेकर, पृ० ४०५ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रमुख तथा महत्त्वपूर्ण टीकाओं का परिचय निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है—

## कामधेनु

सुभूतिचन्द्र विरचित 'कामधेनु' सम्भवत: अमरकोष पर सर्वप्रथम ज्ञात टीका है। सुभूति नाम से ख्यात यह अमरकोष का बौद्ध टीकाकार था। तिब्बती एनसाइक्लोपीडिया के अनुसार तंजौर में किसी सुभूतिचन्द्र की अमरकोष की टीका का अनुवाद का उल्लेख मिलता है।[१] प्रो० दासगुप्ता ने इस सुभूतिचन्द्र और सुभूतिपाल में ऐक्य स्थापित करने का प्रयत्न किया है तथा सुभूतिपाल के अमरकोष के सर्वप्रथम बंगाली टीकाकार होने की सम्भावना प्रकट की है।

सुभूतिचन्द्र के बौद्ध होने के कारण अमरकोष पर उसकी टीका की हस्तलिखित प्रतियाँ तिब्बती शैक्षणिक संस्थानों में सुरक्षित मिलती हैं। अमरकोष के बंगाली टीकाकारों के द्वारा यह टीका उद्धृत की जाती है। सर्वानन्द ने अपनी टीका में सुभूतिचन्द्र का उल्लेख नहीं किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वानन्द के समय ( लगभग ११५०–१२०० ई० ) तक सुभूतिचन्द्र पर्याप्त ख्यात नहीं हुआ होगा।

दुर्भाग्यवश अमरकोष पर सुभूतिचन्द्र की टीका की कम ही हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हैं। राहुल सांकृत्यायन तथा डा० टी० आर० चिन्तामणि के प्रयत्नों से इस महत्त्वपूर्ण टीका की चार हस्तलिखित प्रतियाँ ज्ञात हो सकी हैं। डा० टी० आर० चिन्तामणि ने गवर्नमेंट मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास में प्राप्त इस टीका के कतिपय अंशों का विश्लेषण किया है[२] तथा राहुल महाभाग ने 'संस्कृत तथा तिब्बती ताड़पत्र हस्तलेखों' की एक प्रकाशित सूची में इस टीका का भी उल्लेख किया है।[3] इसके उल्लेख 'माधवीय धातुवृत्ति' जैसी कालान्तर की कृतियों तथा तिब्बती भाषा में इस टीका के एक अनुवाद में मिलते हैं।

गवर्नमेण्ट मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी, मद्रास में प्राप्त इस टीका के कतिपय अंशों से इसमें विद्वत्तापूर्ण प्रस्तुतीकरण तथा इसमें उद्धृत लगभग १२९ ग्रन्थकारों तथा ग्रन्थों के उल्लेख मिलते हैं। इन्हीं में से 'सरस्वतीकण्ठाभरण' तथा 'श्रृंगारप्रकाश' दो कृतियों सहित इसके कर्ता योगराज ( १०१०–१०६२ ई० ) का भी सन्दर्भ आया है। इसी प्रमाण के आधार पर पी० के० गोडे ने 'कामधेनु' की रचना की ऊपरी सीमा १०६२ ई० मानी है। बौद्ध शरणदेव ने ११७२ ई० में रचित अपनी एक कृति 'दुर्घटवृत्ति' में सुभूतिचन्द्र का उल्लेख किया गया है। इस बहि:साक्ष्य के आधार पर गोडे महोदय ने इस कृति की

---

१. इंडियन कल्चर, २-२६१।

२. जर्नल ऑफ ओरियंटल रिसर्च ६,३७२–८०।

३. जर्नल ऑफ बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, वाल्यूम २१, १९३५, पृ० २१-४३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रचना की निम्नतम सीमा ११७२ मानी है। अतः सुभूतिचन्द्र का काल १२वीं शती का प्रथम पूर्वार्द्ध भाग माना जा सकता है।[1]

## अमरकोषोद्घाटन

क्षीरस्वामीविरचित 'अमरकोषोद्घाटन' टीका प्राचीन टीकाओं में सर्वाधिक प्रचलित टीका है। टीकाकार यह क्षीरस्वामी काश्मीरवासी माने जाते हैं। काश्मीरी परम्परा के अनुसार जैसा कि बुहलर[2] ने बताया है, क्षीरस्वामी एक व्याकरणकार थे, जिन्होंने ८-वीं शती ई० के राजा जयापीड़[3] को शिक्षा दी थी। क्षीरस्वामी ने राजशेखर (८८०-९२० ई०) तथा भोज के उद्धरण दिए हैं, अतः उक्त मत संगत नहीं प्रतीत होता। यद्यपि यह मान लिया जाय कि क्षीरस्वामी द्वारा उद्धृत भोज धारानरेश भोज[4] (१०१८–१०६२ ई०) से भिन्न तथा पूर्ववर्ती थे, तथापि क्षीरस्वामी के काल को ९२० के पहले नहीं रखा जा सकता है। अतः यह असम्भव ही है कि प्रस्तुत टीकाकर्ता क्षीर-स्वामी ८वीं शती में होने वाले जयापीड़ का गुरु रहा होगा।

अमरकोष पर उसकी प्रस्तुत टीका के अतिरिक्त ऑफ्रेट ने उनको निम्नलिखित तीन ग्रन्थों का कर्ता बताया है—(१) अव्ययवृत्ति, (२) निपाताव्ययोपसर्ग तथा (३) क्षीरतरंगिणी।[5]

वेलवलकर ने इस सूची में तीन अन्य नाम भी जोड़े हैं—(१) धातुवृत्ति, (२) निघण्टुवृत्ति तथा गणवृत्ति।[6] इन ग्रन्थों के उल्लेख से अनुमान लगाया जा सकता है कि क्षीरस्वामी ख्यात व्याकरणकर्ता रहे होंगे और इस तथ्य की पुष्टि उनकी टीका में प्राप्त पाणिनीय सूत्रों के यथेष्ट प्रयोगों से हो जाती है।

क्षीरस्वामी की टीका संक्षिप्त, सरल तथा स्पष्ट है। समय-समय पर टीकाकार अन्य टीकाकर्ताओं के मतों से भिन्न अपना मत देता है। उसकी व्याख्या अति संक्षिप्त है तथा मूलपाठ में आए प्रायः सभी शब्दों की व्युत्पत्ति प्रस्तुत करती है। उसने अपनी टीका में अमरकोष के तीन पूर्ववर्ती टीकाकारों—गौड, उपाध्याय तथा श्रीभोज का उल्लेख किया है, परन्तु इनके विषय में कुछ ज्ञात नहीं है। टीका में एक सौ से भी अधिक ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों के उल्लेख एवं उद्धरण मिलते हैं।

## टीकासर्वस्व

अमरकोष पर प्रस्तुत टीका एक बंगाली टीकाकार सर्वानन्द की है। बंगाल के

१. कुप्पूस्वामी कामोमोरेशन, वाल्यूम, १९३५, पृ० ४८।
२. वही, पृ० ५१।
३. १८७५-७६ की रिपोर्ट, पृ० ३७।
४. दैव, गणपति शास्त्री द्वारा संपादित, त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज़, वाल्यूम १, पृ० ६। यह परंपरा राजतरंगिणी पर आधृत है। ४,४८८-९।
५. कल्पद्रुकोष, भूमिका, पृ० १८, पादटिप्पणी ३।
६. कैट० कैट० १, १३४०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

राढ़ प्रदेश के बन्धघट गाँव के होने के कारण उनका पारिवारिक नाम बन्धघटीय था।[1] उनके पिता का नाम आर्तिहर था। उनके बंगाली होने के कारण टीका में अनेक बंगाली शब्दों का समावेश अवश्य हो जाता है। टीका के प्रारंभ में ही सर्वानन्द ने लिखा है कि उसने अपनी टीका पूर्ववर्ती १० टीकाकारों के आधार पर लिखी है।[2] परन्तु उसने इन टीकाकारों का नामोल्लेख नहीं किया है। उसकी टीका अतिविद्वत्तापूर्ण है तथा क्षीरस्वामी की टीका से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। यह टीका अमरकोष पर परवर्ती बंगाली टीकाकारों की कृतियों का आधार रही है। अमरकोष के १५वीं शती ई० में होने वाले टीकाकार रायमुकुट[3] भी सर्वानन्द से प्रभावित जान पड़ते हैं।

सर्वानन्द की टीका में प्राप्त अनेक उद्धरणों से ज्ञात होता है कि वह अनेक ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों से परिचित रहा होगा। लगभग १९४ ग्रन्थादि को उसने उद्धृत किया है।

टीकासर्वस्व की रचना की तिथि स्वयं इस टीका में खोजी जा सकती है। पहले कांड में ही विभिन्न युगों से सम्बद्ध वर्ष के उल्लेख के समय सर्वानन्द ने शक संवत् का उल्लेख किया है, जिसमें कि संभवतः उसने यह टीका लिखी। वह अंश इस प्रकार है—'इदानीं चैकाशीतिवर्षाधिकसहस्रिकापर्यन्तेन शकाब्दकालेन (१०८१) षष्टिवर्षाधिकद्विचत्वारिंशच्छतानि कलिसन्ध्याया भूतानि। (४२६०)।'[4]

उपर्युक्त अंश में उल्लिखित शक संवत् वर्ष ई० ११५९ होता है और यही टीकासर्वस्व का रचना-काल प्रतीत होता है।

## अमरकोष टीका

कोलब्रोक ने अमरकोष पर त्रिलोचनदासकृत[5] एक टीका का उल्लेख किया है। सन् १९३५ में इंडियन कल्चर[6] में प्रकाशित 'दि बंगाली कमेंटेटर्स ऑव अमरकोष' शीर्षक अपने लेख में नलिनीनाथदास गुप्ता ने इस टीका के विषय में कुछ सूचनाएँ दी हैं।

दासगुप्ता महोदय ने प्रस्तुत टीका के कर्ता त्रिलोचनदास तथा दुर्गासिंह की कातंत्रवृत्ति पर शब्दार्थ लिखने वाले ख्यात त्रिलोचनदास को एक व्यक्ति माना है।[7] यदि इस तथ्य को उचित माना जाय तो त्रिलोचनदास का काल १२वीं शती माना जा सकता

१. सिस्टम्स ऑफ संस्कृत ग्रामर, पृ० ५२।
२. इंडियन कल्चर—२, २६१।
३. द्रष्टव्य-अथ टीकासर्वस्वं देशटीकावित् करोत्यमरकोशे श्रीमत्सर्वानन्दो वन्द्यघटियारिहरपुत्रः।— भूमिका ५-३।
४. कल्पद्रुकोष, भूमिका ६. १८।
५. टीकासर्वस्व, त्रिवेन्द्रम् संस्करण, पृ० ९१।
६. मिसलेनियस ऐसेज, २,५७। वाल्यूम २, पृ० २६१–९।
७. इंडियन कल्चर, वाल्यूम २, पृ० २६८।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है, क्योंकि वह 'गणरत्नमहोदधि'[१] के रचयिता वर्धमान के बाद के जान पड़ते हैं। गणरत्नमहोदधि की रचना ११४० ई० में हुई थी।[२] जिनप्रबोध या जिनप्रभसूरि ने जिसका काल संवत् १२८५-१३४१ या १२२९-१२८५ ई० था,[3] भी त्रिलोचनदास का उल्लेख किया है।

## अमरकोषमाला

दासगुप्ता ने अमरकोष की परमानन्दशर्माकृत एक अन्य टीका 'अमरकोषमाला'[४] की सूचना दी है।[५] परमानन्द ढाका जिले के भोवाली परगना के शैलिकानि गाँव का निवासी बताया जाता है। दासगुप्ता ने इस टीकाकार का सम्बन्ध मम्मट के काव्यप्रकाश की टीका के कर्ता परमानन्द से स्थापित किया है।[६] एस० के० डे० के अनुसार काव्यप्रकाश की टीका का कर्ता परमानन्द १४वीं शती के उत्तरार्द्ध के पूर्व का नहीं है तथा उसको १६वीं शती का माना जा सकता है।[७] यदि काव्यप्रकाश के टीकाकार और अमरकोष के टीकाकार परमानन्द एक ही व्यक्ति हैं तो अमरकोषमाला का रचना-काल १६वीं शती के आस-पास माना जा सकता है।

अमरकोष पर परमानन्द की प्रस्तुत टीका की हस्तलिखित किसी भी प्रति के प्राप्त न होने के कारण टीका या टीकाकार के विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

## पदचन्द्रिका

यह अमरकोष पर एक अन्य बंगाली टीकाकार की कृति है। टीकाकार हैं बृहस्पति, जो कि रायमुकुट नाम से ख्यात हैं। अपनी टीका के भूमिकाभाग में रायमुकुट ने अपनी टीका को सम्भवतः अमरकोष पर लिखी पूर्ववर्ती १६ टीकाओं पर आधृत बताया है।[८] उसकी टीका पूर्ण तथा मान्य मानी जाती है। रायमुकुट ने अपनी टीका में लगभग २७० ग्रन्थादि को उद्धृत किया है।[९] टीका का रचना-काल इस कृति से ही जाना जा सकता है, समय तथा युग से सम्बन्धित एक विभाग की व्याख्या करते हुए टीकाकार ने अपने ग्रन्थ की रचना का संकेत इस प्रकार किया है—

"इदानीं कालः शाकाब्दः १३५३ द्वात्रिंशदधिकपंचशतोत्तरचतुःसहस्रवर्षाणि कलि-

१. एस० के० वेलवलकर : सिस्टम्स ऑफ संस्कृत ग्रामर, पृ० ८९।
२. आफ्रेट— कैट-कैट, २, १४२।
३. पीटर्सन : संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट की खोज पर चतुर्थ रिपोर्ट, १८८६-९२, पृ० ३८।
४. आफ्रेट कैट-कैट १, ३२५।
५. इंडियन कल्चर २, २६४।
६. वही, २,२६४।
७. संस्कृत पोएटिक्स, १—१७४।
८. द्रष्टव्य—'इयं षोडशटीकार्थसारमादाय निर्मिता'।
९. ऑफ्रेट—कैट-कैट।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सन्ध्याया भूतानि ४५३२ तथा गणितचूडामणौ' इत्यादि।[1] यह शक संवत् १३५३ या १४३१ ई० आता है।

रायमुकुट[2] की टीका अमरकोष की टीकाओं में प्रमुख स्थान रखती हैं। इसकी महत्ता कोलब्रोक के शब्दों में इस प्रकार है—

'टीकाओं में से मुख्य रायमुकुट ( बृहस्पति, जातिनाम रायमुकुटमणि ) की है। पदचन्द्रिका नाम की इस टीका में लेखक के अनुसार पूर्व की १६ टीकाओं का आश्रय लिया गया है, जिसमें मुख्य हैं—क्षीरस्वामी, सुभूति, हड्डचन्द्र, कलिंग, कोंकट, सर्वधर, व्याख्यामृत, टीकासर्वस्व इत्यादि।....यद्यपि मुकुट की टीका बहुधा अपूर्ण रहती है तथा बाद के संकलनकर्त्ताओं ने अनेक दोष बताये हैं, इसके प्रमाण सर्वमान्य हैं।'

## अमरकोष-टीका

इस टीका का कर्ता दुर्लभवल्लभ अब तक अज्ञात ही है। इसकी केवल एक हस्त-प्रति नलिनीनाथ दासगुप्ता के पास थी, जिसके टीकाकार के विषय में कुछ उल्लेख उन्होंने इण्डियन कल्चर[3] में किया है। उक्त हस्तलिपि अपूर्ण है तथा पत्रसंख्या १२३ ब्रह्मवर्ग से खंडित है। फिर भी प्राप्त अंश से टीका के समृद्ध तथा उद्धरणों से पूर्ण होने का आभास मिलता हैं। टीकाकार ने कई ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों के उद्धरण प्रस्तुत किए हैं।

इस असंगत तर्क के आधार पर कि मेदिनी सायण के भाई माधव के बाद का था, दासगुप्ता ने प्रस्तुत टीका का काल १५वीं शती का प्रथमार्द्ध माना है। माधवाचार्य का मेदिनी के अतिपूर्व होना तो सिद्ध किया ही जा चुका है। गोड़े महोदय ने मेदिनी को १२०० ई० तथा १२७५ ई० के मध्य का निश्चित कर ही दिया है।[4] अतः मेदिनी का काल हमें दुर्लभ के काल-निर्धारण में कोई सहायता नहीं देता। अन्ततः यही कहा जा सकता है कि वह मेदिनी के बाद अर्थात् १२७५ ई० के बाद का था।

## अमरकोष-टीका

अलंकार तथा वेदान्त के ख्यात लेखक अप्पय दीक्षित, एस० के० डे० के अनुसार १६वीं शती के तृतीय या चतुर्थार्द्ध के थे।[5] उनका साहित्यिक कार्य-काल १५४९ से लेकर १६१३ ई० तक था।

अप्पय दीक्षित के नाम के साथ जुड़े अनेक ग्रन्थों में उनकी अमरकोष पर एक टीका भी है। ऑफ्रेट[6] ने इस टीका की केवल एक हस्तलिपि को सूचीकृत किया है। यह

१. इण्डिया ऑफिस कैट १, २७ बी०।
२. मिसलेनियस एसेज २, ५९ एस०।
३. वॉल्यूम २, २६३-४।
४. न्यू इंडियन एंटीक्वेरी ७-१७४।
५. संस्कृत पोएटिक्स—१-२६५।
६. कैट-कैट १, २६ बी०, ऑफ्रेट—७८२०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दक्षिण भारत में हस्तलिखित ग्रन्थों के आपर्ट के कैटेलाग में है। यह टीका विशाखा-पत्तनम् के परवस्तु वेंकटरंगाचार्य के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त हुई थी। प्रस्तुत हस्त-लिपि के अब अप्राप्त होने के कारण इसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

## पदार्थकौमुदी

प्रस्तुत टीका नारायण चक्रवर्ती नामक एक बंगाली टीकाकार की कृति है, जिनका काल १६वीं शती का अन्त माना जाता है। इस विशद टीका के सन्दर्भ परवर्ती ग्रन्थकारों में मिलते हैं। इस टीका के कर्ता ने कतिपय शब्दों की व्युत्पत्ति स्पष्ट करते हुए बंगाल में अपने समय में ख्यात व्याकरण की कलाप-परंपरा का अनुसरण किया है।

इस टीका में आए ग्रन्थादि के लगभग ६४ उद्धरणों के सूचीकृत उल्लेख से ज्ञात होता है कि नारायण अमरकोष की तीन पूर्ववर्ती टीकाओं से परिचित थे—

(१) सुभूतिचन्द्र की टीका।
(२) सर्वानन्द की टीका।
(३) रायमुकुट की टीका।

टीका की रचना-काल का टीकाकार ने स्वयं उल्लेख किया है। युग इत्यादि मूल अंश की व्याख्या करते हुए रायमुकुट की भाँति नारायण ने उदाहरणस्वरूप शक संवत् १५४० का उल्लेख किया है। वह अंश इस प्रकार है—

इदानीं शकाब्दाः १५४०, ऊनविंशत्यधिकासप्तचत्वारिंशच्छतानि वर्षाणि कलि-संध्याभूतानि (४७१९)[1]

उक्त शक वर्ष १५४० का उल्लेख बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी[2] की लाइब्रेरी में स्थित इस टीका की एक अन्य हस्तलिखित प्रति में मिलती है। टीका के पुष्पिका अंश में प्राप्त कालवर्णन इस प्रकार हुआ है—

'शके शून्याब्धिबाणामृतकारसहिते' इत्यादि

इसके अनुसार शून्य–०, अब्धि–४, बाण–५ तथा अमृतकार–१ अर्थात् शकवर्ष १५४० प्रस्तुत टीका का रचना-काल स्पष्ट होता है। हरप्रसाद शास्त्री ने अब्धि—४ के स्थान पर ७ रखकर १५७० शक संवत् रचनाकाल माना है, जो कि टीका के मध्य युगादि के उपर्युक्त उल्लेख के आधार पर असंगत प्रतीत होता है। अतः नारायण की पदार्थ-कौमुदी या 'अमरकोष-पंजिका' टीका का रचना-काल हरप्रसाद शास्त्री द्वारा उल्लिखित १५७० न मानकर शक १५४० तथा १६१८ ई० माना जाना चाहिए।

## मुग्धबोधिनी

भरतसेन या भरतमल्लिक द्वारा निर्मित 'मुग्धबोधिनी' टीका का उल्लेख अमरकोष की बंगाल में रचित टीकाओं में उल्लेख करना अति आवश्यक है। बंगाल स्कूल के

१. इंडिया ऑफिस कैट सं० ९५८-९।
२. आर० ए० एस० बी०, डिस्क्रिप्टिव कैट ७, पृ० ३०१।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा बोपदेव के व्याकरण को स्वीकार करने वाले परवर्ती लेखकों ने इसको अत्यधिक मान्यता दी है।[1] यह टीका इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि इसमें अमर० के विभिन्न टीकाकारों द्वारा दिए पाठ-भेद पर विचार किया गया है। यहाँ शब्दव्युत्पत्ति भी बोपदेव के व्याकरण-सिद्धान्तों के आधार पर दी गई है।

भरतसेन को अन्य सभी कृतियाँ भी टीकारूप में हैं, जिनमें से कुछ 'मेघदूत', 'कुमारसंभव' तथा 'शिशुपालवध' जैसे काव्यग्रन्थों पर भी हैं। उसने कुछ व्याकरण ग्रन्थ भी लिखे। उसके नामों से रचित बताए गए कई ग्रन्थों में से ऑफ्रेट[2] ने 'वैद्य-कुलतत्त्व' नामक एक ग्रन्थ सूचीकृत किया है, जिसमें वंशपरम्परा के उल्लेख सहित बंगाल के वैद्यों का इतिहास वर्णित हैं।[3] भरतसेन ने 'द्विरूपध्वनिसंग्रह' संज्ञक एक कोश भी बनाया था, जिसमें संगृहीत शब्दों के उच्चारण के आधार पर दो अर्थ प्राप्त होते हैं।

भरतसेन के काल-निर्णय में विभिन्न विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। ऑफ्रेट ने उसे १८वीं शती में रक्खा है। कोलब्रोक के विचार भी मिलते-जुलते ही हैं। रामावतार शर्मा ने शक सं० १५६१[4] या १६३९ ई० में रचित बोपदेव की 'कविकल्पद्रुम' पर दुर्गादासकृत टीका में आए भरतसेन के उद्धरण के आधार पर उक्त मत का खण्डन किया है। उनके अनुसार भरतसेन दुर्गादास के कुछ वर्ष पूर्व ही हुआ होगा। शर्माजी के मत का खण्डन डी० सी० सरकार ने किया है। अपने लेख 'भरतमल्लिक एण्ड पेट्रन'[5] में शर्माजी के मत की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा—"वास्तव में दुर्गादास ने अपनी किसी भी वृत्ति में भरत को उद्धृत नहीं किया है।" उन्होंने आगे कहा कि भरत शक सं० १५८३ या १६६१ ई० में 'चिकित्सारत्नावली' के कर्ता कविचन्द्र के समकालिक थे।

भरतसेन की टीका की सही तिथि ग्रन्थकार ने ही मनुष्यवर्ग के अन्त में दिए एक उल्लेख से स्पष्ट कर दी है। वहाँ वर्णित तिथि शक सं० १५९९ या १६७८ ई० है। उक्त उल्लेख इस प्रकार से है—

मुग्धबोधिन्यां नृवर्गविवरणं समाप्तं, ग्रन्थकारस्य शुभमस्तु। शकाब्दः १५९९, -११५-२५।[6]

---

१. विल्सन : कलेक्टेड ऐसेज़ ५-२०६।
२. कैट० कैट०।
३. आर० मित्र : नोटिसेज़ २, संख्या ६११।
४. कैट, कैट १, ३९६ बी०।
५. इण्डियन हिस्टॉरिकल क्वार्टरली, १८, १६८-७५।
६. इस अंश से युक्त हस्तलिपि डी० सी० सरकार के अधिकार में है तथा उसमें शक १७०५ तिथि अंकित है।



CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस उल्लेख से टीका के रचना-काल से सम्बद्ध मतभेद समाप्त हो जाते हैं तथा भरतसेन का साहित्यिक कार्यकाल १६५०-१६८० उचित माना जा सकता है।

## व्याख्या सुधा

अमरकोष पर व्याकरणकार भट्टोजिदीक्षित के पुत्र भानुजिदीक्षितकृत 'व्याख्यासुधा' या 'रामाश्रमी' टीका मिलती है। टीकाकर्ता के अनुसार यह टीका बघेल वंशीय[1] महोधर के शासक कीर्तिसिंह की इच्छा के कारण लिखी गई।

अमरकोष पर लिखी महत्त्वपूर्ण टीकाओं में से यह एक है। टीका में शब्दों का स्पष्टीकरण अपने में पूर्ण है तथा विभिन्न उदाहरणों द्वारा पुष्ट भी किया गया है और शब्दव्युत्पत्ति पाणिनीय व्याकरण के नियमों के अनुसार दी गई है। कहीं-कहीं पर टीकाकार अपने पूर्ववर्ती टीकाकारों मुख्यरूपेण रायमुकुट द्वारा प्रदत्त व्याख्या की वह आलोचना भी करता है और उनसे भिन्न मत रखने पर अपना मत प्रस्तुत करता है। भानुजिदीक्षित ने अपने से पूर्ववर्ती दो टीकाकारों—रायमुकुट तथा स्वामी (क्षीरस्वामी) को अत्यधिक उद्धृत किया है।

भानुजिदीक्षित की टीका केवल विद्वत्तापूर्ण और विशद ही नहीं है, उसमें अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के उद्धरण भी प्रस्तुत किए गए हैं, जो कि टीकाकार की अध्येतावृत्ति को सुस्पष्ट करते हैं।

भानुजिदीक्षित के एक शिष्य वत्सराज ने सं० १६९८ या १६४१ ई० में 'वाराणसीदर्पण' एक सटीक ग्रन्थ लिखा। इसकी टीका के प्रारम्भ में वत्सराज ने अपने पूर्ववर्ती भट्टोजिदीक्षित तथा भानुजिदीक्षित को इस पंक्ति में नमन किया है :—

भट्टोजिदीक्षितं नत्वा रामाश्रमं गुरुं पुनः।
वत्सराजः करोत्येनाम् काशीदर्पणकाशिकाम् ॥ [2]

वत्सराज की कृति 'वाराणसीदर्पण' का रचना-काल १६४१ ई० भानुजिदीक्षित का काल-निर्धारण निर्णय करने में सहायक सिद्ध हुआ। इनका उपनाम रामाश्रम भी था और इसीलिए प्रस्तुत टीका को 'रामाश्रमी टीका' भी कहते हैं। उक्त प्रमाण के आधार पर भानुजिदीक्षित के साहित्यिक कार्यकाल को १७वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है।

## अमरकोष-विवेक

प्रस्तुत टीका अमरकोष पर बहुत बाद की महेश्वरकृत टीका है, जो कि महाराष्ट्र का निवासी था। टीकाकार ने इसमें अपने इतिहास के विषय में कुछ भी नहीं कहा है। टीका के अन्तर्गत उसके द्वारा उद्धृत ग्रन्थकारों में अमरकोष के १७वीं शती के प्रारम्भ

१. उदाहरणार्थ—इति श्रीबघेलवंशोद्भव-महोधरविषयाधिपश्रीकीर्तिसिंहदेवाज्ञया श्रीभट्टोजिदीक्षितात्मज-श्रीभानुजिदीक्षितविरचितायाममरव्याख्यायाम्' इत्यादि।
२. रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल—डिस्क्रिप्टिव कैट० ७-१७७।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के टीकाकार भानुजिदीक्षित या रामाश्रम का उल्लेख भी किया है। इससे हमें उसके काल का तनिक आभास मिलता है।

महेश्वर की टीका का शब्दविज्ञान की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। अपनी टीका में उसने बहुत से संस्कृत के समानार्थी मराठी शब्द तथा कथनप्रकार उद्धृत किए हैं। यत्र-तत्र प्रायः उसने मराठी शब्दों को 'इति प्रसिद्धम्', 'इति ख्यातम्' तथा 'इति लौकिक-भाष्यम्' आदि कहकर उद्धृत किया है।

महेश्वर ने उद्धरणों की सूची में टीकाकार भानुजिदीक्षित का उल्लेख किया है, क्योंकि भानुजिदीक्षित का काल १७वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाता है, अतः महेश्वर का काल १७वीं शती का उत्तरार्द्ध या १८वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जाना संगत होगा।

## अमरकोषपदविवृत्ति

मद्रास के स्वर्गीय शेषगिरि शास्त्री ने[1] अमरकोष की एक टीका की हस्तलिपि को सूचीकृत किया जो कि लिंगभट्टकृत तथा 'लिंगभट्टीय' संज्ञा से जानी जाती है। टीका के कर्ता के नाम को विभिन्न प्रकार से अंकित किया जाता है तथा टीका को 'अमर-कोषपदविवृत्ति'[2] संज्ञा भी दी जाती है। केवल तृतीय कांड में ही टीकाकार ने लगभग १७१ ग्रन्थों तथा ग्रन्थकारों के नाम उद्धृत किए हैं।

लिंगभट्ट का परिचय हमें अप्राप्त ही है। आफ्रेट[3] ने उसके पिता का नाम काम्यभट्टो-पाध्याय बताया है। उसकी टीका तथा समय के विषय में पी. पी. एस. शास्त्री ने बताया कि—"लिंगयसूरि एक तेलुगु ब्राह्मण था और उसकी टीका दक्षिण में सर्वाधिक प्रचलित हुई। लेखक १८वीं शती का था।"[4]

देवस्थली ने कहा है कि वह अवश्य मल्लिनाथ से पूर्व रहा होगा, क्योंकि मल्लिनाथ ने अपने 'वैश्यवंशसुधाकर' में लिंगभट्ट को उद्धृत किया है। इस प्रकार लिंगभट्ट को मल्लिनाथ के काल १४८० ई० से पूर्व का माना जा सकता है।

## सारसुन्दरी

प्रस्तुत टीका अमरकोष पर मथुरेश विद्यालंकार नाम के एक बंगाली टीकाकार की कृति है। यह टीका बहुत उपयोग में आती है तथा अमरकोष की अन्य टीकाओं के उद्धरणों से पूर्ण है, जिनमें रायमुकुटकृत 'पदमंजरी' मुख्य है। मथुरेश आशाधर के 'क्रियाकलाप' तथा सुपद्म-मत[5] के व्याकरण का अनुसरण करता जान पड़ता है।

---

१. संस्कृत तथा तमिल मैन्युस्क्रिप्ट की खोज पर रिपोर्ट। ८८३-४, नं० २, पृ० ३२।
२. तंजौर मैन्युस्क्रिप्ट डिस्क्रिप्टिव कैट ९, संख्या ४९६०-६५।
३. कैट० कैट० १,५४४ बी।
४. तंजौर मैन्युस्क्रिप्ट डिस्क्रिप्टिव कैट ९, संख्या ४९६०।
५. द्रष्टव्य—रायमुकुटटीकादिकलापादिक्रिया यतः।
सुपद्मप्रक्रिया तस्मान्मथुरेशेन तन्यते ॥ ५–५

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

टीका की विशेषताओं के सम्बन्ध में कोलब्रोक ने लिखा है—"यह स्पष्ट है तथा उद्धरणों से भरी पड़ी है और इसीलिए पाठालोचन की दृष्टि से सूचनाओं का बृहद् स्रोत है।" तथा रामावतार शर्मा प्रभृति विद्वानों ने इस मथुरेश तथा मुशाखान के राज्यकाल में होने वाले 'शब्दरत्नावली' कोषग्रन्थ के रचयिता मथुरेश में साम्य स्थापित किया है। परन्तु यह साम्य संदेहास्पद है, क्योंकि दोनों के बंगाल के होने और सम्भवतः समकालिक होने के अतिरिक्त कोई अन्य साम्य नहीं मिलता।

शक १५८८ या १६६६ ई० जो कि टीका के कर्ता ने टीका के अन्त में[1] सूचित की है, यही कृति का रचनाकाल या टीकाकार का साहित्यिक कार्यकाल माना जाता है।

## शब्दार्थसंदीपिका

ख्यात जौमर व्याकरण सम्प्रदाय के मतानुयायी नारायण विद्याविनोद की अमरकोष पर 'शब्दार्थसंदीपिका'[2] टीका मिलती है। अमरकोष पर प्रस्तुत टीका के अतिरिक्त नारायण ने सम्भवतः निम्नलिखित टीकाएँ भी लिखी थीं—

गणकप्रकाश : संक्षिप्तसार के गणपाठ पर एक टीका।
प्राकृतवाद : संक्षिप्तसार के प्राकृत अध्याय पर एक टीका।
भट्टिबोधिनी : भट्टिकाव्य पर एक टीका।
व्याकरणदीपिका : गोपीचन्द्र की 'संक्षिप्तसारदीपिका' पर एक टीका।

प्रस्तुत अमरकोष की टीका में यद्यपि नारायण विद्याविनोद ने सामान्यरूप से संस्कृत व्याकरण का प्रतिनिधित्व किया, विशेषरूप से उसने क्रमदीश्वर के द्वारा संस्थापित जौमर संप्रदाय की प्रशंसा की है।[3]

## अमरोद्योत

हरप्रसाद शास्त्री ने रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल के अपने संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों के[4] डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग में 'अमरोद्योत' नामक अमरकोष की एक टीका की हस्तलिपि का उल्लेख किया है। यह बंगाली शैली में है तथा पर्याप्त विशद जान पड़ती है। इसके टीकाकार पुरुषोत्तम तर्कालंकार बताए गए हैं।

## शिशुबोधिनी

अमरकोष की परवर्ती टीकाओं में 'शिशुबोधिनी' टीका का उल्लेख अवश्य किया जाना चाहिए। इसके टीकाकार एक महाराष्ट्री महेश्वर सुकथणकर थे।

---

१. द्रष्टव्य—गजाष्टतिथियुक् शाके विद्यालंकारधीमता।
लिंगादिसंग्रह-टीका निर्ममे सारसुन्दरी॥
२. ऑफ्रेट कैट-कैट १,२९१ बी.
३. द्रष्टव्य—सन्ति यद्यपि भूयांसः शब्दलक्षणचक्षुषः।
तथापि जौमराभ्यासविशेषादेव शिष्यते॥
( इण्डिया ऑफिस कैटेलाग संख्या ९६४ )
४. वॉल्यूम ६, संख्या ४८९२।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

महेश्वरकृत 'अमरविवेक' टीका की भाँति प्रस्तुत टीका भी अमरकोष के शब्दों की व्याख्या करते समय संस्कृत शब्दों के समानार्थी मराठी शब्द प्रस्तुत करती है तथा टीकाकार ने पूर्ववर्ती ग्रन्थकारों को उद्धृत भी किया है।

टीका के कर्ता का काल ज्ञात नहीं है, परन्तु कुछ स्थलों पर अभिव्यक्ति-प्रकार में साम्य होने से ऐसा जान पड़ता है कि नाम से यह टीकाकार अमरकोषविवेक के कर्ता महेश्वर से अवश्य परिचित रहा होगा, क्योंकि 'अमरकोषविवेक' का कर्ता १७वीं शती के अन्त का है। प्रस्तुत टीका का कर्ता महेश्वर सुकथणकर भी उसके बाद का हो सकता है।

## आलोचना-प्रत्यालोचना

श्रीहर्ष ने अपनी कृति अमरखंडन में अमरकोष की कुछ त्रुटियाँ तथा अनियमितताओं का उल्लेख किया है। स्वर्गीय डा० टी० आर० चिन्तामणि ने जर्नल ऑफ ओरियण्टल रिसर्च, मद्रास, वाल्यूम ५, पी.पी. १६-२६ में इसको प्रकाशित किया। यह कार्य उन्होंने मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी (डो नं० १५९५) तथा आड्यार लाइब्रेरी ( २ पी ४२६. डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग नं० ७९७ ) में तेलुगु लिपि में प्राप्त इसकी ताड़पत्रांकित हस्तलिपि के आधार पर किया।

अमरखण्डन के लेखक श्रीहर्ष का ऐक्य बहुधा नैषधीयचरित के ख्यात लेखक श्रीहर्ष से भूल से समझा जाता है। यह तो वास्तव में नैषधीयचरित के लेखक श्रीहर्ष से भिन्न तथा तेलुगु देश के बाद के लेखक हैं। इस तथ्य को सप्रमाण श्री वी० राघवन ने स्वयं संकलित श्रीकृष्णसूरिविरचित अपने 'अमरमण्डन' ग्रन्थ ( डेकन कालेज पूना से प्रकाशित १९४९ ) की भूमिका के चतुर्थ खण्ड में प्रतिपादित किया है। अमरसिंह ने स्वयं अपनी कृति के प्रारम्भ में स्वयं अनुसरित मार्ग का उल्लेख इस प्रकार किया है ( १।, २-५ ) :

१. अन्यतन्त्र-समाहार
२. संक्षेप ( प्रसिद्धाप्रसिद्ध में से चुनाव )
३. प्रति-संस्करण
४. वर्गगत-विभाजन
५. नामलिंगानुशासन
६. सम्पूर्ण प्रस्तुतीकरण

यद्यपि अमरसिंह ने अपने कोष की रचना बहुत ही सावधानी से की, फिर भी उसके समय के बाद भी कुछ शब्द प्रचलन में आए, जिनके लिए पुरुषोत्तमदेव को पूरक सूचीरूप में अपनी कृति 'त्रिकाण्डशेष' में प्रतिपादित करना पड़ा, जैसा कि स्वयं उन्होंने अपने ग्रन्थ की भूमिका में कहा है। सम्भवतः इसी कारण से अव्यय, एकार्थ आदि के पृथक् कोष तथा द्विरूपकोष, शब्द-भेद-प्रकाश-जैसे ग्रन्थों की आवश्यकता कालान्तर में पड़ी और आज ऐसे ग्रन्थ हमें उपलब्ध हो सके।

आन्ध्र देश के एक लेखकवर्ग ने कोषशास्त्र के इस क्षेत्र में कार्य किया। उन्होंने

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शब्दों के अप्रचलित पर्याय, उसके भिन्न रूप तथा एक ही शब्द के विभिन्न लिंगों में प्रयोग का प्रतिपादन किया। श्रीहर्ष ने इसी वर्ग के एक लेखक के रूप में उपर्युक्त तीनों विषयों के आधार पर अमरसिंह के कोश को शब्दों के आधार पर विभिन्न रूपों के तथा लिंगनिर्देश के आधार पर अपूर्ण बताया। श्रीहर्ष के अनुसार अमरसिंह स्वयं निर्धारित नियमों के एकरस पालन में असफल रहे हैं।

कृष्णसूरिरचित 'अमरमण्डन' अमरकोष की श्रीहर्षकृत इसी आलोचना का प्रत्युत्तर तथा अमरसिंह की प्रतिज्ञा की पुनः स्थापना है। अमरमंडन एक स्वतन्त्र कृति नहीं है, वरन् कृष्णसूरिकृत एक वृहद् आलोचना-ग्रन्थ 'साहित्यकल्पलतिका' का अन्तिम तथा पाँचवाँ अध्याय है। इसकी तेलुगू में केवल एक कागज-हस्तलिपि आर० नं० २६०४ (ए) मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी के संग्रह में सुरक्षित है, जिसके आधार पर श्री वी० राघवन ने इसे १९४९ में पुस्तकाकार में प्रकाशित किया है। उपर्युक्त हस्तलिपि लेखक कृष्णसूरि के ही किसी सम्बन्धी शान्तालूरु कृष्णमाचार्यालुगारु जो कि आन्ध्रदेश के पश्चिमी गोदावरी के जिले तनुकु के निवासी थे, उपर्युक्त पुस्तकालय को १९१७-१८ में प्राप्त हुई थी, जिसकी एक देवनागरी प्रतिलिपि आर. ५६१०० भी पुस्तकालय में तैयार करके सुरक्षित है।

वी० राघवन द्वारा प्रकाशित 'अमरमण्डन' की भूमिका ( खंड ४ ) में उन्होंने कृष्णसूरि के जीवन व कृतियों आदि के विषय में पर्याप्त प्रकाश डाला है, जिसे यहाँ संक्षेप में समझ लेना ही पर्याप्त होगा। कृष्णसूरि शान्तालूरि वंश का था। उसकी कृतियों की पुष्पिका आदि में उसके पिता का नाम गोपालाचार्य बताया गया है जो १४ विद्याओं में पारंगत थे। हयग्रीव इसके आराध्यदेव थे, जैसा कि साहित्यकल्पलतिका के पंचम स्तबक 'अमरमंडन' की पुष्पिका से स्पष्ट होता है—

"श्रीमते हयग्रीवाय नमः। इति श्रीशान्तलूरिवंशपयःपारावारराकासुधाकरायमाणानवद्यचतुर्दशविद्यापरिश्रमस्य गोपालाचार्यसूरेस्तनूजेन कृष्णसूरिणा विरचितायां साहित्यकल्पलतिकायां अमरमण्डनं नाम पंचमः स्तबकः ॥"

उसकी कृति 'अलंकारमीमांसा' की प्रारम्भिक पंक्तियों के उल्लेख से ज्ञात होता है कि उसके पितामह का नाम भी कृष्णसूरि ही था। इसके अतिरिक्त एक अन्य अलंकार ग्रन्थ 'कविकंठपाश' भी उसके नाम से जाना जाता है। साहित्यकल्पलतिका में ही कृष्णसूरि ने एक स्वरचित 'हयग्रीवस्तव' स्तुति का उल्लेख किया है। साहित्यकल्पलतिका के तृतीय अध्याय में उसने उसके अंश उद्धृत भी किए हैं। इसके अतिरिक्त 'स्त्रीपुनर्विवाहकरणनिरसन' ( धर्मशास्त्र ) आर० २६०४ तथा 'नाडीनिर्णय' नामक २७ पद्यों की एक अश्विनकृत नाडीविषयक चिकित्सा ग्रन्थ की टीका ( आर० २४९५ ) जो कि मद्रास गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी में सुरक्षित हैं, भी उसकी कृतियाँ हैं। वी० राघवन ने अपनी भूमिका में कृष्णसूरि का काल १७७० ई० माना है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरकोष की श्रीहर्षकृत आलोचना 'अमरखण्डन' तथा कृष्णसूरिकृत प्रत्यालोचना

'अमरमण्डन' के मुख्य विषय को संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया जा सकता है :—

( १ ) अमर० में प्रदत्त पर्याय अपर्याप्त हैं। अन्य कोषों में प्राप्त कई अन्य पर्याय संगृहीत नहीं किए गए हैं। अमरसिंह की प्रतिज्ञा 'अन्यतन्त्रसमाहार' की मान्यता के आधार पर इस कृति में सभी कृतियों के शब्दों का संकलन, सभी रूपों का संग्रह तथा सभी सम्भव लिंगों का निर्देश होना आवश्यक है। इसके विपरीत, श्रीहर्ष का संकेत है कि अमरकोष में इन्द्र के अश्व, सारथी तथा उद्यान के लिए केवल एक-एक शब्द परिगणित हैं—उच्चैःश्रवस्, मातलि और नन्दन, ( अमर० १।१।४५ ) जब कि कई अन्य प्रचलित और ज्ञात शब्द इनके लिए हैं, और विभिन्न कोषकारों ने अपने कोषों में परिगणित भी किए हैं। उदाहरणार्थ—

'हय उच्चैःश्रवा नीला शुभ्रांगी ( ङ्०गः ) शक्रवाहनः ।
सूतोऽस्य मातलिश्चित्रो देवसारथिरित्यपि ॥
वनं च नन्दनं देवकाननं नन्दनामकम् ।
देवोद्यानम् ॥ ( पर्यायरत्नमाला )
मातलिः माकलिः शक्रसारथिस्तु हयंकषः ।' ( रभस )

यदि अमरसिंह के प्रतिज्ञाश्लोक के 'संक्षिप्त' पद के आधार पर उसकी अन्य ग्रन्थों के अधिक प्रचलित शब्दों का ही समावेश करने की प्रवृत्ति से तात्पर्य लगाया जाय, तो भी श्रीहर्ष के अनुसार अमरसिंह अपने 'संक्षेप' करने की प्रवृत्ति पर एकरस होकर नहीं चले हैं। उदाहरण के लिए 'मत्स्य' के प्रयुक्त शब्दों—'पृथुरोमा झषो मत्स्यो मीनो वैसारिणोऽण्डजः' ( अमर० १।१०।१७ ) से इसका अनुमान लगाया जा सकता है। इसी प्रकार 'इन्द्र' के नामों में कई अप्रचलित पर्याय समाविष्ट किए गए हैं। अपरिचित तथा दुष्प्राप्य पर्यायों के समावेश के साथ ही 'प्रतिसंस्कार' की प्रतिज्ञा को भुला दिया गया है। विष्णु के पर्यायों के सूचीकरण के समय दिए गए 'उपेन्द्र' तथा 'इन्द्र-अवरज' ( १।१।२० ) तथा 'मा-धव' और 'श्रीपति' ( १।१।१८-२१ ) शब्द परस्पर पूर्णतया भिन्न नहीं हैं। इसी प्रकार निम्नलिखित कुछ उदाहरणों में अमरसिंह ने एक ही नाम के सम्भव भिन्न-भिन्न रूपों को प्रस्तुत किया है :—

| | |
|---|---|
| वाणिज्य और वणिज्या | ( २. ९. ७९ ) |
| गन्धवह और गन्धवाह | ( १. १. ६२ ) |
| तारा और तारका | ( १. ३. २१ ) |
| रोहित और लोहित | ( १. ५. १५ ) |
| निक्वाण, निक्वण, क्वाण, क्वण और क्वणन की पूर्ण शृंखला | ( १. ७. २४ ) |
| भ्रकुंस, भ्रुकुंस, भ्रूकुंस | ( १. ७. २१ ) |
| परिभव तथा परीभाव | ( १. ७. २२ ) |
| कौतूहल, कुतूहल तथा कौतुक, कुतुक | ( १. ७. ३१ ) |
| गभीर तथा गम्भीर | ( १।१०।१५ ) |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

विहंग तथा विहंगम, विहग (२. ५. ३२)
शकुन्ति, शकुन्त तथा शकुनि, शकुन (२. ५. ३२)
पतत्रि-इत्यादि (२. ५. ३३)।

कृष्णसूरि ने अपनी प्रत्यालोचना 'अमरमण्डन' में अमरसिंह के पक्ष को सुदृढ़ करते हुए उसके द्वारा अधिक प्रचलित शब्दों के ग्रहण करने के 'संक्षेप सिद्धान्त' को उचित बताते हुए उपर्युक्त अतिरिक्त रूपों को भी 'प्राचुर्यविवक्षा' के कारण अधिक प्रचलित बताया है।

(२) दूसरी आलोचना इस प्रकार है। कोष दो प्रकार के होते हैं—पर्याय तथा नानार्थ। अमरकोष में दो भिन्न सिद्धान्त से शब्द संगृहीत हैं- पर्याय तथा लिंग, जिसे कि श्रीहर्ष ने अमरसिंह के प्रतिज्ञावाक्य के 'नामलिंगानुशासनम्' पद से ग्रहण किया है। यदि उक्त अर्थ सही माना जाय तो 'प्रतिसंस्कृतैः' पद का कोई प्रयोजन ही न रहे और कोष में नानार्थ के लिए कोई स्थान न रहे। कृष्णसूरि ने तो केशव, विश्वप्रकाशकार, वैजयन्ती तथा रभस के कोषों से उद्धरण देकर, 'प्रतिसंस्कृतनिबन्धन' की सार्थकता प्रमाणित की है। कृष्णसूरि के मतानुसार 'नामलिंगानुशासनम्' पद का श्रीहर्षकृत तात्पर्य उचित नहीं है। 'नामन्' के अन्तर्गत पर्याय, अव्यय तथा नानार्थ का समावेश किया जाना चाहिए। ऐसा न होने पर 'नामन्' पद का कोई महत्त्व नहीं रहेगा और अमरकोष केवल 'लिंगानुशासन' कहलाने का अधिकारी होगा। 'प्रतिसंस्कार' से तात्पर्य नानार्थ शैली के शब्दों की पुनः व्याख्या करना है।

(३) श्रीहर्ष की तृतीय आलोचना इस प्रकार है। अमरकोष में एक ही वर्ग के अन्तर्गत एक ही प्रकार के शब्दों का संग्रह किया गया है। वर्ग के अन्तर्गत आए उपवर्ग भी एक प्रकार के जीवों या वस्तुओं को एक साथ प्रस्तुत करते हैं। परन्तु कहीं-कहीं इन्हें पृथक्-पृथक् भी रक्खा गया है। उदाहरणार्थ स्वर्गवर्ग के अन्तर्गत सर्वप्रथम देवों को एक स्थान पर 'अमरा निर्जरा देवाः.....' इत्यादि के अन्तर्गत परिगणित किया है। अनन्तर इस देववर्ग के देवों के पर्याय 'इन्द्र' आदि शीर्षकों में पृथक्-पृथक् परिगणित हैं। यहाँ तक तो अमरकोष ठीक है।

परन्तु जब हम दैत्यों का उल्लेख पाते हैं तो दो प्रकार की सूची मिलती है—'असुरा दैत्यदैतेयदनुजेन्द्रारिदानवाः.....' (१।१।१२) तथा उपवर्ग 'राक्षसः कौणपः क्रव्यात्क्रव्यादः.....' (१।१।६०)।

दक्षिण-पश्चिम के स्वामी 'नैर्ऋत' के पर्यायों के सन्दर्भ में परिगणित उपर्युक्त दूसरे उपवर्ग को, वास्तव में, सामान्य 'असुर' पर्याय के परिगणन के तुरन्त बाद होना चाहिए था। कृष्णसूरि ने श्रीहर्ष की इस आलोचना को अपने अमरमण्डन में विशेष स्थान नहीं दिया है।

(४) अमरकोष में एक ही शब्द के विभिन्न संभव लिंगों का निर्देश नहीं हो सका है और साथ-ही-साथ अमरसिंह एक ही शब्द के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत करने में असफल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रहे हैं। श्रीहर्ष ने कुल २७ उदाहरणों को लेकर उपर्युक्त त्रुटि का प्रकाशन किया है। कृष्णसूरि ने क्रम से इनकी परीक्षा की है तथा विभिन्न कोषों और कवियों के प्रयोगों के उदाहरण देकर यह प्रमाणित किया है कि अमरसिंह उन-उन शब्दों के संभव अन्य लिंगों से अनभिज्ञ नहीं था, वरन् उसने अधिक प्रचलित लिंगों का ही निर्देश अपनी कृति में किया।

## अमरकोष की लोकप्रियता

अमरसिंह का नाम लिंगानुशासन जिसका प्रचलित नाम अमरकोष है, संस्कृत कोष-साहित्य में सर्वप्रथम स्थान रखता है। वास्तव में संस्कृत अध्ययन को सबसे प्रारम्भिक अवस्था में इसका हृदयंगम होना आवश्यक माना गया है।

अमरकोष संस्कृत-भाषा से सम्बद्ध हो गया है। जहाँ-जहाँ संस्कृत-भाषा का प्रचार हुआ, अमरकोष का प्रचलन वहीं हुआ। संस्कृत अध्येताओं को अन्य कोषों का आश्रय वहीं लेना पड़ता है, जहाँ कि अमरकोष मौन पाया जाता है। एच० टी० कोलब्रोक ने अमरकोष के अपने संस्करण की भूमिका में कुछ इसी प्रकार के विचार व्यक्त किए हैं[1] :—

"अमरकोष या अमरसिंहकृत संस्कृत कोष संस्कृत की संज्ञाओं के लिए सर्वश्रेष्ठ निर्देशन है। विद्वानों के अनुसार व्युत्पत्तिशास्त्र पर पाणिनि की कृति एक सीमित क्षेत्र में अन्य व्याकरणों से श्रेष्ठ है, परन्तु अमरकोष वहाँ है जहाँ संस्कृत भाषा है। अन्य कोषों का आश्रय तभी लिया जाता है, जब अमरकोष मौन रहता है या त्रुटिपूर्ण है। बहुत से टीकाकारों ने इस पर कार्य किया है। जब कि हेमचन्द्र के अतिरिक्त किसी भी कोष पर इतनी टीकाएँ नहीं मिलतीं।"

अमरसिंह और उसकी कृति अमरकोष की लोकप्रियता का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि उसके परवर्ती लेखकों ने भी अमरकोष के पूरक ग्रन्थ लिखे तथा कुछ ने तो केवल प्रचलित हो जाने के लिए ही अपनी कृति को अमरसिंह के नाम से जोड़ दिया।

एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल वाल्यूम ६, डिस्क्रिप्टिव कैटेलाग एम० एम० हरप्रसाद शास्त्री ने लेक्सिकोग्राफी अध्याय १९ के अन्तर्गत दो पूरक ग्रन्थों ( हस्तलिपि रूप में संख्या ४६५३ तथा ४६५५ ) का उल्लेख किया है। पहला है, पुरुषोत्तमदेवकृत 'त्रिकाण्डशेष', जिसको कई बार प्रकाशित भी किया जा चुका है। इसका लेखक बौद्ध था। अमरसिंह ने १७ नाम बुद्ध के तथा शाक्यमुनि के लिए ५ नाम दिए हैं, जब कि पुरुषोत्तमदेव ने बुद्धदेव के नामों में ३७ अन्य तथा शाक्यमुनि के लिए ३ अन्य नाम जोड़े हैं। अमरसिंह तथा पुरुषोत्तमदेव के मध्य के समय में बौद्धधर्म में कई 'यान' बन गए थे और इन यानों के द्वारा प्रचारित सभी नये शब्दों का समावेश पुरुषोत्तमदेव के कोश में हुआ। पुरुषोत्तमदेव ने अपनी कृति के अन्त में बताया

१. मिसलेनियस एसेज़—२। पृ० ५०, मद्रास से १८७२ में प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

कि केवल प्रचलित शब्दों को ही लेखक ने अपनी कृति में समाविष्ट किया है। पाणिनि आदि द्वारा स्वीकृत परन्तु अप्रचलित शब्दों का ग्रहण नहीं किया गया है। दूसरे पूरक ग्रन्थ श्रीधरकृत 'विश्वलोचन' या 'मुक्तावली' में लेखक ने प्रारंभ में ही बताया है कि अमरसिंह के द्वारा बुने गए रेशमी वस्त्र में लेखक ने इस ग्रन्थ से मोती जड़ने का काम किया है। यह मुक्तासमूह लेखक ने मध्यवर्ती महान् कवियों से लिये हैं। लेखक सेन परिवार का है। श्रीधर निश्चित रूप से बौद्ध था, क्योंकि ग्रन्थ की पुष्पिका के ८वें पद्य में उसने स्वयं को बुद्ध के चरणों में समर्पित किया है। यहाँ शब्द प्रारम्भ में वर्णानुक्रम से संगृहीत हैं और अन्त में क, ख, आदि क्रम से हैं।

'शेषामर' भी इसी परम्परा का एक ग्रन्थ है जिसका उल्लेख रंगाचारी ने गवर्नमेण्ट ओरियण्टल मैन्युस्क्रिप्ट लाइब्रेरी मद्रास में संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट का कैटैलाग वाल्यूम ३, पृ० १२१८–१९ में किया है। यहाँ ग्रन्थ के कर्ता का नाम नहीं आया है। इसमें कई शब्द जोड़े गए हैं तथा लिंग-विषयक पूरक नियम भी प्रतिपादित हैं। आफ्रेट के कैट० कैट० १,१९६९ पृ० ३३६ में भी इसका उल्लेख निम्न प्रकार से अमरसिंह के नाम के साथ हुआ है :—

अमरसिंह —अमरकोष नामलिंगानुशासन

अमरसिंह —अनेकार्थचन्द्रिका एस० एस० पी० सी० २ बी०—४९,५१,५२,५४, ५७-५९,६२,६४

अमरसिंह —उणादिप्रकरणवृत्ति

अमरसिंह —शेषामर

अमरसिंह और अमराचार्य—अनेकार्थध्वनिमंजरी इत्यादि।

इसी प्रकार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग के संग्रहालय में सुरक्षित हस्तलिखित संस्कृत-प्राकृत पाण्डुलिपियों में एक ग्रन्थ 'एकाक्षरनाममालिका' मिला है ( ग्रन्थ-संख्या २४८, वेष्टन सं० २३७ ) जिसका कर्ता अमरसिंह नाम से स्पष्ट बताया गया है। ग्रन्थ को लिपिबद्ध १९०२ वि० में किया गया था और उसकी 'पुष्पिका' में प्राप्त उल्लेख इस प्रकार हैं :—

प्रारम्भ—"विश्वाभिधानकोशादि प्रविलोक्य प्रभाषते।
अमरेण कवीन्द्रेणैकाक्षरनाममालिका॥"

अन्त—'इत्यमरसिंहविरचितैकाक्षरनाममालिका समाप्तिमगात्।' शुभम्।
सं० १७०२ शाके १६६७ भाद्रे कृष्णे १३ शनौ।

अमरकोष तिब्बत में भी बहुत लोकप्रिय हुआ। इसका तिब्बती भाषा में कीर्तिचन्द्र तथा एक अन्य तिब्बती विद्वान् ने अनुवाद तो किया ही, इन दोनों ने ही इस पर सुभूतिचन्द्र की टीका का भी अनुवाद किया। इस 'कामधेनु' टीका का दूसरा संस्करण तिब्बती भाषा के प्रसिद्ध व्याकरणकर्ता धर्मपालभद्र ( १४४१-१५२८ ) ने निकाला।

अमरकोष तथा अन्य संस्कृत कोषों ने तिब्बत में एक नयी कोषप्रणाली को जन्म दिया। अपने तिब्बती अंग्रेजी कोष में ... ने एक तिब्बती कोष से स्वेच्छा-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नुसार यत्र-तत्र उद्धरण दिए हैं। यह तिब्बती कोष चार वर्गों में विभाजित है, जिनमें से प्रथम तीन स्वर्ग, पाताल तथा पृथ्वी से सम्बद्ध है। चौथा वर्ग सामान्यवर्ग है तथा दो उपवर्गों—संकीर्ण प्रकरण तथा नानार्थ प्रकरण में विभक्त है। आठ मंगलश्लोकों के बाद यह कोष प्रसिद्ध तांत्रिक देवों के पर्याय प्रस्तुत करता है—वज्रधर, कालचक्र, हेवज्र तथा संघवर। बुद्ध, शाक्यमुनि, बुद्धों के गुण, बोधिसत्त्व, मंजुघोष, वज्रपाणि, बोधिसत्त्वों के गुण, तारा, सरस्वती इत्यादि इसके बाद आते हैं। इसके उपरांत स्वर्ग-देव आते हैं, विभिन्न देव-देवियों, इन्द्र तथा उससे सम्बद्ध नाम, उसके शस्त्र वज्र, उसके पुत्र, उसकी रानी, उसकी नगरी, उसके महल, स्वर्गवृक्ष, उसके रत्न इत्यादि के उल्लेख अमरकोष के वर्गगत विभाजन से कितना साम्य रखते हैं। कोष की पुष्पिका के अनुसार लेखक ने भारतीय और तिब्बती स्रोतों का आश्रय लिया है। भारतीय कृतियों में अमर-कोष, उसकी सुभूतिकृत कामधेनु टीका तथा श्रीधरसेनकृत विश्वलोचन आदि हैं।

## अमरकोष का अध्ययन

अमरकोष की बहुसंख्यक टीकाओं, संस्कृत वाङ्मय के विविध ग्रन्थों की टीकाओं में इसके बहुशः उद्धरण तथा इसके पूर्ववर्ती किसी भी कोष के जीवित न रह सकने से स्पष्टतः विदित हो जाता है कि अमरकोष का संस्कृत भाषा के क्षेत्र में कितना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। संस्कृत-शिक्षा का यह क्रम आज भी चला आ रहा है कि शिक्षा के प्रारम्भ में ही विद्यार्थियों को अष्टाध्यायी और अमरकोष को कण्ठस्थ करा दिया जाता है। इस प्रकार अमरकोष संस्कृत शिक्षा की आधारशिला के रूप में आदृत है।

संस्कृत के उपलब्ध कोषों में सर्वप्रथम होने के कारण अमरकोष का अध्ययन अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। कोष की रचना वस्तुतः उस स्थिति में होती है, जबकि कोई भाषा परिनिष्ठित रूप ग्रहण करके साहित्यवाहिनी बन जाती है। किसी भाषा को बोलने वाला जनसमुदाय अपनी बोलचाल की भाषा को तो सामाजिक सम्पर्क के स्वाभाविक क्रम में प्राप्त कर लेता है, परन्तु जब वही भाषा साहित्य की भाषा बन जाती है तो वह अपने मूलस्थान से आगे बढ़कर ऐसे क्षेत्रों में भी प्रसार पाने लगती है, जहाँ कि वह बोलचाल की भाषा नहीं होती। ऐसे क्षेत्रों में उस साहित्यिक भाषा के परिचय के लिए उसके व्याकरण ग्रन्थों के अतिरिक्त कोषग्रन्थों की भी अपरिहार्यतया आवश्यकता होती है।

संस्कृत भाषा भी आर्यजनों के उत्तर भारत में प्रसार के साथ-साथ जब अपने मूल प्रदेश उत्तर-पश्चिमी भारत से आगे बढ़कर मध्यप्रदेश और प्राच्य की ओर अग्रसर हुई तो प्रसार के इस क्रम में विभिन्न क्षेत्रों में उसका स्वरूप भी बदला[1] और विभिन्न क्षेत्रीय रूपों ने प्राकृतजनों की भाषा प्राकृतों के रूप में विकसित होना प्रारम्भ किया।

---

१. इसके विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—डा० सुनीतिकुमार चटर्जी की 'भारतीय आर्य-भाषा और हिन्दी' अध्याय २, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण, १९६३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्वयं उत्तर-पश्चिमी भारत में भी कालक्रम में भाषा की स्वाभाविक गति के अनुसार भाषा का रूप बदला। भाषा के इस परिवर्तन की स्थिति में मध्यदेश और प्राच्य के आर्यजन अपने पूर्वजों के मूलप्रदेश उत्तर-पश्चिम की भाषा को आदर्श भाषा मानते रहे और इस आदर्श भाषा को उन्होंने अपनी शिक्षा तथा साहित्यिक गतिविधियों का माध्यम बनाया।[1] इस स्थिति में उत्तर-पश्चिम की भाषा मध्य और प्राच्य प्रदेश में शिष्टजनों की भाषा बन गई और उसका संस्कृत नाम पड़ा, क्योंकि वह अब संस्कृतजनों की शिष्टों[2] की भाषा थी।

इस स्थिति में संस्कृत के व्याकरण और उसके साथ-साथ कोष की भी आवश्यकता का अनुभव हुआ होगा। व्याकरण के क्षेत्र में पाणिनि का प्रयास सर्वाधिक पूर्ण हुआ जिसके कारण उसके पूर्ववर्ती अन्य प्रयास लुप्त हो गए। यहाँ यह ध्यान देना रोचक होगा कि पाणिनि स्वयं उत्तर-पश्चिमी प्रदेश के निवासी थे[3] जहाँ जब तक संस्कृत बोल-चाल की भाषा रही होगी।

परन्तु साहित्यिक भाषा के रूप में भी मध्यप्रदेश, प्राच्यदेश और दक्षिणापथ में संस्कृत के रूप में परिवर्तन हुए होंगे जिसके कारण पाणिनि के विश्लेषण में कुछ और

---

१ मिलाइये कौशीतकी-ब्राह्मण—'उदीच्यां दिशि प्रज्ञाततरा वागुद्यत उदंच उ एव यन्ति वाचं शिक्षितुं यो वा तत आगच्छति तस्य वा शुश्रूषन्त।' ७।६

२. भाषा के लिए संस्कृत नाम वाल्मीकि रामायण तथा दण्डी के काव्यादर्श में सबसे पहले आया है। निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।
यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्॥
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति।
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्॥
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता।

वाल्मीकि-रामायण ५।३०।१७–१९

'तदिदं वाङ्मयं भूयः संस्कृतं प्राकृतं तथा।
अपभ्रंशश्च मिश्रं चेत्याहुराप्ताश्चतुर्विधम्।—काव्यादर्श १।३४
महाराष्ट्रा यां भाषां प्रकृष्टं प्राकृतं विदुः।
सागरः सूक्तरत्नानां सेतुबन्धादि यन्मयम्॥—काव्यादर्श १।३४

इससे पहले यहाँ तक कि पाणिनि ने भी लौकिक भाषा को केवल भाषा ही कहा है, संस्कृत नहीं। अतः 'संस्कृत-भाषा' न कहकर 'संस्कृतानां शिष्टानां भाषा इति संस्कृतम्' यह व्याख्यान भी अधिक सही जान पड़ता है।

३. द्रष्टव्य—आर० जी० भण्डारकर।
विल्सन फिलोलॉजिकल लेक्चर्स, पृ० २७ तथा पी. डी. गुणे 'एन इण्ट्रोडक्शन टू कम्पेरेटिव फिलोलॉजी, पृ० १४७-४८।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जोड़ने की आवश्यकता प्रतीत हुई। यह कार्य वार्तिककारों ने किया, जिनमें से कात्यायन के संशोधन सर्वाधिक मान्य हुए।

पाणिनि और कात्यायन के बाद महाभाष्यकार पतंजलि ने ईसवी-पूर्व दूसरी शती में अपने विवेचन द्वारा संस्कृत भाषा के तत्कालीन स्वरूप को विशद रूप से प्रस्तुत किया। इस बीच और इसके बाद भी हमें परिनिष्ठित संस्कृत भाषा में अनेक आन्तरिक और बाह्य स्रोतों से शब्दराशि समाविष्ट होती रही।

इस प्रकार स्वरूप ग्रहण करने वाली परिनिष्ठित संस्कृत भाषा की शब्दराशि का सबसे पुराना परिचय हमें अमरकोष में मिलता है। अतः संस्कृत भाषा के विकास के निदर्शक के रूप में इसका अत्यधिक महत्त्व है। इसकी शब्दराशि का विश्लेषण कर, प्राचीन वैदिक वाङ्मय तथा इसके पूर्ववर्ती संस्कृत साहित्य की शब्दराशि से इसकी तुलना कर हम यह जान सकते हैं कि शब्दो के वर्णात्मक स्वरूप में किस प्रकार के परिवर्तन हुए हैं, उनके व्याकरणात्मक स्वरूप में कैसा विकास हुआ है, उनका अर्थ कितना और किस दिशा में परिवर्तित हुआ है तथा कितने शब्द किन-किन विभिन्न स्रोतों से आकर इस भाषा में समाहित हुए हैं। यह इस कोष के अध्ययन की भाषाशास्त्रीय दृष्टि होगी जो संस्कृत भाषा के विकास को स्पष्ट करने में सहायक होगी। इसके अतिरिक्त यह देखना भी महत्त्वपूर्ण होगा कि अमरकोष में शब्दों के संकलन की क्या दृष्टि है, शब्दों की व्याप्ति का कितना क्षेत्र है, कितने प्राचीन शब्द भाषा से लुप्त हो गए हैं तथा शब्दों के अर्थों को स्पष्ट करने की क्या विधियाँ अपनायी गई हैं।[1] यह इसके अध्ययन की कोषशास्त्रीय दृष्टि होगी जो न केवल इस कोष के शिल्प को स्पष्ट करेगी अपितु, तत्कालीन समाज में संस्कृत भाषा की स्थिति का भी परिचय देगी।

इन दोनों भाषाशास्त्रीय तथा कोषशास्त्रीय दृष्टियों से प्रस्तुत अध्ययन में प्रवृत्त होने की चेष्टा की गई है। भाषाशास्त्रीय दृष्टि से यद्यपि संस्कृत भाषा का अध्ययन बहुत बड़े पैमाने पर हो चुका है, फिर भी ऊपर निर्दिष्ट तथ्यों की जिज्ञासा के रूप में किया गया अध्ययन इस दिशा में काफी कुछ जोड़ सकेगा, ऐसी आशा की जा सकती है। कोषशास्त्रीय दृष्टि से अभी तक संस्कृत कोषों के सम्बन्ध में कोई ठोस कार्य नहीं किया गया है। इस प्रसंग में संस्कृत कोषों के विवरणात्मक परिचय के रूप में डा० एम० एम० पाटकर का कार्य उल्लेखनीय है।[2] परन्तु यह शोधकार्य केवल संस्कृत कोषों के विवरण प्रस्तुत करने तक सीमित है, यद्यपि इस दिशा में यह बड़े परिमाण से किया गया पूर्णतः सफल कार्य है।

अमरकोष के सम्बन्ध में यहाँ दो निबन्धों का उल्लेख करना आवश्यक है—

(१) रिफ्लेक्शन्स ऑन दि अमरकोष—श्री वी० के० राजवाड़े[3] तथा

१. द्रष्टव्य—लेक्सिकोग्राफी—प्रो० एस० एम० कत्रे, अन्नामलाइ युनि० पब्लिकेशन इन लिंग्विस्टिक्स नं० ६, १९६५।

२. डा० मोहन मंगेश पाटकर का अप्रकाशित शोधप्रबन्ध 'ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लेक्सिकोग्राफी', बम्बई विश्वविद्यालय, १९४८।

३. द्रष्टव्य—एनल्स ऑफ भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना वाल्यूम ६, १९२५, पृ० ७५-८२।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( २ ) अमरस् कंट्रीब्यूशन टू इंडियन लेक्सिकोग्राफी-प्रो० एस० एम० कत्रे[४]

इन दोनों निबन्धों में अमरकोष की कतिपय कोषशास्त्रीय तथा भाषाशास्त्रीय समस्याओं की ओर इंगित किया गया है और इस रूप में ये निबन्ध प्रस्तुत अध्ययन के प्रेरक हैं। पहले निबन्ध में कुल ६ भागों के अन्तर्गत अमरकोष की विषयवस्तु, कोष के आधार पर उस काल की सभ्यता, कोष की अनियमितताएँ, त्रुटियाँ इत्यादि का प्रदर्शन किया गया है। अपने लेख के अन्त में लेखक ने अमरकोष के एक समृद्ध आलोचनात्मक संस्करण बनाने की आवश्यकता व्यक्त की है, जिससे कि शब्दों के विभाजन के आधार पर पाणिनि और अमरसिंह के बीच में हुए शब्दपरिवर्तन और उसके आधार पर उनके समय की सामाजिक व्यवस्थादि पर प्रकाश डाला जा सके। प्रो० एस० एम० कात्रे महोदय ने अपने लेख में अमरकोष के कतिपय शब्दों की विवेचना और विश्लेषण करके यह मत स्थापित किया है कि कई शब्द ऐसे हैं, जिनके उद्धरण वैदिक या लौकिक संस्कृत में नहीं मिलते। अतः उन्होंने एक आधुनिक ऐतिहासिक तथ्यों पर आधृत संस्कृत कोष के निर्माण की आश्यकता व्यक्त की है। उनके द्वारा निर्दिष्ट विश्लेषण से संस्कृत शब्दों के ऐतिहासिक विकास का ज्ञान हो सकता है।

## प्रस्तुत अध्ययन

अमरकोष का प्रस्तुत अध्ययन दो दृष्टियों से किया गया है—( १ ) कोषशास्त्रीय तथा ( २ ) भाषाशास्त्रीय। कोषशास्त्रीय अध्ययन का उद्देश्य अमरकोष के कोषशिल्प को उसके शब्दचयन, शब्दनियोजन, लिंग-विधान तथा अर्थाभिव्यक्ति के प्रकारों का विश्लेषण कर स्पष्ट करना है तथा भाषाशास्त्रीय अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अमरकोष के माध्यम से संस्कृत-भाषा में हुए विविध भाषातात्त्विक परिवर्तनों तथा संस्कृत-भाषा में विभिन्न स्रोतों से गृहीत शब्दों का अन्वेषण करना है।

उपर्युक्त दोनों दृष्टियों के आधार पर प्रस्तुत शोधप्रबन्ध को १८ अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम चार का सम्बन्ध अमरकोष का कोषशास्त्रीय विधि से विश्लेषण करना है। इसमें भूमिका, परिचय, शब्दों के प्रस्तुतीकरण का विधान, शब्दों का विस्तार तथा शब्दों की सीमाएँ प्रदर्शित की गई हैं। अन्तिम चार अध्यायों में क्रम से कोष में प्राप्त रूपगत परिवर्तन, सादृश्यादि के आधार पर शब्दों के परिवर्तन, अर्थ के आधार पर परिवर्तन तथा दूसरी भाषा के आयातित शब्दों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह भाषाशास्त्रीय दृष्टि से किया गया अध्ययन संस्कृत के शब्दों के ऐतिहासिक विकास की ओर निर्देश करता है। इन दोनों दृष्टियों से किए गए इस अध्ययन से हमें यह आशा है कि संस्कृत के कोषों के वैज्ञानिक अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होगा।

—:०:—

४. द्रष्टव्य—विक्रम कॉमोमोरेशन वाल्यूम १५ डी, सिन्धिया ओरियण्टल इंस्टीट्यूट उज्जैन, १९४०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वितीय अध्याय

# अमरकोष की सामग्री तथा उसका प्रस्तुतीकरण

कोई कोषकार अपने कोष में शब्दों का नियोजन जिस क्रम से करता है, वह न केवल शब्दों के अर्थज्ञान के सौविध्य की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण होता है, अपितु कोषकार के समय की सांस्कृतिक स्थिति तथा बौद्धिक विकास और सांसारिक दृष्टि का भी परिचय देता है।[1] अतः इस दृष्टि से भी अमरकोष का अध्ययन नितांत आवश्यक है। कोष में शब्द-नियोजन के अनेक प्रकार हो सकते हैं, जैसे अकारादि क्रम से शब्द-नियोजन, शब्दों के अर्थ की दृष्टि से उनका नियोजन, पदान्त व्यंजन की दृष्टि से शब्द-नियोजन आदि। इनमें से कोषकार कौन-सी पद्धति अपनाता है, यह बहुत कुछ उसकी पूर्व परम्परा तथा सामयिक आवश्यकता पर निर्भर करता है। अमरकोषकार का पूर्ववर्ती यदि कोई कोष उपलब्ध है तो वह वैदिक निघण्टु ही है। निघण्टु में शब्दों को उनके अर्थों के अनुरूप वर्गों में विभाजित किया गया है। संभवतः अमरकोष के पूर्ववर्ती कोषकारों ने भी यही विधा अपनाई होगी और अमरकोषकार ने भी दूसरी पद्धति का अनुसरण किया है।

## शब्द-योजना

अमरकोष में संकलित शब्दराशि तीन काण्डों में विभक्त की गई है। प्रत्येक काण्ड को वर्गों में विभक्त किया गया है। प्रथम काण्ड में कुल दश वर्ग हैं, जो इस प्रकार से हैं—

(१) स्वर्ग, (२) व्योमवर्ग, (३) दिग्वर्ग, (४) कालवर्ग, (५) धीवर्ग, (६) शब्दादिवर्ग, (७) नाट्यवर्ग, (८) पातालभोगिवर्ग, (९) नरकवर्ग तथा (१०) वारिवर्ग।

द्वितीय काण्ड में भी १० वर्ग हैं, जिनको ये नाम दिये गए हैं—

(१) पृथ्वी, (२) पुर, (३) शैल, (४) वनौषधि, (५) सिंहादि, (६) मनुष्य, (७) ब्रह्म, (८) क्षत्रिय, (९) वैश्य तथा (१०) शूद्रवर्ग।

तृतीय काण्ड में निम्नलिखित पाँच वर्ग हैं—

(१) विशेष्यनिघ्न, (२) संकीर्ण, (३) नानार्थ, (४) अव्यय तथा (५) लिंगादिसंग्रह वर्ग।

वर्गों में शब्द-योजना का विस्तृत विश्लेषण निम्न प्रकार से है—

---

१. इस प्रकार का अध्ययन यद्यपि भाषा के व्यावहारिक पक्ष की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है तथापि सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्व का है, जैसा कि रॉबर्ट ए० हाल ने कहा है।

द्रष्टव्य—इंट्रोडक्टरी लिंग्विस्टिक्स, पृ० २३२।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## प्रथम काण्ड

### ( १ ) स्वर्गवर्ग—

स्वर्ग : ९ पर्याय, देव : २६ पर्याय, गणदेवता : ९ पर्याय, देवयोनि : १० नाम, असुर : १० पर्याय, बुद्ध : १८ पर्याय, बुद्ध के अवान्तरभेद : ७ नाम, ब्रह्मा : २० पर्याय, विष्णु : ३९ पर्याय, कृष्ण का पिता : २ पर्याय, बलराम : १७ पर्याय, कामदेव : १९ पर्याय, प्रद्युम्नपुत्र : ४ पर्याय, लक्ष्मी : ६ पर्याय, विष्णु का पांचजन्य शंख, सुदर्शनचक्र, कौमोदकी गदा, नन्दक खड्ग तथा कौस्तुभ मणि । गरुड : ९ पर्याय, शिव : ४८ पर्याय, शिव का कपर्द (जटाजूट), अजगव तथा पिनाक–धनु, प्रमथ पारिषद । ब्राह्मी आदि सात माताएँ ।ऐश्वर्य : ३ पर्याय, पार्वती : १७ पर्याय, गणेश : ८ पर्याय, स्कन्द : १७ पर्याय, नन्दी : ६ पर्याय, इन्द्र : ३५ पर्याय, इन्द्राणी : ३ पर्याय, इन्द्र की नगरी अमरावती, अश्व उच्चैःश्रवाः, सारथि मातलि, नन्दन वन, वैजयन्त प्रासाद । इंन्द्रपुत्र : २ पर्याय, ऐरावत : ४ पर्याय, वज्र : १० पर्याय, विमान : २ पर्याय, देवसभा : २ पर्याय, अमृत : ३ पर्याय, स्वर्ग की नदी : ४ पर्याय, कनक पर्वत : ५ पर्याय, देवतरु : ५ पर्याय, सनकादि : २ नाम, अश्विनीकुमार : ६ पर्याय, अग्नि : ३४ पर्याय, वडवाग्नि : ३ पर्याय, वह्नि-शिखा : ५ पर्याय, अग्निकर्णिका : २ नाम, अग्निसंताप : २ नाम, यम : १४ पर्याय, राक्षस : १५ पर्याय, वरुण : ५ पर्याय, वायु : २० पर्याय, शरीरस्थ वायु : ५ भेद, वेग : ५ पर्याय, त्वरा : ११ पर्याय, नित्य : ९ पर्याय, अतिशय : १४ पर्याय, कुबेर : १७ पर्याय, कुबेर का चैत्ररथ उद्यान, पुत्र नलकूबर, स्थान कैलास, नगरी अलका तथा विमान पुष्पक । किन्नर : ४ पर्याय, निधि : २ पर्याय ।

### ( २ ) व्योमवर्ग—

आकाश : १६ पर्याय ।

### ( ३ ) दिग्वर्ग—

दिशा : ५ पर्याय, उदीची प्रभृति चार दिशाएँ, दिशापति : ८, दिग्गज : ८, अन्तरवकाश : २, मण्डल : २, मेघ : १५ पर्याय, मेघवृन्द : २, मेघभव : १, मेघनिर्घोष : ३, विद्युत् : १०, वज्रनिर्घोष : २, मेघ-ज्योति : २, इन्द्रधनु : ३, वृष्टि : २, वर्षा के निरोध के लिए : २ पर्याय, धारासंपात : २, अम्बुकण : १, शकल : ४, अर्ध : १, चन्द्रप्रभा : ३, प्रसाद : २, चिह्न : ६, सुषमा : १, शोभा सामान्य : ४, हिम : ७, हिमसमूह : २, शीतल : ७, ध्रुव : २, अगस्त्य : ३, अगस्त्यपत्नी लोपामुद्रा : १, नक्षत्र : ६, अश्विनो आदि २७ नक्षत्र, दाक्षायणी, अश्विनी (आदि), विशाखा : २, पुष्य : ३, धनिष्ठा : २, पूर्वाभाद्रपदोत्तराभाद्रपद : २, मृगशिरस् : ३, इल्वला : १, बृहस्पति : ९, शुक्र : ६, मंगल : ५, बुध : ३, शनि : २, राहु : ५, सप्तर्षि : २, लग्न : १, राशि : १, सूर्य : ३७, चण्डांशुपारिपार्श्विक : ३ भेद, अरुण : ५, परिधि : ४, किरण : ११, प्रभामात्र : ११, सूर्यप्रभा : ३, ईषदुष्ण : ४, अत्युष्ण : ३, मरीचिका : २ पर्याय ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(४) कालवर्ग—

काल : ४ पर्याय, प्रतिपदा : २, तिथियाँ, दिवस : ५, प्रभात : ६, सायंकाल : ४, त्रिसन्ध्य : नाम, रात्रि : १२, तमोयुक्ता : तमिस्रा, ज्यौत्स्नी, यक्षिणी : वर्तमान और आगामी दिनों के मध्य की रात्रि, गणरात्र, प्रदोष : २, अर्धरात्रि : २, प्रहर : २, पर्व १, पंचदशी : २, पूर्णिमा २, अनुमति : कलाहीन चन्द्र से युक्त पूर्णिमा, राका : पूर्ण चन्द्र के होने पर, अमावस्या : ४, सिनीवाली : सचान्द्र तथा कुहूः : नष्टेन्दुकला, दो भेद, ग्रहण : २, राहुग्रस्त सूर्येन्दु : २ पर्याय, अग्न्युत्पात : २, पुष्पवन्तौ : दिवाकर-निशाकरयुग्म, निमेष, काष्ठा, कला, क्षण, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्षमास, ऋतु, अयन ( दो भेद ) तथा वत्सर : कालभेद, रात्रिदिन सम होने के : २ पर्याय, मार्गशीर्षमास : ४, पौष : ३, माघ : २, फाल्गुन : ३, चैत्र : ३, वैशाख : ३, ज्येष्ठ : २, आषाढ़ : २, श्रावण : ३, भाद्रपद : ४, आश्विन : ३, कार्तिक : ४, हेमन्त, शिशिर, वसन्त : ३, ग्रीष्म : ७, वर्षर्तुः २, शरत् : इनका मास के अनुसार क्रमशः विभाग, वर्ष : ६, पैत्र अहोरात्र, देव अहोरात्र, ब्राह्म अहोरात्र, कल्प, मन्वन्तर, प्रलय : ५, पाप : १२, सुकृत : ५, हर्ष : १२, कल्याण : १२, प्रशस्तवाचक : ५, अय : शुभावह विधि, भाग्य : ६, कारण : ३, उपादानकारण : १, आत्मा : ३, प्रकृति : २, अवस्था : १, सत्त्वादि : ३ गुण, जन्म : ६, प्राणी : ६, जाति : ३, व्यक्ति : २, मन : ७।

(५) धीवर्ग—

बुद्धि : १४, पर्याय, मेधा, संकल्प, चित्राभोग : २, विचारणा : ३, तर्क : ३, संशय : ४, निश्चय : २, नास्तिकता : २, द्रोहचिन्तन : २, सिद्धान्त : २, भ्रम : ३, अंगीकार : १०, ज्ञान-विज्ञान के अन्तर्गत बुद्धि-भेद, मोक्ष : ८, अज्ञान ३, इन्द्रियार्थ ५ विषय, इन्द्रिय : ३, कर्मेन्द्रिय तथा धीन्द्रिय, कषाय : २, षड्रस, परिमल तथा आमोद गन्ध, समाकर्षी तथा निर्हारी भेद, सुगन्धित : ४, आमोदीगंध : २, दुर्गन्ध २, विस्र ( कच्चा मांस ) गन्ध, श्वेत : १६, ईषत्पाण्डु : २, नील : ७, पीत : ३, हरित : ३, लोहित : ३, शोण तथा अरुण, पाटल, कपिश ( धूसरारुण ) : २, धूमल : ३, पिंगल : ६, शबल : ६।

(६) शब्दादि वर्ग —

वचन : १३ पर्याय, अपभ्रंश तथा वाचक शब्द, वाक्य, क्रिया, वेद : ४ पर्याय, धर्म, वेदत्रयी, वेदांग, ओंकार : २, इतिहास : २, स्वर ( उदात्तादि ), तर्क विद्या : १, दण्डनीति : १, आख्यायिका तथा पुराण, कथा, प्रहेलिका : २, स्मृति, संग्रहग्रंथ : २, समस्या, किंवदन्ती : २, वृत्तान्त : ४, नाम : ६, आह्वान : ३, संहूति, विवाद : २, वचनारम्भ : २, उपोद्घात : २, शपथ : २, प्रश्न : ३, उत्तर : २, मिथ्याभियोग : २, अभिशाप : २, प्रणाद, कीर्ति : ३, स्तुति : ४, आम्रेडित, घोषणा, काकु, निन्दाः १०, पारुष्य : २, भर्त्सना, उपालम्भ, सनिन्द उपा० : परिभाषण तथा मैथुन आक्रोश आक्षार, आलाप : २, प्रलाप, अनुलाप ( बहुभाषण ) : २, विलाप : २, विप्रलाप

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( विरोधोक्ति ) : २, संलाप, सुभाषित : २, अपलाप ( गुप्त ) : २, संदेशवाक् : २ वाग्भेद : रुशती तथा कल्या, सान्त्व, संगत : २, निष्ठुर : २, अश्लील : २, सूनृत क्लिष्ट ( विरोधी ) : २, ग्रस्त, निरस्त, अम्बूकृत, अबद्ध, अवाच्य : २, आहत, अवि- स्पष्ट : २, वितथ, सत्य : ४, शब्द : १७, मर्मर, शिंजित स्वर, वीणाक्वणन : ५, कोलाहल : २, वाशित ( पक्षिस्वर ) प्रतिशब्द : २, ( प्रादि २ अन्य ), गीत : २ पर्याय ।

(७) नाट्यवर्ग—

सप्तस्वर, काकली, कला, मन्द्र, तार ध्वनियाँ, एकताल, वीणा : ३, परिवादिनी ( विशेष ) तत ( वीणासदृश वाद्य ) आनद्ध ( पटहादिवाद्य ) सुषिर ( वंशादि ) घन ( घण्टादि ) चारों प्रकार : वादित्र तथा आतोद्य । मृदंग : २, मृदंगभेद : ३, ढक्का ( यशःपटह ) : २, दुन्दुभि : २, पटह : २, कोण ( वीणावादन का काष्ठयन्त्र ), प्रवाल ( वीणादण्ड ), वीणाभाण्ड : २, कोलम्बक : वीणा का दण्डादिसमुदाय, उपनाह ( निबन्धनस्थान ), डमरु प्रभृति ६ वाद्यविशेष, नर्तकी : २, तत्व ओघ तथा धन नृत्य भेद, ताल, लय, नृत्य : ६, नृत्यगीतवाद्य की समाहार संज्ञा : तौर्यत्रिक, भ्रकुंसादि ( स्त्रीवेषधारी नर्तक ) : ३, अज्जुका ( गणिका ) आवुत्त ( भगिनीपति ) भाव ( विद्वान् ) भावुक ( जनक ) युवराज : २, राजा : २, राजकुमारी, देवी ( रानी ), भट्टिनी ( अन्य रानी ), अब्रह्मण्य ( दोषोक्ति कथन ), राष्ट्रिय ( राजश्याल ), माता २, कुमारी : २, आर्य : २, अत्तिका ( ज्येष्ठा भगिनी ) निष्ठा ( समानार्थं ) : २, हण्डे ( नीचाह्वान सम्बोधन ) हञ्जे ( चेटीप्रति ), हला ( सखी प्रति ), अंगहार ( नृत्यवि- शेष ) : २, अभिनय : २, आंगिक तथा सात्त्विक, आठ रस, शृंगार : ३, वीर : २, करुण : ७, हास्य : ३, बीभत्स : २, अद्भुत : ४, भयानक : ९, रौद्र : २, भय : ६, भाव अनुभाव अहंकार : ३, मान, अनादर : ९, लज्जा : ५, सापत्रपा ( दूसरों से जन्य लज्जा ), क्षान्ति ( दूसरे का उदय सहना ) : २, असूया, वैर : ३, शोक : ३, पश्चा- त्ताप : ३, क्रोध : ७, शीलम्, उन्माद : २, प्रेम : ५, इच्छा : १२, लालसा, धर्मचिन्तन : २, आधि ( मनःपीड़ा ) : २, स्मृति : ३, उत्कण्ठा : २, उत्साह : २, वीर्य (अतिउत्साह) शाठ्य : ९, प्रमाद : २, कौतूहल : ४, विलासादि : ६, स्त्री-हाव, व्रीडा : ६, अपदेश ( स्वरूपाच्छादन ) : ३, बाललीला : ३, स्वेद : ३, प्रलय ( परिस्पन्दनाश ) : २, आकारगुप्ति : २, संभ्रम : २, आच्छुरितक ( साभिप्राय हास्य ), स्मित, विहसित, रोमांच : २, रुदित : ३, जृम्भण : २, तन्द्री : २, भ्रुकुटी : ३, अदृष्टि ( असौम्य ), स्वभाव : ५, कम्पन : २, उत्सव : ५ पर्याय ।

(८) पातालभोगिवर्ग—

पाताल : ५ पर्याय, छिद्र : ११, गर्त ( भूमिछिद्र ) : २, सुषिर ( सरन्ध्र वस्तु ), अन्धकार : ५, अन्ध ( अधिक गाढ़ ) तमस, अव-( क्षीण ) तमस तथा सं ( सर्वव्यापी ) तमस, नाग : २, नागेश : २, सर्पराज : २, गोनस : २, अजगर : ३, जलव्याल :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२, राजिल ( द्विमुख निर्विष सर्प ) : २, मालुधान ( चित्रसर्प ) : २, मुक्तकंचुक : २, सर्प : २५, आहेय ( अहिभव ) फणा : २, कंचुक ( सर्पत्वक् ) : २, विषः ३, कालकूटादि : ९ स्थावरविषभेद, विषवैद्य : २, कालग्राही : २ पर्याय।

(९) नरकवर्ग—

नरक : ४ पर्याय, तपन-रौरव आदि नरकभेद, प्रेत, वैतरणी, निर्ऋतिः ( नारक्य-लक्ष्मी ) विशिष्ट ( नरक में प्रक्षेप ) : २, यातना : ३, दुःख : ९ पर्याय।

(१०) वारिवर्ग—

समुद्र : १० पर्याय, क्षीरोद इत्यादि भेद, जल : २७, आप्य ( जलविकार ) : २, लहर : ४, कल्लोल ( महत् ऊर्मि ) : २, आवर्त ( मण्डलाकार जल का भ्रमण ), बिन्दवः ( जलविन्दु ) : ४, भ्रमाः ( चक्राकारजल का अधःयान ) : ४, तट : ५, पार ( परतीर ) अवार ( अर्वाक् तीर ) पात्र ( दोनों का मध्य ) द्वीप : २, पुलिन, सिकतामय : २, पंक : ५, जलोच्छ्वास : २, कूपक ( शुष्क नदी में कृत्रिम गर्त ) : २, नाव्य, नौका : ३, उडुप (अल्प नौका) : ३, स्रोत, तरपण्य ( नद्यादि को पार करने में देय मूल्य ) : २, द्रोणी ( काष्ठमयी जलवाहिनी ), पोतवणिक् : २, नाविक : २, नियामक ( पोत ) : २, कूपक ( मध्यंस्तम्भ ) : २, नौकादण्ड : २, अरित्र ( कर्ण ) : २, काष्ठकुदाल : २, सेकपात्र ( जलोत्सर्जनपात्र ) : २, अर्धनावम्, अतिनौ ( अतीत नौका ), निर्मल : २, कलुष : ३, गम्भीर : ३, उत्तान ( उथला ) अगाध : २, कैवर्त ( केवट ) : ३, जाल : २, शर्णसूत्रजाता : २, मत्स्याधानी : २, मत्स्यवेधन : २, मत्स्य : ८, गडक ( मत्स्यविशेष ) : २, पाठीन : २, उलूपी : २, चिलिचिमः : २, शफरी ( शुभमत्स्य ) : २, पोताधान ( क्षुद्र मत्स्यसंघात ) रोहितादि मत्स्यभेद, जलजन्तु, : २, शिशुमार उद्र आदि भेद, कर्कट : २, कूर्म : ३, ग्राह : २, नक्र : २, महीलता ( जलचरभेद ) : ३, जलगोधिका : २, जलौका : ३, शुक्ति : २, शंख : २, क्षुद्रशंख : २, शम्बूका ( जलशुक्ति ), मण्डूक : ६, गण्डूपदी : २, भेकी ( क्षुद्र ) : २, कमठी : २, शृंगी ( मत्स्यविशेष स्त्री ), दुर्नामा ( जलचरविशेष ) : २, जलाशय : २, ह्रद ( अगाध जल ), आहाव ( कूपसमीप, गायों आदि के हेतु ) : २, कूप : ४, त्रिका ( दारुयंत्र ), वीनाह ( मुंडेर ), पुष्करिणी : २, देवखातकम् ( अकृत्रिम ) : २, तडाग : ५, अल्पसर : ३, वापी : २, परिखा : २, आधार ( सेचनार्थ जलसंग्रहस्थान , आलवाल : ३, नदी : १२, भागीरथी : ८, यमुना : ४, नर्मदा : ४, करतोया ( गौरी विवाह में कन्यादानार्थ जात ) : २, सैतवाहिनी ( कार्तवीर्यार्जुनअवतारित ) : २, शतद्रु : २, विपाशा : २, शोण ( नदीविशेष ) : २, कुल्या ( अल्पा सरित् ), शरावती चन्द्रभागा, सरस्वती, कावेरी। सिंधु संगम : २, प्रणाली, दाविक ( देविकानदी में उत्पन्न ), सारव (सरयू में उत्पन्न), कह्लारम् ( संध्याविकासशील शुक्लसरोज ) : २, रक्तसंध्यम् ( रक्तकह्लार ) : २, नीलाम्बुजन्म : २, कुमुद ( शुभ्र कमल ) : २, शालूक ( उत्पलकन्द ), जलकुम्भिका : २, शैवाल : ३, कुमुदिनी : २, नलिनी : ३, कमल :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१६, सिताम्भोज : २, रक्तोत्पल : ३, नाल : २, मृणाल : २, षण्ड : कमल-समूह, करहाट ( पद्ममूल ) : २, केसर : २, संवर्तिका ( नवपत्र ) : २, बीजकोश : २ ।

## द्वितीय काण्ड

(१) भूमिवर्ग—

भूमि : २७, मृत्तिका : २, मृत्स्ना ( प्रशस्तमृद् ) : २, उर्वरा, ऊष : २, ऊषवान् ( क्षारमृद्विशिष्ट ) : २, स्थल ( अकृत्रिम ) : २, मरु : २, अप्रहत ( अकृष्टक्षेत्र ) : २, जगत् : ५, भारतदेश, प्राच्य, उदीच्य, म्लेच्छदेश : २, मध्यदेश : २, आर्यावर्त : २, जनपद : २, देश : ३, नड्वान् ( नडबहुल ) : २, कुमुद्वान्, वेतस्वान्, शाद्वल, पंकिल, जलप्राय : २, कच्छ ( नद्यादि उपान्तदेश ), शर्करिल ( बालुकामय ) : २, शर्करा:—२, सिकतिल : २, सैकत ; २, नदीमातृक, देवमातृक, राजन्वान् ( सुराजा ), राजवान् ( राजामात्र ), गोष्ठ : २, गौष्ठीन ( भूतपूर्वक ), पर्यन्तभूः ( नदी पर्वत का किनारा ) : २, सेतु : २, वल्मीक : ३, मार्ग : १२, सुपन्थ : ३, कापथ : ५, अपथ : २, चतुष्पथ : २, प्रान्तर ( छायाजलहीन दूर मार्ग ), कान्तार, गव्यूति, नल्व ( हस्त-का चतुःशतपरिमाण ), घण्टापथ : २, उपनिष्कर ( पुर का घण्टापथ ) ।

(२) पुरवर्ग—

नगर : ७, स्थानीय ( प्राकारवेष्टित ), शाखानगर ( मूल से भिन्न ) वेश ( वेश्या स्थान ), आपण : २, पण्यवीथिका ( दुकानों की कतार ) : २, रथ्या ( ग्राम के अन्तर्गत मार्ग ) : २, वप्रम् ( चहारदीवारी में लगाया मिट्टी का उठाव ) : २, प्राकार : ( कण्टकादिवेष्टित ) : ३, प्राचीर ( नगर के प्रान्तभाग का वेष्टन ), भित्ति : २, एड्डक ( भित्तिविशेष ), गृह : १६, समागृह : ४, चतुःशालम् ( आमने-सामने चार कुटी ) : २, पर्णशाला : २, चैत्य ( यज्ञशाला ) : २, वाजिशाला : २, शिल्पिशाला : २, पानीयशालिका : २, मठ (शिष्यगृह), मदिरागृह : २, गर्भागार (गृहमध्य) : २, सूति-कागृह : २, गवाक्ष : २, मण्डप : २, हर्म्य ( धनियों का वास ) प्रासाद (देव-नृपावास), राजसदन : ४, स्वस्तिक, सर्वतोभद्र नन्द्यावर्त तथा विच्छन्दक, ईश्वरराजगृहभेद, अन्तःपुर : ४, अट्ट ( हर्म्यादि पृष्ठ ) : २, अलिन्द ( द्वार-बहिःप्रकोष्ठ ) : ३, देहली : २, अंगनम् : ३, शिला ( द्वारस्तम्भाधःस्थितकाष्ठ ), नासा ( द्वारस्तंभोपरिस्थित-काष्ठ ), अन्तर्द्वार : २, पक्षद्वार ( पार्श्व ) : २, वलीक ( गृहाच्छादन ) : २, पटल ( छादन ) : २, वलभी ( छादनार्थं वक्रदारु ) : २, कपोतपालिका : २, द्वार : ३, वेदिका : २, तोरण : २, गोपुर ( नगरद्वार ) : २, हस्तिनख ( नगरद्वार में रचित ढलान ), कपाट : २, अर्गल, सोपान : २, निश्रोणि : ( सीढ़ी ) : २, संमार्जनी : २, अवकर ( बहारन-कूड़ा ) : २, मुख ( गृहादिका ) : २, संनिवेश ( वासस्थान ) : २, ग्राम : २, वास्तु ( गृहभूमि ) : २, उपशल्य ( ग्रामान्त व ग्राम के समीप की भूमि ), सीमा : २, घोष ( गोपालग्राम ) : २, शबरालय : २ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( ३ ) शैलवर्ग—

पर्वत : १३, चक्रवाल ( सप्तद्वीपभूमि का प्राकारगिरि ) : २, त्रिकूट ( पर्वत ) : २, अस्तः ( पर्वत ) : २, उदयः : २, हिमवान्, निषध, विन्ध्य, माल्यवान्, पारियात्रक, गन्धमादन तथा हेमकूट पर्वत, पाषाण : ७, शिखर : ३, प्रपात (पर्वत से पतनस्थान) : ३, कटक ( आदिमध्यभाग ), प्रस्थ ( समभूमाग पर्वतदेश ) : ३, उत्सः ( गिरते पानी का ढर ) : २, निर्झर : ३, कंदरा ( कृत्रिम ) : २, गुहा ( अकृत्रिम ) : २, गण्डशैल ( गिरे पत्थर ), खनिः : २, पादाः ( पादस्थ अल्पपर्वत ) : २, उपत्यका ( पर्वतपाद की भूमि ), अधित्यका ( ऊर्ध्व ), धातु, गैरिक, कुंज : २ पर्याय ।

( ४ ) वनौषधिवर्ग—

वन : ६ पर्याय, बड़ावन : २ पर्याय, कृत्रिमवन : २ पर्याय, उपवन : २, वृक्षवाटिका : अमात्य, वेश्या का गृहोपवन । उद्यान : २ पर्याय, प्रमदवन् : रानियों का, पंक्ति : ५ पर्याय, लेखा : २ पर्याय, वन्या : वनसमूह, अंकुर : २ वृक्ष : १३ पर्याय वानस्पत्य, वनस्पति तथा ओषधि : अवन्ध्य : यथाकालफलधर, फलरहित वृक्ष : ३ पर्याय, सफल वृक्ष : ३ पर्याय, विकसित : ७ पर्याय, स्थाणु : ३, क्षुप (ह्रस्वशाखाशिफ), स्तम्ब : २ पर्याय, लता : ३ पर्याय, विस्तृत लता : ३ पर्याय, वृक्ष की ऊँचाई : ३ पर्याय, वृक्षस्कन्ध : २ पर्याय, शाखा : २ पर्याय, प्रधानशाखा : २ पर्याय, तरुमूल : २ पर्याय, अवरोह् (शिखामूल), शिखर वृक्षमूल : ३ पर्याय, मज्जा : २, त्वच् : ३ पर्याय, काष्ठ : २ पर्याय, शुष्कतृणकाष्ठादि : ५ पर्याय, कोटर : २, मंजरी : २, पत्र : ६ पर्याय, किसलय : २, विटप, सस्य, वृन्त, शुष्कफल, अपक्व ( शलाटु ) फलादि, नूतनकलिका : २ पर्याय, कलिका : २, गुच्छक : २ पर्याय, ईषद्विकसित कलिका : २ पर्याय, पुष्प : ५ पर्याय, पुष्परेणु : २ पर्याय, द्विहीन ( प्रसव में ), हरीतकी ( इसके फल ), आश्वत्थादि, जम्बू : ३, पिप्पलवृक्ष : ५ पर्याय, कपित्थ : ७ पर्याय, उदुम्बर : ( गूलर ) ७ पर्याय, कोविदार : ५ पर्याय, सप्तपर्ण : ४ पर्याय, कृतमाल ( अमलतास ) : ८ पर्याय, जम्बीर : ५ पर्याय, वरण : ५ पर्याय, नागकेसर : ५ पर्याय, निम्बवृक्ष : ४ पर्याय, वञ्जुल : ७ पर्याय, आम्रातक : ३ पर्याय, मधूक ( महुआ ) : ५ पर्याय, पीलुवृक्ष : ३ पर्याय, पहाड़ी पीलु : २ पर्याय, अंकोट : २ पर्याय, पलाश : ४ पर्याय, बेंत : ७ पर्याय, जलबेंत : ४ पर्याय, सहजन : ५ पर्याय, अरिष्ट ( रीठा ) : २ पर्याय, बिल्व : ५ पर्याय, प्लक्ष ( पाकड़ ) : ३ पर्याय, वट ( बरगद ) : ३ पर्याय, लोध्रवृक्ष : ६ पर्याय, आम्र : ३ पर्याय, गुग्गल : ५ पर्याय, श्लेष्मातनू ( लसोढा ) : ५ पर्याय, प्रियाल ( चिरौंजी ) : ४ पर्याय, श्रीपर्णी : ७ पर्याय, कर्कन्धू ( बेर ) : ३ पर्याय, घोण्टा ( बेर का फल ) : ६ पर्याय, स्रुवावृक्ष : ५ पर्याय, नारंगी : २ पर्याय, तिंदुक वृक्ष : ४ पर्याय, काकतिन्दुक : ४ पर्याय, तिलकवृक्ष : ३ पर्याय, कट्फल (कायफल) : ५ पर्याय, ब्रह्मदारु ( शहतूत ) : ६ पर्याय, कदम्बवृक्ष : ४ पर्याय, अम्लिल (इमली) : ३ पर्याय, जीवकवृक्ष : ६ पर्याय, सालवृक्ष : ५ पर्याय, अर्जुनवृक्ष : ५ पर्याय, इंगुदी :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२ पर्याय, भोजवृक्ष : ३ पर्याय, शाल्मलि ( सेमल ) : ५ पर्याय, काला सेमल : २ पर्याय, करंजवृक्ष : ४ पर्याय, रोहितक ( लालकरंज ) : ४ पर्याय, खदिर ( कत्था ) : ४ पर्याय, एरण्डवृक्ष : ११ पर्याय, शमी : ३ पर्याय, मदनफल : ६ पर्याय, देवदारु : ८ पर्याय, पाटलिवृक्ष : ७ पर्याय, प्रियक : १२ नाम, स्योनाक : १२ पर्याय, आमलकी ( आँवला ) : ४ पर्याय, विभीतक ( बहेड़ा ) : ६ पर्याय, हरीतकी ( हर ) : ११ पर्याय, सरलद्रुम : ३ नाम, लकुच ( बड़हल ) : ३ नाम, कण्टकिफल ( कटहल ) : २ पर्याय, समुद्र फल : ३ नाम, कालागूलर : ४ पर्याय, निम्ब : ६ पर्याय, अगुरु (शीशम) : २ पर्याय, शिरीष : ३ पर्याय, चम्पा : ३ पर्याय, केसर ( मौलश्री ) : २ पर्याय, अशोक : २ नाम, दाडिम ( अनार ) : २ पर्याय, नागकेसर : ४ पर्याय, इंद्रयव : ३ पर्याय, कृष्णपाकफल : ( करौंदा ) : ४ पर्याय, तमाल : ३ पर्याय, सिन्दुवार वृक्ष : ५ नाम, देवताल : ५ नाम, मल्लिका ( बेला ) : ४ नाम, शेफालिका : ४ पर्याय, यूथिका ( जूही ) : ४ पर्याय, माधवी : ४ पर्याय, मालती ( चमेली ) : ३ पर्याय, कुन्दपुष्प : २ पर्याय, बन्धुजीवक : ३ पर्याय, महासहा : २ पर्याय, कुरबक, कुरण्टक ( भेद ), सैरीयक ( कटसरैया ) : २ पर्याय, जपापुष्प ( गुड़हल ) : २ पर्याय, वज्र-पुष्प ( तिल का फूल ), करवीर ( कनेर ) : ५ पर्याय, करीर : ३ पर्याय, धतूर : ७ पर्याय, मातुलपुत्रक : धतूरे का फल, फलपूर ( नीबू ) : ४ पर्याय, मरुवक : ५ पर्याय, मन्दार ( आक ) : ७ पर्याय, गुडुर्ची : ९ पर्याय, मूर्वा : १० पर्याय, पाठा : १० पर्याय, कटुरोहिणी : ८ पर्याय, ऋष्यप्रोक्ता : ९ पर्याय, मूषिकपर्णी : १० पर्याय, प्रत्य-क्पर्णी : ८ पर्याय, भार्गी : ९ पर्याय, मंजिष्ठा : ९ नाम, यवास : १० पर्याय, पृष्णि-पर्णी : ९ पर्याय, निदिग्धिका ( भटकटैया ) : १० पर्याय, नीली ( नील ) : ११ पर्याय, वाकुची : ८ पर्याय, पिप्पली : १० पर्याय, करिपिप्पली : ५ पर्याय, गुंजा : ३ पर्याय, गोकण्टक : ७ पर्याय, अतिविषा : ८ नाम, दुग्धिका ( घास ) : २ पर्याय, शतावरी : १० पर्याय, दारुहरिद्रा : ७ पर्याय, वैद्यमाता : ८ नाम, अपराजिता : ४ नाम, इक्षुगन्धा ( तालमखाना ) : ५ नाम, शालेय ( सोवा ) : ६ पर्याय, सीहुण्ड ( सेंहुड़ ) : ६ पर्याय, विडंग : ६ पर्याय, शणपुष्पिका ( सनई ) : २ पर्याय, मृद्वीका ( मुनक्का ) : ५ पर्याय, रोचनी : ७ पर्याय, कालमेषिका : ७ पर्याय, मधुयष्टिका ( मुलहठी ) : ४ नाम, कारवी ( अजमोदा ) : ५ पर्याय, शरिवा ( ग्वार ) : ५ पर्याय, सिद्धि (औषध) : ४ पर्याय, कदली : ६ पर्याय, मुद्गपर्णी : ३ पर्याय, भण्टाकी : ५ पर्याय, रास्ना : ९ पर्याय, सालपर्णी : ५ पर्याय, कार्पासी ( कपास ) : ४ पर्याय, शृंगी : ३ पर्याय, नागबल : ४ नाम, घोणक ( तरोई ) : २ पर्याय, पटोलिका ( चिचिण्डा ) : ३ नाम, गोजिह्वा ( गोभी ) : २ पर्याय, ताम्बूली ( पान ) : ३ पर्याय, रेणुका : ६ नाम, ऐलेय : ५ पर्याय, पालंकी ( पालक ) : ४ पर्याय, शैलेय ( शिलाजीत ) : ५ पर्याय, तालपर्णी : ५ पर्याय, सल्लकी : ८ पर्याय, एला ( बड़ी इलायची ) : ५ पर्याय, उपकुंचिका ( छोटी इलायची ) : ५ पर्याय, कुष्ठ ( औषध ) : ६ पर्याय, तालो ( आंवला ) : ६ पर्याय, तुन्न : ६ पर्याय, शुषिरा : ५ नाम, अंजन-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

केशी : ४ नाम, आढकी ( अरहर ) : ६ पर्याय, कैवतीमुस्तक ( छोटा नागरमोथा ) : ८ नाम, ग्रंथिपर्ण : ६ नाम, स्पृक्का ( शाक विशेष ) : १० पर्याय, जटामांसी : ५ पर्याय, त्वक्पत्रम् ( दालचीनी ) : ६ नाम, कर्चूरक : ४ पर्याय, ओषधि ( १ ) तथा औषध ( १ ), शाक, तण्डुलीय ( चौराई ) : २ पर्याय, अग्निपुष्पी : ५, ऋक्षगन्धा : ५, ब्राह्मी : ४, हैमवती ( मकोय ) : ४ पर्याय, माषपर्णी ( पनउड़द ) : ४ नाम, पीलुपर्णी ( कुन्दरू ) : ४ नाम, वर्वरा ( शाकविशेष ) : ५ पर्याय, एलापर्णी : ४ नाम, अम्बष्ठा ( शाकविशेष ) : ५ नाम, खदिरा ( छुईमुई ) : ४ नाम, जीवन्ती : ५ पर्याय, जीवक : ५ नाम, किराततिक्त : ३ नाम, सप्तला : ५ नाम, दत्तिका ( औषध ) : ५ नाम, अजमोदा ( अजवाइन ) : ४ नाम, पुष्करमूल : ३ पर्याय, पद्मचारिणी ( स्थलकमलिनी ) : ५ नाम, काम्पिल्य ( कवीला ) : ५ पर्याय, चक्रमर्दक : ६ नाम, पलाण्डु ( प्याज ) : २ नाम, लशुनम् : ६ नाम, वातक ( पटसन ) : ४ नाम, त्रायमाणा : ४ नाम, वाराही ( कन्द ) : ४ नाम, भृंगराज : २ नाम, शतपुष्पा ( सौंफ ) : ७ पर्याय, कटम्भरा : ५ नाम, जतुकृत : ६ नाम, शटी : ५ पर्याय, कारवेल्ल ( करैला ) : ३ नाम, पटोल ( परवल ) : ४ पर्याय, कूष्माण्ड ( कोंहड़ा ) : २ नाम, कर्कटी ( ककड़ी ) : २ पर्याय, कटुतुम्बी ( तितलौकी ) : ३ नाम, तुम्बी ( लौकी, कद्दू ) : २ नाम, गण्डीर ( शाक ) : २ नाम, मूलकम् ( मूली ) : १ पर्याय, दूर्वा ( दूब ) : ६ नाम, गोलोमी ( सफेद दूब ) : ४ पर्याय, मुस्तक ( मोथा ) : ४ पर्याय, भद्रमुस्तक ( नागरमोथा ) : २ पर्याय, वंश ( बाँस ) : १० पर्याय, गुन्द्र ( सरकण्डा ) : ३ नाम, नड ( नरकट ) : ३ नाम, काश ( तृण ) : ३ नाम, इक्षु : २ नाम, पुण्ड्र ( इक्षुभेद ) : २ नाम, वीरण ( घास ) : २ नाम, उशीर ( खस ) : १० नाम, कुश : ४ पर्याय, रौहिष ( सुगन्धघास ) : ५ पर्याय, पालघ्नः ( पानी का तृण ) : ३ नाम, शष्प ( नवीन घास ) : २ नाम, घास : ( भूसा घास ) : २ नाम, तृण : २ पर्याय, तृण्या ( घास की ढेरी ), नड्या ( नडसमूह ), ताल ( ताड़ ) : २ पर्याय, नारिकेल : २ पर्याय, घोण्टा ( सुपारी का वृक्ष ) : ५ पर्याय, उद्वेग : ( सुपारी का फल, ), हिन्ताल ( तालभेद ), खर्जूर, केतकी, ताली, खर्जूरी : तृणद्रुमभेद ।

## (५) सिंहादि वर्ग—

सिंह : ६ पर्याय, व्याघ्र : ३ पर्याय, मृगादन ( मृगविशेष ) : २ पर्याय, सूकर : १२ पर्याय, वानर : ९ पर्याय, भल्लूक : ४ पर्याय, गण्डक ( गेंडा ) : ३ पर्याय, महिष : ५ पर्याय, शृगाल : १० पर्याय, विडाल : ५ पर्याय, गोधार ( स्थलगोधिका) ३ पर्याय, श्वावित् ( साही ) : २ पर्याय, शलम् ( उसके कांटे ) : ३ पर्याय, वातमृग : २, वृक ( भेड़िया ) : ३ पर्याय, मृग : ५ पर्याय, ऐणेय ( हरिणी का चर्मादि ), ऐण ( हरिण का चर्मादि ), कदली प्रभृति ६ हरिणभेद, अजिनयोनि ( कृष्णसारादि हरिण ), कृष्णसारादि : १२ तथा गन्धर्वादि ६ अन्य मृगभेद, मूषक : ३ पर्याय, बाल-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मूषिका : २ पर्याय, सरटः ( गिरगिट ) : २ पर्याय, गृहगोधिका ( छिपकली ) : २ पर्याय, मर्कटक ( मकड़ी ) : ४ पर्याय, कृमि : ( क्षुद्रकीट ) : २ पर्याय, कर्णजलौका ( गोजर ) : २ पर्याय, शूककीट ( कपड़ों के कीड़े ) : २ पर्याय, वृश्चिक : ३ पर्याय, कपोत : ३ पर्याय, श्येन : ३ पर्याय, उलूक : ३ पर्याय, भरद्वाज ( पक्षी ) : २ पर्याय, खंजन : २ पर्याय, कंक ( पक्षीविशेष ) : २ पर्याय, चाष : ( विशेष नीलकण्ठ) : २ पर्याय, भृंग : ३ पर्याय, शतपत्रक ( काष्ठकीट ) : २ पर्याय, चातक : ३ पर्याय, कुक्कुट : ४ पर्याय, चटक ( गौरैया ) : २ पर्याय, चटका, चाकेर ( चटक का पुत्र ), चटका ( उसकी पुत्री ), करेटु ( टिटिहिरो ) : २ पर्याय, क्रकर ( करेटु के भेद ) : २ पर्याय, कोकिल : ४ पर्याय, काक : १० पर्याय, कंकोल ( नाम भेद ) : २ पर्याय, दात्यूह ( जलकाक ) : २ पर्याय, चिल्ल : २ पर्याय, गृध्र : २ पर्याय, शुक : २ पर्याय, क्रौंच : २ पर्याय, बक : २ पर्याय, सारस : २ पर्याय, चक्रवाक : ४ पर्याय, कादम्ब ( बतख ) : २ पर्याय, कुरर : २ पर्याय, हंस : ४ पर्याय, राजहंस, मल्लिकाक्ष तथा धार्तराष्ट्रभेद, शरारि ( पक्षीविशेष ) : २ पर्याय, बलाका : २ पर्याय, वरटा ( हंस की स्त्री ), लक्ष्मणा ( सारस-स्त्री ), जतुका ( चमगादड़ ) : २ पर्याय, तैलपायिका ( तिलचटा ) : २ पर्याय, मक्षिका : ३ पर्याय, मधुमक्षिका : २ पर्याय, पतंगिका ( उनके भेद ) : २ पर्याय, वनमक्षिका : २ पर्याय, दंशी ( इनका जाति-भेद ), वरटा : २ पर्याय, झिल्लिका : ४ पर्याय, पतंग : २ पर्याय, खद्योत : २ पर्याय, भ्रमर : ११ पर्याय, मयूर : ९ पर्याय, इनका स्वर 'केका', मेचक ( पंख का नेत्राकार चिह्न ) २ पर्याय, शिखा : २ पर्याय, बर्ह ( मयूरशिखा ) : ३ पर्याय, पक्षी : २७ पर्याय, हारीत प्रभृति १३ पक्षिभेद, पक्ष ( पंख ) : ६ पर्याय, पक्षति ( पक्षमूल ), चंचु : २ पर्याय, प्रडीन ( पक्षिगतिक्रिया ) ३ पर्याय, अण्ड : ३ पर्याय, नीड : २ पर्याय, शिशु : ७ पर्याय, मिथुन : २ पर्याय, युग्म : ३ पर्याय, समूह : २२ पर्याय, वर्ग ( सजातीय प्राणियों का समूह ), संघ ( सजातीय-विजातीय ) प्राणी या जन्तु ) : २ पर्याय, कुल ( सजातोय जन्तु ), यूप ( पक्षीसमूह ), समज ( पशुवृन्द ), समाज ( पशुभिन्न ), निकाय ( सधर्मियों का समूह ), राशि : ४ पर्याय, कापोत : कपोतों का समूह, शौक, मायूर, तैत्तिर आदि। गृह्यक ( गृहासक्त पशु आदि ) : २ पर्याय।

(६) मनुष्य वर्ग—

मनुष्य : ११ पर्याय, स्त्री : ११ पर्याय, १२ स्त्रीभेद, कोपना : २ पर्याय, उत्तमा : ४ पर्याय, महिषी ( कृताभिषेका ), भोगिनी ( अन्य नृपस्त्री ), पत्नी : ७ पर्याय, पति-पुत्रादिमती : २ पर्याय, पतिव्रता : ४ पर्याय, कृतसापत्निका ( प्रथमोढा ) : ३ पर्याय, स्वयंवरा : ३ पर्याय, कुलस्त्री : २ पर्याय, कुमारी : २ पर्याय, गौरी ( अदृष्टरजस्का ) : ३ पर्याय, मध्यमा : २ पर्याय, तरुणी : २ पर्याय, वधू ( पुत्र की पत्नी ) : ३ पर्याय, चिरिण्टी ( किंचिल्लब्धयौवना परिणीता ) : २ पर्याय, कामुका : २ पर्याय, कामुकी :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२ पर्याय, अभिसारिका, कुलटा : ८ पर्याय, अशिश्वी ( शिशुरहित ), अवीरा ( पति-पुत्ररहित ) विधवा : २ पर्याय, सखी : ३ पर्याय, सभर्तृका : २ पर्याय, वृद्धा : २ पर्याय, प्राज्ञी : २ पर्याय, धीमती : २ पर्याय, शूद्री ( शूद्रभार्या विजातीय स्त्री ), शूद्रा ( सजातीय ), आभीरी ( गोपालक ) : २ पर्याय, अर्या ( वैश्यजात्युत्पन्न ) : २ पर्याय, क्षत्रिया : २ पर्याय, उपाध्याया ( स्वयं अध्यापिका ) : २ पर्याय, आचार्या ( मन्त्र-व्याख्याकर्त्री ), आचार्यानी, अर्या ( अर्यपत्नी ), क्षत्रियी, उपाध्यायानी : २ पर्याय, पोटा ( स्त्रीपुंसचिह्नयुक्त ), वीरपत्नी : २ पर्याय, वीरमाता : २ पर्याय, प्रसूता : ४ पर्याय, कोटवी ( नग्ना ), दूती : २ पर्याय, कात्यायनी ( अर्द्धवृद्धा काषायवस्त्रा अधवा ), सैरन्ध्री ( परवेश्मस्थ स्वतन्त्र केशविन्यासनिपुण ), असिक्नी ( अन्तःपुरचा-रिणी ), वेश्या : ४ पर्याय, वारमुख्या, कुट्टनी : २ पर्याय, दैवज्ञा : ३ पर्याय, रज-स्वला : ८ पर्याय, रजस् : ३ पर्याय, दोहदवती : २ पर्याय, विगतार्तवा : २ पर्याय, गर्भिणी : ४ पर्याय, गाणिक्य ( गणिका-समूह ) तथा गार्भिण, यौवत, पुनर्भूः (द्विरूढा) : २ पर्याय, दिधिषुः ( इसका पति ), अग्रेदिधिषुः ( पुनर्भू स्त्री जिस ब्राह्मण के कुटुम्ब का पालन करे ), कानीन ( कन्याजात ), सौभागिनेय : २ पर्याय, पारस्त्रैणेय, पैतृष्वसेय ( बुआ का पुत्र ) : २ पर्याय, मातृष्वसेय : २ पर्याय, वैमात्रेय, बान्धकिनेय ( कुलटा का पुत्र ) : ५ पर्याय, कालटिनेय ( सती भिक्षुणी का पुत्र ) : २ पर्याय, पुत्र : ५ पर्याय, दुहिता ( स्त्री ) अपत्य : २ पर्याय, औरस : २ पर्याय, पिता : ३ पर्याय, जननी : ४ पर्याय, स्वसा : २ पर्याय, ननान्दा ( ननद ), पौत्री : २ पर्याय, यातरः ( भाइयों की पत्नी ), भ्रातृजाया : २ पर्याय, मातुलानी : २ पर्याय, श्वश्रूः तथा श्वसुर, पितृव्य, मातुल, श्याल, देवर : २ पर्याय, भागिनेय २ पर्याय, जामाता, पितामह : २ पर्याय, प्रपितामह, मातामह, सपिण्ड : २ पर्याय, सौन्दर्य : ४ पर्याय, सगोत्र : ६ पर्याय, बन्धुता : २ पर्याय, पति : ४ पर्याय, उपपति : २ पर्याय, कुण्ड ( जीवित पति के रहते जारोत्पन्न ), गोलक ( मृतपति-जारोत्पन्न ), भ्रातृजः : २ पर्याय, भ्रातरौ ( भगिनी सहित भ्राता ), माता-पितरौ : ४ पर्याय, श्वश्रूश्वसुरौ : २ पर्याय, पुत्रौ ( पुत्र-पुत्रीं ), दम्पती : ४ पर्याय, गर्भाशय : ३ पर्याय, कलल ( शुक्र-शोणित ), सूति-मास : २ पर्याय, गर्भ : २ पर्याय, नपुंसक : ५ पर्याय, बाल्य : ३ पर्याय, तारुण्य : २ पर्याय, वृद्धत्व : ३ पर्याय, पलित, जरा : २ पर्याय, स्तनपा : ४ पर्याय, बाल : २ पर्याय, युवा : २ पर्याय, वृद्ध : ६ पर्याय, वर्षीयान् ( अतिवृद्ध ) : ३ पर्याय, अग्रज : ३ पर्याय, अनुज : ५ पर्याय, दुर्बल : ३ पर्याय, मांसल : ३ पर्याय, तुन्दिल : ५ पर्याय, नतनासिक : ४ पर्याय, केशी ( प्रशस्त केशवाला ) : ३ पर्याय, वलिभः ( श्लथचर्म ) : २ पर्याय, विकलांग : २ पर्याय, वामन : ३ पर्याय, खरणाः ( तीक्ष्ण नासिक ) : २ पर्याय, गतनासिक : २ पर्याय, खुरणाः ( विकटनासिक ) : २ पर्याय, प्रगतजानु ( सान्तराल जानुवाला ) : २ पर्याय, ऊर्ध्वजानु : २ पर्याय, संहतजानुक : २ पर्याय, वधिर : २ पर्याय, कुब्ज : २ पर्याय, कुकरः ( रोगादि दूषित ) : २ पर्याय, अल्पतनुः : २ पर्याय, पंगु : २ पर्याय, मुण्डित : २ पर्याय, केकर ( नेत्रवियुक्त ) :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२ पर्याय, खंज : २ पर्याय, जडुल ( देह में कृष्ण वर्ण चिह्न वाला ) : ३ पर्याय, तिलक: ( देह में तिलों वाला ) : २ पर्याय, आरोग्यम् : २ पर्याय, चिकित्सा : २ पर्याय, औषध : ५ पर्याय, रोग : ७ पर्याय, क्षय : ३ पर्याय, पीनसरोग : २ पर्याय, क्षुत् ( छींक ) : ३ पर्याय, कास ( खांसी ) : २ पर्याथ, शोथ ( सूजन ) : ३ पर्याय, पादस्फोट (पैर का फटना) : २ पर्याय, सिध्म : २ पर्याय, कच्छू ( खुजली ) : ४ पर्यायि, खर्जू ( खुजली ) : ३ पर्याय, विस्फोट ( फोड़ा ) : २ पर्याय, व्रण : ३ पर्याय, नाड़ीव्रण ( सदा गलनशील ) कुष्ठ : ४ पर्याय, अर्शः ( बवासीर ) : २ पर्याय, दिबन्ध : ( मलमूत्र ) : २ पर्याय, संग्रहणी : २ पर्याय, वमि : ३ पर्याय, व्याधिभेद : ज्वरादि चार भेद, अश्मरी : २ पर्याय, वैद्य : ५ पर्याय, कल्य : ( रोगरहित ) : ३ पर्याय, उल्लाघ ( रोग से मुक्त ) ग्लान : रोग से खिन्न, २ पर्याय, व्याधित ( रोगी ) : ७ पर्याय, पामन ( पामायुक्त ) : २ पर्याय, दद्रुण ( दद्रु घाव से युक्त ) : २ पर्याय, अर्शस्, वातकी ( वाताधिक्य ), अतिसारकी, क्लिन्नाक्ष : ( क्लेदयुक्त नेत्र वाला ) : ४ पर्याय, उन्मत्त : २ पर्याय, कफी : ३ पर्याय, न्युब्ज ( रोगभुग्न ), वृद्धनाभि ( वातादि से बढ़ी हुई नाभि वाला ) : ३ पर्याय, सिध्मल : २ पर्याय, अन्ध : २ पर्याय, मूर्च्छित : ३ पर्याय, शुक्र : ६ पर्याय, पित्त : २ पर्याय, कफ : २ पर्याय, त्वक् : २ पर्याय, मांस : ६ पर्याय, शुष्क मांस : ३ पर्याय, रक्त : ७ पर्याय, वुक्का ( हृत्स्थ मांसभेद ) : २ पर्याय, हृदय : २ पर्याय, वसा ( मांसजन्य स्नेह ) : ३ पर्याय, मन्या ( पश्चात्स्थ ) ग्रीवाशिरा, शिरा : ३ पर्याय, क्लोम ( मांसपिंडविशेष ) २ पर्याय, मस्तिष्कम् ( मस्तकसम्भूत घृताकार स्नेह ) : २ पर्याय, मल (कर्णादिगत) : २ पर्याय, अन्त्र : २ पर्याय, गुल्म ( वामकुक्षिस्थमांसपिण्ड ) : २ पर्याय, स्नायु : २ पर्याय, यकृत् : २ पर्याय, लाला ( लार ) : ३ पर्याय, दूषिका ( नेत्रमल ), मूत्र : २ पर्याय, विष्ठा : ९ पर्याय, कपाल : २ पर्याय, अस्थि : ३ पर्याय, कंकाल, कशेरुका ( पृष्ठदण्ड ), करोटि ( शिरोगत अस्थिसंघ ), पर्शुका ( पार्श्वगत अस्थियाँ ), अंग : ४ पर्याय, तनु : १२ पर्याय, पादाग्र : २ पर्याय, चरण : ४ पर्याय, घुटिका ( पाद के पार्श्व की ग्रन्थि ) : २ पर्याय, पार्ष्णि, जंघा : २ पर्याय, जानु : ३ पर्याय, ऊरू : २ पर्याय, वंक्षण ( ऊरूसंधि ), गुदम् ( विष्ठा-त्यागस्थान ) : ३ पर्याय, वस्ति ( मूत्राशय ), कट ( श्रोणिफलक ), कटि : ३ पर्याय, नितम्ब, जघन, कूपक ( नितम्बस्थ मांसपिंड ) : २ पर्याय, कटिप्रोथ ( कटिस्थमांसपिण्ड ) : २ पर्याय, उपस्थ, योनि : २ पर्याय, शिश्न : ४ पर्याय, अण्डकोश : ३ पर्याय, त्रिक ( पृष्ठवंश में तीन अस्थिस्थान ), उदर : ५ पर्याय, स्तन : २ पर्याय, कुचाग्र : २ पर्याय, वक्ष : ५ पर्याय, पृष्ठ, स्कन्ध : ३ पर्याय, जत्रु ( स्कन्ध संधि ), कक्ष ( बाहुमूल ) : २ पर्याय, पार्श्व ( इनका निम्न भाग ) मध्य ( तनु मध्य ), : ३ पर्याय, भुजा : ४ पर्याय, कूर्पर : २ पर्याय, प्रगण्ड, प्रकोष्ठ, करभ ( मणिबन्ध से कनिष्ठिका तक हस्त, ), पाणि : ३ पर्याय, तर्जनी : २ पर्याय, अंगुली : ५ पर्याय, क्रम से अंगुष्ठादि ९ नाम, नख : ४

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

पर्याय, प्रादेश : ( तर्जनी सहित विस्तृत अंगुष्ठ ), ताल ( मध्यमा सहित अंगुष्ठ-विस्तार ), गोकर्ण ( अनामिका सहित अंगुष्ठ विस्तार ), वितस्ति ( कनिष्ठा सहित अंगुष्ठ विस्तार ), चपेट ( विस्तृतांगुली हस्त ) : ३ पर्याय, संहतल ( वाम तथा दक्षिण चपेट सहित ), प्रसृति :, अंजलि, हस्त, रत्नि ( बद्धमुष्टि ), अरत्नि ( कनिष्ठा विस्तृत होने पर परिमाण ), व्याम ( दोनों ओर दोनों हाथ फैलाने पर परिमाण ), पौरुष ( ऊर्ध्व-हस्त परिमाण ) कण्ठ : २ पर्याय, ग्रीवा : ३ पर्याय, कम्बुग्रीवा, अवटु ( ग्रीवा-शिर:सन्धि पश्चाद्भाग : ३ पर्याय, मुख : ७ पर्याय, नासिका : ५ पर्याय, ओष्ठ : ४ पर्याय, चिबुक, कपोल : २ पर्याय, हनु, दन्त : ४ पर्याय, तालु : २ पर्याय, जिह्वा : ३ पर्याय, सृक्विणी ( ओष्ठप्रान्तद्वय ) ललाट : ३ पर्याय, भ्रुवौ, कूर्चा, तारक, नेत्र : ८ पर्याय, अपांग ( नेत्रांत ), कटाक्ष, कर्ण : ६ पर्याय, शिर : ५ पर्याय, केश : ६ पर्याय, केशिक ( केश-समूह ) : २ पर्याय, अलका : २ पर्याय, भ्रमरका : ( ललाट स्थित होने पर ), काकपक्ष ( बालकों के केश-समूह ) : २ पर्याय, केशवेष : २ पर्याय, धम्मिल्ल ( बद्धकेश समूह ), शिखा : ३ पर्याय, जटा : २ पर्याय, वेणि : २ पर्याय, शीर्षण्य ( निर्मल केश ) : २ पर्याय, केशसमूहवाची ३ शब्द : कचपाश, केशपक्ष तथा कुन्तल हस्त, रोम : ३ पर्याय, श्मश्रु ( दाढ़ी ), प्रसाधन : ५ पर्याय, अलंकर्ता : २ पर्याय, अलंकृत : ५ पर्याय, रोचिष्णु : ( अतिशोभमान ) : ३ पर्याय, अलंक्रिया : २ पर्याय, अलंकार : ५ पर्याय, किरीट : २ पर्याय, शिरोरत्न : २ पर्याय, तरल ( हार के मध्य की नायक मणि ), बालपाश्या ( सीमंत भूषण ), २ पर्याय, ललाटिका : २ पर्याय, कर्णिका २ पर्याय, कुण्डल : २ पर्याय, कण्ठभूषा : २२ पर्याय, लम्बनम् ( कंठाभूषण लटकन ) : २ पर्याय, प्रालम्बिका ( स्वर्णनिर्मित ) उर:सूत्रिका ( मौक्तिकरचित ), हार : २ पर्याय, देवच्छन्द ( शतयष्टिहार ), एकावली ( हारभेद ) : ७ पर्याय, नक्षत्र-माला ( २७ मुक्ता का हार ), वलय : ४ पर्याय, केयूर : २ पर्याय, अंगुलीयक : २ पर्याय, अंगुलिमुद्रा : ( राम नाम आदि अक्षर युक्त होने पर ), कंकण : २ पर्याय, मेखला : ५ पर्याय, शृंखल (पुरुष कटि भूषण), नूपुर : ६ पर्याय, किंकिणी : २ पर्याय, वस्त्रयोनि ( छाल, फल, कृमि तथा रोम ) : ४ पर्याय, वाल्क, क्षौम ( केले आदि की छाल से बने वस्त्र ), फालम् कार्पासम् बादरम् ( कपास आदि के फल से बने ), कौशेय कृमिकोशोत्थ ( कीटादि से बने रेशमी ), रांकवम्, मृगरोमजम् ( ऊनी ), नवाम्बरम् ( नूतनवस्त्र ) : ४, उद्गमनीय ( धुले ), पत्रोर्ण ( धौत रेशमी वस्त्र ), महाधन (बहु-मूल्य वस्त्रादि ), क्षौम ( पीताम्बर ) : ८, प्रावृत ( ढके वस्त्र ) : २, दशा ( वस्त्र प्रान्त ), दैर्घ्य : ३, विशालता : २ पर्याय, जीर्णवस्त्र: २ पर्याय, कर्पट ( जीर्णवस्त्रखंड ) : २ पर्याय, वस्त्र : ६ पर्याय, स्थूलशाटक ( वस्त्र ) : २ पर्याय, प्रच्छदपट ( वीणादि को ढकने के लिए ) : २ पर्याय, कम्बल : २ पर्याय, अन्तरीय : ४ पर्याय, उत्तरीय : ५ पर्याय, चोल : २ पर्याय, नीशार ( शीत से बचने के लिए रजाई आदि ), चण्डातक ( लंहगा ) : २ पर्याय, आप्रपदीन ( पैर तक लटकने वाले ), वितान ( चंदोवा ) : २ पर्याय, दूष्य ( वस्त्रगृह, डेरा ) वर्तिका : ३ पर्याय, अंगसंस्कार : २ पर्याय, मार्जना

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

: ३ पर्याय, उत्सादन ( पिष्टादि से शरीर मलना ) : २ पर्याय, स्नान : ३ पर्याय, चर्चा ( चन्दनादि से लेपन ) : ३ पर्याय, अनुबोध ( निकले गंध को फिर लाना ) : २ पर्याय, पत्रलेखा ( कस्तूरी आदि से कपोल में रचित पत्रावली ) : २ पर्याय, तिलक : ४ पर्याय, कुंकुम : ११ पर्याय, लाक्षा : ६ पर्याय, लवंग : ३ पर्याय, जायकम् : ३ पर्याय, अगरु : ६ पर्याय, मंगल्या ( बेलापुष्प के सुगंध बाष्प अगरु ), यक्षधूप : ४ पर्याय, सरलद्रव : ५ पर्याय, कस्तूरी : ३ पर्याय, कंकोल : ३ पर्याय, कर्पूर : ५ पर्याय, चन्दन : ४ पर्याय, हरिचन्दन ( भेद ) : ३ पर्याय, रक्तचन्दन : ५ पर्याय, जातीफल : २ पर्याय, यक्षकर्दम ( कर्पूरादि लेप ), मात्रानुलेपनी ( द्रव्य ) : ४ पर्याय, चूर्णम् ( वस्त्रादि के सुवास के लिए ) : २ पर्याय, वासितम् ( गन्धद्रव्य से वासित वस्तु ) : २ पर्याय, अधिवासन ( गुलाबजलादि से पानादि को सुवासित करना ), माला : ३ पर्याय, गर्भक ( केशधृत माला ), प्रभ्रष्टक ( शिखा से लम्बमान माला ), ललामकम् ( ललाट पर धृत ), प्रालम्बक ( कण्ठ से सरल लम्बमान ), वैकक्षिक ( वक्ष में अनृजु धृत ), शेखर ( शिखान्यस्त माल्य ) : २ पर्याय, रचना ( माल्यादि गूंथना ) : २ पर्याय, आभोग ( सर्वोपचारसेवा पूर्णता ) : २, उपधान ( तकिया ) : २ पर्याय, शय्या : ३ पर्याय, खट्वा : ४ पर्याय, कन्दुक : २ पर्याय, दीप : २ पर्याय, आसन : २ पर्याय, संपुटक ( डिब्बा ) : २ पर्याय, पतद्ग्रह ( पीकदान ) : २ पर्याय, कंकतिका ( कंघी ) : २ पर्याय, पिष्टात ( बुक्का ) : २ पर्याय, दर्पण : ३ पर्याय, व्यजनम् : २ पर्याय ।

( ७ ) ब्रह्मवर्ग—

वंश : ९ पर्याय, वर्ण, चातुर्वर्ण्य, राजवंश्यः ( राजवंश में उत्पन्न ) : २ पर्याय, कुलसम्भव : २ पर्याय, सज्जन : ६ पर्याय, ब्रह्मचारी, गृही, वानप्रस्थ तथा भिक्षु ( आश्रम ), ब्राह्मण : ६ पर्याय, षट्कर्मा ( यागादिवृत ब्राह्मण ), पण्डित : २२ पर्याय, श्रोत्रिय : २ पर्याय, अध्यापक : २ पर्याय, गुरु, आचार्य ( मन्त्रव्याख्याकृत् ), यजमान : ३ पर्याय, दीक्षित ( सोमपान का आदेष्टा ), इज्याशील (यजनशील) : २ पर्याय, यज्वा ( विधिवत् यज्ञ किये ), स्थपति ( बृहस्पति के मन्त्र से यज्ञ कराने वाले ), सोमपा ( सोम याग करने वाला ) : २ पर्याय, सर्ववेद : ( विश्वजित् सदक्षिणायागकर्ता ), अनूचान ( सांगवेद का अध्येता ), समावृत्तः ( लब्धगुरोरनुज्ञः ), सुत्वा ( यज्ञोपरान्त स्नानकृत ), शिष्य : ३ पर्याय, शैक्ष ( प्रारब्धाध्ययनबटुक ) : २ पर्याय, सब्रह्मचारी ( एकशाखा अध्येता ), सतीर्थ्य ( एकगुरु ), अग्निचित् ( अग्निचयनकर्ता ), इतिह ( परंपरोपदेश ) : २ पर्याय, उपज्ञा ( प्रथम ज्ञान ), उपक्रम ( आरम्भ ), यज्ञ : ७ पर्याय, पंचमहायज्ञ, समज्या : ९ पर्याय, प्राग्वंश ( यज्ञ के सदस्यों का गृह ), सदस्य ( यज्ञदर्शक ), सभ्य : ४ पर्याय, अध्वर्यु, उद्गाता, होता, याजक : २ पर्याय, वेदिका, चत्वरम् ( संस्कृतभूमि ) : २ पर्याय, चषालः ( यज्ञस्तम्भ के ऊपर बने काष्ठवलय ) : २ पर्याय, कु[illegible] ( [illegible] ), [illegible] ( [illegible] ऊपरी भाग ) २ पर्याय,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अरणि ( यज्ञकाष्ठ ), ३ पर्याय, अग्निविशेष, त्रेता ( इनका समूह ), प्रणीत ( मन्त्रादि संस्कृत अग्नि ), समूह्य ( यज्ञ का अग्नि का स्थान ) : ३ पर्याय, आनाय्य ( गार्हपत्य से लाकर संस्कृत की गई अग्नि ), अग्नि की स्त्री : ३ पर्याय, सामिधेनी ( अग्नि जलाने के लिए प्रयुक्त ऋक् ) : २ पर्याय, छन्द, चरु ( अग्नि में हव्य अन्न ), आमिक्षा ( छाछ ), धवित्र ( मृगचर्मव्यजन ), पृषदाज्यम् (दधियुक्त घृत), पायसम् (क्षीरान्न) : २ पर्याय, हव्य ( दैव ), कव्य (पितृ अन्न), पात्र, पात्र के स्रुव आदि तीन भेद, उपाकृत ( यज्ञ में बलिदेय अभिमन्त्रित ( पशु ), परम्पराकम् ( वधार्थं ) : ३ पर्याय, प्रमीत : ( यागार्थं हत पशु ) ३ पर्याय, सान्नाय्य ( हविर्विशेष ), वषट्कृत ( अग्निहुत ), अवभृथ ( यज्ञान्त का स्नानविशेष ), यज्ञिय ( यज्ञकर्म के योग्य ), इष्ट ( क्रतुकर्म ), पूर्तम् ( खातादिकर्म ), अमृत ( यज्ञशेष पुरोडाशादि ), विघस ( भोजनशेष ), दान : १३ पर्याय, और्ध्वदैहिक ( मृतार्थं दान ), पितृदान : २ पर्याय, श्राद्ध, अन्वाहार्यं (मासिक), कुतप ( दिन का आठवां भाग ), पर्येषणा ( श्राद्ध में द्विजसेवा ) : २ पर्याय, अन्वेषण : २ पर्याय, अध्येषणा ( सेवा ) : २ पर्याय, याचना : ४ पर्याय, अर्घ्यं ( जल ), पाद्य, आतिथ्यम्, आतिथेय ( अतिथ्यर्थं ), अतिथि : ४, पूजा : ६, उपासना : ४ पर्यटनम् : ४ पर्याय, चर्या ( योगमार्ग में स्थिति ), आचमन : २ पर्याय, मौन : २ पर्याय, अनुक्रम : ५ पर्याय, अतिपात ( अतिक्रम ) : ३ पर्याय, व्रत : २ पर्याय, उपवास : २ पर्याय, विवेक, ब्रह्मवर्चसम् ( अध्ययनबुद्धि ), ब्रह्मांजलि ( वेदपाठ में ), ब्रह्मबिन्दवः ( वेदपाठ में मुखनिःसृत जलबिन्दु ), ब्रह्मासन ( योगासन ), विधि : ३ पर्याय, मुख्यः ( प्रथम कल्पविधि ), अनुकल्प (अधम), उपाकरण ( संस्कारसहित श्रुतिग्रहण ), अभिवादन : २ पर्याय, भिक्षु : २ पर्याय, तपस्वी : ६ पर्याय, वाचंयम : २ पर्याय, दान्त ( तपःक्लेश से अनुद्विग्न ), ब्रह्मचारी : २ पर्याय, ऋषि : २ पर्याय, स्नातक, यति : २ पर्याय, स्थण्डिल (नियमहेतु भूमिशायी) : २ पर्याय, द्वयातिग : ( सत्त्वैकनिष्ठ ) : २ पर्याय, पवित्र : ३ पर्याय, पाखण्ड : ( बौद्धवादि-दुःशास्त्रवर्ती ) : २ पर्याय, आषाढ़ ( व्रतियों का पलाशदण्ड ), राम्भ ( वेणु सम्बन्धी दण्ड ) कमण्डलु : २ पर्याय, वृषी ( इनका आसन ), चर्म : ३ पर्याय, भैक्षम् ( भिक्षासमूह ), स्वाध्याय : २ पर्याय, सवनम् ( यज्ञौषधि को कूटना ) : ३ पर्याय, अघमर्षणम् ( सब पापों का नाशक जप ), दर्श ( अमा ) तथा पौर्णमास ( पूर्णिमा ) याम, यम, नियम ( बाह्यसाधन ), उपवीत, प्राचीनावीतम् (वामकरधृत), निवीत ( कंठलंबित ), दैव (अंगुली-अग्रधारित), काय ( स्वल्पांगुलिधृत ), पित्र्यम् ( अंगुष्ठतर्जनी के मध्यभाग में ), ब्राह्मम् ( अंगुष्ठ मूल में ), ब्रह्मत्वम् ( ब्रह्मभाव ) : ३ पर्याय, देवत्व : ३ पर्याय, कृच्छ्रं सान्तपन व्रत ) प्राय ( संन्यासपूर्वक भोजनत्याग ), नष्टाग्नि : २ पर्याय, कुहना ( मिथ्या धर्माचरण ), व्रात्य ( उपनयनादि संस्कारहीन व्रती ), निराकृति ( अस्वाध्याय ), धर्मध्वजी (जीविकार्थं जटाधारी), क्षतव्रतः (खण्डित ब्रह्मचर्य) : २ पर्याय, अभिनिर्मुक्त : (जिसके सोने पर सूर्यास्त होता है ), अभ्युदित ( जिसके सोते सूर्य अस्त हो ), परिवेत्ता ( बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटे भाई का विवाहित होना ), परिवित्ति ( परिवेत्ता का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बड़ा ), विवाह : ६ पर्याय, मैथुन : ५ पर्याय, त्रिवर्ग तथा चतुर्वर्ग, चतुर्भद्र ( सांग धर्मार्थ मोक्षपर्यन्त समुदाय ) जन्य : ( वर-पक्ष के स्नेही-जन )।

(८) क्षत्रियवर्ग—

क्षत्रिय : ५ पर्याय, राजा : ७ पर्याय, अधीश्वर ( सभी सामन्तों के ऊपर ), चक्रवर्ती : २ पर्याय, मण्डलेश्वर (इससे भिन्न), सम्राट् ( राजसूयकर्ता मण्डलेश्वर तथा सर्वनृपशास्ता ), राजकम् ( नृपतियों का गण ), राजन्यकम् ( क्षत्रियसमूह ), मन्त्री : ३ पर्याय, कर्मसचिव, महामात्र ( मुख्य राजसहाय ) : २ पर्याय, पुरोहित ( व्यवहार-निर्णेता ) : २ पर्याय, प्राड्विवाक ( जज ) : २ पर्याय, द्वारपाल : ५ पर्याय, अनीकस्थ ( राजरक्षकगण ) : २ पर्याय, अध्यक्ष : २ पर्याय, स्थयुक (ग्राम का अधिकारी), गोप ( अनेक ग्रामों का ), कनकाध्यक्ष : २ पर्याय, रूप्याध्यक्ष : २ पर्याय, अन्तर्वैशिक ( अन्तःपुर अधिकारी ), कंचुकी ( राजा के रनिवास में ) : ४ पर्याय, शण्ढ ( अन्तःपुरचर क्लीब ) : २ पर्याय, अनुरोध ( अनुकूलता ) : २ पर्याय, चारः : ७ पर्याय, आप्तः : २ पर्याय, ज्योतिषिक : ८ पर्याय, तान्त्रिक : २ पर्याय, गृहपति : २ पर्याय, लिपिकार : ४ पर्याय, लिखितम् : ४ पर्याय, दूत : ८ पर्याय, दूत्य ( भावकर्म ) पथिक : ५ पर्याय, स्वामी इत्यादि ७ राज्यांग, प्रकृति ( ये राज्यांग तथा प्रजा ), संधिगुणादि षड्गुणः, प्रभाव, उत्साह, मन्त्रज तीन शक्तियाँ, क्षयस्थानवृद्धि ( नीतियों का त्रिवर्ग ), प्रभाव : २ पर्याय, उपायचतुष्टय, दण्ड : ३ पर्याय, सत्य : २ पर्याय, भेद : २ पर्याय, उपधा ( धर्मार्थ परीक्षण ), अषडक्षीण (दो व्यक्तियों की गुप्त सलाह), विजन : ७, रहस्य, विश्वास : २ पर्याय, भ्रेष ( पतन ), अभ्रेष ( नीति ) : ५ पर्याय, न्याय्यम् : ६ पर्याय, समर्थन ( युक्तायुक्तपरीक्षा ) : २ पर्याय, निर्देश : ६ पर्याय, मर्यादा : ४ पर्याय, अपराध : ३ पर्याय, बन्धन : २ पर्याय, द्विपाद्य ( द्विगुण दण्ड ), कर : ३ पर्याय, शुल्क, उपहार : ६ पर्याय, सुदाय ( बन्धुदेय ) : २ पर्याय, तत्काल ( वर्तमान ) : २ पर्याय, आयति ( आगामी ), सांदृष्टिक ( सद्यः फल ), उदर्क (उत्तर-भावि फल ), अदृष्ट ( प्राकृतिक ) तथा दृष्ट ( शत्रुकृत ) भय, अहिभय ( स्वपक्षप्रभव ), अधिकार : २ पर्याय, चामरम् : २ पर्याय, नृपासन : २ पर्याय, सिंहासन, छत्र : २ पर्याय, नृपलक्ष्म ( छत्र ), पूर्णकुम्भ : २ पर्याय, भृंगारः ( स्वर्णरचित पात्रविशेष ), शिविर : २ पर्याय, उपरक्षणम् ( सैन्यरक्षण ), सैनांग, हस्ति : १५ पर्याय, यूथनाथ : २ पर्याय, मन्दोन्मत्त : २ पर्याय, कलभ : २ पर्याय, गर्जित ( जातमद ) : ३ पर्याय, निर्मदः : २ पर्याय, हास्तिक ( गजवृन्द ) : २ पर्याय; करिणी : ३ पर्याय, कट ( हस्तिकपाल ), मद : २ पर्याय, करशीकर ( सूँडनिःसृत जलकण ) : २ पर्याय, कुम्भौ ( शिरस्थ पिण्ड ), विदु ( दोनों के मध्य स्थान ), अवग्रह ( गजललाट ), इषीका ( अक्षिगोलक ) : २ पर्याय, निर्याण ( हस्ति का अपांग ), चूलिका (कर्णमूल), वाहित्थ ( कुम्भ का अधोभाग ), प्रतिमान ( दन्तमध्यभाग ), आसन ( गजस्कन्धदेश ) पद्मक ( बिन्दुजालक ), पक्ष ( पार्श्व ) भाग, दन्तभाग, गात्र ( पूर्व जंघादिदेश ), अवर ( पश्चात् जंघादिदेश ), तोत्र ( दण्ड चाबुक ) : २ पर्याय, आलान (बन्धन आधार),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निगड : ३ पर्याय, अंकुश : ८ पर्याय, कक्ष्या ( मध्यबन्धनरज्जु ) : २ पर्याय, सज्जना ( गजसज्जा ) : २ पर्याय, कुथ ( गज आस्तरण ) : ५ पर्याय, वीत ( असारहस्त्यश्व ), वारी ( गजबन्ध स्थान ) : २ पर्याय, अश्व : १३ पर्याय, आजानेय : ( कुलीन अश्व ), विनीतः, वनायुज, पारसीक, काम्बोज, वाह्लीक चार भेद, ययुः ( अश्वमेधीय ), जवन : ( वेगवाला ), पृष्ठ्य : ( ढोने वाला ) : २ पर्याय, कर्क ( सित अश्व ), रथ्य ( रथवोढ़ा ) किशोर, अश्वा : ३ पर्याय, वाडव ( समूह ), आश्वीनम् ( घोड़े द्वारा एक दिन का रास्ता ), कश्य ( अश्वमध्य ), ह्रेषा ( अश्वनिस्वनशब्द ) : २ पर्याय, निगाल ( गलदेश ), अश्वीय ( समूह ) : २ पर्याय, आस्कन्दितादि : ५ अश्वगतियाँ, प्रोथ (अश्व नासिका), खलीन (लगाम) : २ पर्याय, खुर : २ पर्याय, पुच्छ : ३ पर्याय, बालहस्त (अग्रभाग) : २ पर्याय, लुठित : २ पर्याय, शतांगः ( चक्रयुक्तमानवाला ) : ३ पर्याय, पुष्यरथ ( विपरीत ), कर्णीरथ (स्त्रियों के लिए) : ३ पर्याय, शकट : २ पर्याय, गन्त्री ( छोटी गाड़ी ), शिविका ( डोली ) ) : २ पर्याय, दोला : २ पर्याय, द्वैप ( व्याघ्रचर्मनिर्मित रथ : २ पर्याय, पाण्डुकम्बली ( रथ ), काम्बल ( आवृत ) : २ पर्याय, रथ्या ( समूह ) : २ पर्याय, यानमुखम् : २ पर्याय, रथांग : २ पर्याय, चक्र : २ पर्याय, नेमिः : २ पर्याय, पिण्डिका ( चक्रमध्य ) : २ पर्याय, अणि ( कील ), वरूथः : २ पर्याय, चक्र : २ युगन्धर ( अश्वबन्धनकाष्ठ ) : २ पर्याय, अनुकर्ण ( रथ के नीचे का काष्ठ ), प्रासंग, यान, यानादि : ४ पर्याय, वैनीतक, हस्तिपक : ४ पर्याय, नियन्तादि : ८ पर्याय, रथकुटुम्बी, रथिनः ( योद्धा ) : २ पर्याय, अश्वारोह : २ पर्याय, योद्धा : ३ पर्याय, सैनिकाः : २ पर्याय, सैन्याः ( समवेत ), साहस्रा ( बल ) : २ पर्याय, परिचर ( दण्डनायक ) : २ पर्याय, सेनानी ( सेनापति ) : २ पर्याय, कंचुक ( झूलादि ) : २ पर्याय, सारसन ( इसको कसने के लिए पट्टी ) : २ पर्याय, शिरस्त्रम् : ३ पर्याय, कवच : ७ पर्याय, पिनद्ध ( कंचुकादिधारी ) : ४ पर्याय, वर्मित : ४ पर्याय, कावचिकम् ( समूह ), पदाति : ७ पर्याय, पादातम् (इनका समूह , शस्त्राजीव : ४ पर्याय, कृतहस्त (शरनिक्षेपदक्ष) : ३ पर्याय, अपराद्धपृषत्कः ( लक्ष्यच्युतसायक ), धनुर्धर : ६ पर्याय, काण्डवान् ( शरधारी ) : २ पर्याय, शाक्तीक ( शक्त्यायुधधारी ) : २ पर्याय, याष्टीक, पारश्वधिक ( परशुधारी ), नैस्त्रिंशिक, कौन्तिक, चर्मी, पताकी : २ पर्याय, अनुचर : ४ पर्याय, पुरोगामी : ७ पर्याय, मन्दगामी : २ पर्याय, अतिजवः : २ पर्याय, जंघाकारिक : २ पर्याय, त्वरितः : ६ पर्याय, जय्य तथा जेय, जेता : २ पर्याय, अभ्यमित्रीयः ( शत्रु से लड़ने वाला ) : ३ पर्याय, ऊर्जस्वी : २ पर्याय, उरस्वान् ( विशाल वक्ष ) : २ पर्याय, रथी : ३ पर्याय, अनुकामीन (इच्छानुसार गमन करने वाला), अत्यन्तीन (अत्याधिक गामी), शूर : ३ पर्याय, जेता : ३ पर्याय, सांयुगीन (रणकुशल), सेना : ११पर्याय, व्यूह, प्रत्यासार ( व्यूहपश्चाद्भाग ) : २ पर्याय, सैन्यपृष्ठ : २ पर्याय, पत्तिसेना, सेनामुख से अक्षौहिणी तक सेनाविभाजन, लक्ष्मी : ४ पर्याय, आपत् : ३ पर्याय, शस्त्र : ४ पर्याय, धनु : ७ पर्याय, कर्ण का कालपृष्ठ धनु, अर्जुन का गाण्डीव : २ पर्याय,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

कोटि ( धनुप्रान्त ) : २ पर्याय, गोधा ( ज्याघात वारण ) : २ पर्याय, लस्तक ( धनु- मध्य ), मौर्वी : ४ पर्याय, प्रत्यालीढ आदि पाँच धनुर्धरों के स्थितिभेद, लक्ष्य : ३, शराभ्यास : २ पर्याय, बाण : १२ पर्याय, नाराच ( लोहमय बाण ) : २ पर्याय, पक्ष : २ पर्याय, निरस्त ( प्राहित बाण ), विषाक्त : ३, तूणीर : ६ पर्याय, खड्ग : ९ पर्याय, त्सरु ( खड्गमुष्टि ), मेखला (निबन्धन), फलक : ३ पर्याय, संग्राह ( फल- कमूठ, ) मुद्गर : ३ पर्याय, करवालिका : २ पर्याय, सृगः ( अश्मप्रक्षेपसाधन ) : २ पर्याय, परिघ ( लोहबद्ध लगुड ) : २ पर्याय, कुठार : ४ पर्याय, छुरिका : ४ पर्याय, शल्यम् ( बाण ) : २ पर्याय, तोमर ( शस्त्र ) : २ पर्याय, कुन्त : २ पर्याय, घोण ( खड्गादिप्रान्त ) : ४ पर्याय, सर्वौघ चतुरंग सैन्यसंनहन) : ३ पर्याय, लोहाभिहार ( शस्त्रादिसमर्पण विधि ), अभिषेणन ( सेना के सहित गमन ), यात्रा : ६ पर्याय, आसारः ( सैन्य प्रसार ) : २ पर्याय, चलितम् ( प्रस्थित सैन्य ) : २ पर्याय, अभिक्रम ( शूर का शत्रुगमन ), वैतालिक ( स्तुतिपाठक ) : २ पर्याय, चाक्रिकाः (वन्दिविशेष) : २ पर्याय, मागध ( राजवंशस्तावक ) : २ पर्याय, स्तुतिपाठक : २ पर्याय, संशप्तक ( संग्राम से न लौटने वाले ), रेणु : ४ पर्याय, चूर्ण (पिष्टरज) : २ पर्याय, समुत्पिंजः ( अत्यन्ताकुल सैन्यादि ) : २ पर्याय, पताका : ४ पर्याय, वीराशंसनम् ( भयदा युद्ध- भूमि ), अहंपूर्विका, आहोपुरुषिका ( दर्प से आत्मसम्भावना ), अहमहमिका, बल : १० पर्याय, विक्रम : २ पर्याय, वीरयान, युद्ध : ३१ पर्याय, बाहुयुद्ध : २ पर्याय, तुमुलम् : ( रणसंकुल ), सिंहनाद : २ पर्याय, घटा ( हस्तिघटा ), क्रन्दन ( योद्धाओं का आह्वान ), बृंहित ( करिगर्जित ), विस्फार ( धनुशब्द ), पटह ( संग्रामध्वनि ) : २ पर्याय, बलात्कारः : ३ पर्याय, छल : २ पर्याय, उत्पात : ३ पर्याय, मूर्च्छा : ३ पर्याय, पीडनम् ( दूसरे राजा को पीड़ा देना ) : २ पर्याय, अभ्यवस्कन्दनम् ( छल- पूर्वक आक्रमण) : २ पर्याय, विजय : २ पर्याय, प्रतीकार : ३ पर्याय, द्रवः (पलायन) : ८ पर्याय, पराजय, पराजित : २ पर्याय, नष्टः : २ पर्याय, वध : ३० पर्याय, मरण : १० पर्याय, मृत : ७ पर्याय, चिता : ३ पर्याय, कबन्ध ( धड़मात्र ), श्मशान : २ पर्याय, शव : २ पर्याय, प्रग्रह ( चौरादि को खींचना ) : ३ पर्याय, कारा, प्राण : २ पर्याय, जीव : २ पर्याय, आयुः, जीवातुः ( जीवनौषध ) : २ पर्याय ।

( ९ ) वैश्य वर्ग—

वैश्य : ६ पर्याय, जीविका : ६ पर्याय, वैश्यों की तीन वृत्तियाँ, सेवाश्ववृत्ति, कृषि : अनृत, कटाधान्य : ऋत, याचित : मृत, अयाचित : अमृत, वणिग्भाव : सत्या- नृत, ऋण : ३ पर्याय, वृद्धिजीविका ( ऋण देने से ) : ३ पर्याय, याचितकम् ( भीख में प्राप्त ), आपमित्यकम् ( बदले में प्राप्त ), अधमर्ण उत्तमर्ण ( कर्ज देने लेने वाले ), कुसीदिक ( ब्याज पर जीविका वाले ) : ४ पर्याय, कृषिक : ४, व्रैहेय ( व्रीहिक्षेत्र ), शालेय, यव्यम् ( यवादि का गृह ) : ३ पर्याय, तिल्यम् तैलीनम् : २ पर्याय, भेद- मौद्गीनम्, बीजाकृत ( बोया हुआ ), हल्य : ३ पर्याय, त्रिहल्यम् : ४ पर्याय, शम्बाकृत ( द्विकृष्ट ), द्रौणिकाढकिका ( आढक आदि पैदा होने वाले ), खारीक ( खारी बुए ),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

क्षेत्र : ३ पर्याय, कैदारकम् ( क्षेत्रगण ) : ४ पर्याय, लोष्टम् : २ पर्याय, कोटिश ( मुग्दर ) : २ पर्याय, प्राणनम् ( चाबुक ) : ३ पर्याय, खनित्रम् ( कुदाल ) : २ पर्याय, लवित्रम् ( हंसुवा ) : २ पर्याय, आबन्ध : ( युगबन्धनरज्जु ) : ३ पर्याय, फलम् ( हल का लौहमय काष्ट ) : ५ पर्याय, हल : ४ पर्याय, युगकीलक : २ पर्याय, ईषा ( हलदण्ड ), सीता ( हलरचित रेखा ), मेधि ( पशुबन्धकाष्ठ ) : २ पर्याय, व्रीहि : ३ पर्याय, यव : २ पर्याय, तोक्म ( हरित यव ), हरेणु ( मटर ) : ४ पर्याय, कोद्रव ( कोदों ) : २ पर्याय, मसूर : २ पर्याय, वनमुद्ग: ३ पर्याय, सर्षप : ३ पर्याय, सिद्धार्थं ( धवल सर्षप ), गोधूम : २ पर्याय, कुल्माष : ( अधसूखे जौ ) : २ पर्याय, चणक : २ पर्याय, तिलपेज : ( निष्फल तिल ) : २ पर्याय, क्षव : ( कृष्णसर्षप ) : ५ पर्याय, प्रियंगु : २ पर्याय, अतसी : ३ पर्याय, भंगा : २ पर्याय, अणु : ( व्रीहिभेद ), किंशारु : ( ठूंठ ), कणिश ( सस्यमंजरी ), धान्य : ३ पर्याय, स्तम्ब ( तृणगुच्छ ), नाल ( गुच्छकाण्ड ) : २ पर्याय, पलाल ( सकाण्ड निष्फल ), बुसम् ( भूसा ) : २ पर्याय, तुष ( धान्य ), शूक ( तीक्ष्णाग्र ), शमी ( फली ) : २ पर्याय, ऋद्धम् ( अपनीत तृण, राशीकृत धान्य ) : २ पर्याय, पूतम् ( अपनीत बुस ) : २ पर्याय, माषमुद्ग भेद, शालि : ( धान्य ), गवेधु : ( मुनि अन्नविशेष ) : २ पर्याय, मुसल : २ पर्याय, उलूखल : २ पर्याय, शूर्पम् : २ पर्याय, चालनी : २ पर्याय, स्यूत ( वस्त्रभाण्ड ) : २ पर्याय, कण्डोल ( कण्डी ) : २ पर्याय, कट : ( वंशादि विकार ) : २ पर्याय, महानस : ३ पर्याय, पौरोगव ( इसका अध्यक्ष ), सूपकार ( पाचक ) : ७ पर्याय, आपूपिक ( हलवाई ) : ३ पर्याय, चुल्लि : ५ पर्याय, अंगारधानिका : ४ पर्याय, अंगार : ३ पर्याय, भ्राष्ट्र : २ पर्याय, कन्दु : ( मद्यनिर्माणस्थान ) : २ पर्याय, अलिंजर ( महाकुम्भ ) : २ पर्याय, कर्करी ( झंझरा ) : ३ पर्याय, स्थाली : ४ पर्याय, कलश : ४ पर्याय, शराव : २ पर्याय, ऋजीषम् ( पिष्टपाकोपयोगी पात्र ) : ३ पर्याय, पानभाजनम् : ३ पर्याय, कुतू : ( स्नेहपात्र ), कुतुप ( अल्प ), अवपनम् ( पात्र मात्र ), भाण्ड : ५ पर्याय, दर्वि : करछुल ) : ३ पर्याय, तर्दू : (दो दर्वीभेद) : २ पर्याय, शाक : ३ पर्याय, नालिकार: ( साग का डंठल ) : ३ पर्याय, उपस्कर ( मरीचादि चूर्ण ) : २ पर्याय, तिन्तिडीकम् ( चूका ) : ३ पर्याय, मरीचम् : ६ पर्याय, जीरक : ४ पर्याय, सुषवी ( कृष्णाजीरक ) : ६ पर्याय, आर्द्रक : २ पर्याय, धान्याकम् : ४ पर्याय, शुण्ठी : ५ पर्याय, कांजिकम् : ७ पर्याय, हिंगु : ५ पर्याय, कारवी ( हिंगुपत्र ) : ५ पर्याय, हरिद्रा : ५ पर्याय, अक्षीवम् ( सामुद्रलवण ) : २ पर्याय, सैन्धव : ४ पर्याय, रोमकम् ( साम्भरलवण ) : ३ पर्याय, तिलक ( कालानमक ), मत्स्यण्डी ( राब ), शर्करा : ३ पर्याय, कूर्चिका ( खोवा ), रसाला ( दधिमध्वादि संयुक्त ) : २ पर्याय, तेमनम् ( व्यंजन ) : २ पर्याय, शूलाकृत ( लौहछड़ से पका मांस ) : ३ पर्याय, उख्यम् ( स्थाली संस्कृतान्न ) : २ पर्याय, प्रणीतम् ( रसादिसम्पन्न व्यंजन ) : २ पर्याय, प्रयस्तम् ( परिश्रम से बने भोजन ) : २ पर्याय, पिच्छिलम् ( मण्डयुक्त ) : २ पर्याय, शोधित : २ पर्याय; स्निग्ध : ३ पर्याय, भावित ( पुष्पादि द्रव्य से वासित ) २ : पर्याय, आपक्वम् (अधपके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

यवादि ) : ३, लाजा ( लाई ), अक्षता, पृथुक ( आर्द्र भृष्ट व्रीहि ) : २ पर्याय, धाना (भृष्टयव), अपूप : ३ पर्याय, करम्भ : ( दधियुक्तसत्तू ), अन्न : ६ पर्याय, दग्धिका ( दग्ध अन्न ) : २ पर्याय, मण्डः, मासर ( भक्तमण्ड ) : ३ पर्याय, यवागू : ( लपसी ) : ५ पर्याय, गव्यम्, गोमय ( गोबर ) : २ पर्याय, करीष ( शुष्क होने पर ), दुग्ध : ३ पर्याय, पयस्यम् ( दधिआज्यादि ), द्रप्सम् ( पतला-दही ), घृत : ४ पर्याय, नवनीत : २ पर्याय, हैयंगवीन ( बासी दूध से निकाला मक्खन ), गोरस : ( मथनी से मथे ) : ४ पर्याय, तक्र उदश्वित् तथा मथित : ३ भेद, मस्तु ( दधिस्रव ), पीयूष ( नया दूध ), क्षुत् : ३ पर्याय, कवल : २ पर्याय, सपीति : २ पर्याय, सहभोजन : २ पर्याय, पिपासा : ४ पर्याय, भोजन : ७ पर्याय, तृप्ति : ३ पर्याय, फेला ( जूठन ), यथेप्सित : ६ पर्याय, गोषाल : ६ पर्याय, पादबन्धन ( ऐसे पशु ), गोमान् ( स्वामी ) : २ पर्याय, गोकुल : २ पर्याय, आशितंगवीनम् ( जहाँ गायों को खिलाया जाय ), वृषक : ९ पर्याय, औक्षक ( बैलों का समूह ), गव्या ( गोसंहति ) : २ पर्याय, वात्सकम्, धैनुकम्, महोक्ष ( महावृष ), वृद्धोक्ष : २ पर्याय, जातोक्ष : ( उत्पन्न ), तर्णक : ( सद्योजात ), वत्स : २ पर्याय, वत्सतर : (तरुणवत्स) : २ पर्याय, आर्षभ्य : ( पूरा बैल, सांड ), षण्ड ( स्वेच्छाचारी ) : ३ पर्याय, वह : ( स्कन्धदेश ), सास्ना : २ पर्याय, नस्तित : ( स्यूतनासिक ) : २ पर्याय, पृष्ठवाट् ( कंधे पर रक्खा काष्ठ ) : २ पर्याय, युग्य ( युग को वहन करने वाला ), प्रासंग्य तथा शाकटः, हालिक ( हल का बैल ) : २, धुरंधर : ५ पर्याय, एकधुर : ३ पर्याय, सर्वधुरीण :, गौ : ९ पर्याय, नैचिकी ( उत्तमा गौ : ) शवली, धवला आदि वर्णभेद, द्विहायनी ( वयवाली गौ ), चतुर्हायणी, त्रिहायणी, वन्ध्या : २ पर्याय, स्रवद्गर्भा : २ पर्याय, संधिनी (मैथुनउत्सुक), वेहद् (नष्ट गर्भ), उपसर्या (प्रजनकाल वाली गौ), पृष्ठौही ( बालगर्भिणी ), सुकरा ( सीधी ) : २ पर्याय, बहुसूति ( बहुप्रसवा ) : २ पर्याय, चिरप्रसूता : २ पर्याय, नवसूतिका : २ पर्याय, ( धेनु ) सुव्रता ( सुशील ) : २ पर्याय, पीवरस्तनी : २ पर्याय, द्रोणक्षीरा ( द्रोणभर ) : २ पर्याय, धेनुष्या ( बंधक गाय ), समांसमीना ( प्रतिवर्ष प्रसूता ), आपीन ( गोस्तन ) : २ पर्याय, कीलक ( गोबन्धन-काष्ठ ), दाम ( बंधनरज्जु ) : २ पर्याय, पशुरज्जु : ( बहुत पशुओं के लिए ) २ पर्याय, मन्थदण्डक : ५ पर्याय, कुठर : ( दण्डक स्तम्भ ) : २ पर्याय, मन्थनी ( दधि-मन्थन का यन्त्र ) : २ पर्याय, उष्ट्र : ४ पर्याय, करभ ( उष्ट्र शिशु ), शृंखलका : ( बंधे पैरों वाले करभ ), अजा : २ पर्याय, अज : ५ पर्याय, मेढ्र : ७ पर्याय, औष्ट्रकम् ( ऊँट-समूह ), औरभ्रकम्, आजकम्, गर्दभ : ५ पर्याय, वणिक् : ८ पर्याय, विक्रेता : २ पर्याय, क्रयिक ( खरीददार ) : २ पर्याय, वाणिज्यम् ( कर्म ) : २ पर्याय, मूल्य : ३ पर्याय, मूलधन : ३ पर्याय, लाभ, परिदान, (अदलबदल): ४ पर्याय, न्यास : २ पर्याय, प्रतिदान, क्रय्य ( वस्तु ) क्रेय, विक्रेय : ३ पर्याय, सत्याकृति : ३ पर्याय, विक्रय : २ पर्याय, यौतव ( मान ) : ३ पर्याय, आद्यमाषक, अक्ष २, ( पल, सुवर्ण ), २ कुरुविस्त, तुला, भार, आचित, शाकट इत्यादि मान, कार्षापण : २ पर्याय, पण,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आढक आदि ७ परिमाण, पाद, अंश : ३ पर्याय, द्रव्य : १३ पर्याय, कोश : २ पर्याय, कुप्य ( इससे भिन्न ), रूप्यम्, मरकतम् : ४ पर्याय, पद्मराग : ३ पर्याय, मुक्ता : २ पर्याय, प्रवाल : २ पर्याय, मणि : २ पर्याय, स्वर्ण : १६ पर्याय, शृंगी-कनकम् ( अलंकाररूप ), रजत : ५ पर्याय, रीति : ( पीतल ) : २ पर्याय, ताम्रकम् : ६ पर्याय, लोह : ७ पर्याय, मण्डूर ( लौहमल ) : २ पर्याय, कुशी ( लौहविकार ), काच : २ पर्याय, पारद : ४ पर्याय, गवलम् ( महिष शृंग ), अभ्रकम् : २ पर्याय, सौवीर : ४ पर्याय, तुत्थांजन : ५ पर्याय, रसांजनम् : ४ पर्याय, गन्धिक : ३ पर्याय, चक्षुष्या ( तुत्थभेद ) : ३ पर्याय, रीतिपुष्प ( पीतलोत्पन्न ) : ४ पर्याय, हरिताल : ५ पर्याय, शिलाजतु : ५ पर्याय, गन्धरस : ५ पर्याय, फेन ( समुद्र ) : ३ पर्याय, सिन्दूर : २ पर्याय, सीसकम् : ४ पर्याय, वंगम् : ४ पर्याय, तूल ( कपास ) : २ पर्याय, कुसुम्भ : ४, मेषकम्बल : २ पर्याय, शशलोम : २ पर्याय, मधु : ३ पर्याय, मधूच्छिष्ट : २ पर्याय, मनःशिला : ४ पर्याय, नेपाली ( देशभव ) : ३ पर्याय, यवक्षार : ३ पर्याय, सर्जिकाक्षार ( भेद ) : ३ पर्याय, सौवर्चल ( क्षार-भेद ) : २ पर्याय, वंशरोचना : २ पर्याय, श्वेतमरिचम् : २ पर्याय, मोरटम्, पिप्पलीमूल : ३ पर्याय, गोलोमी : २ पर्याय, रक्तचन्दन : २ पर्याय, त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मरीच का योग) : ३ पर्याय, त्रिफला : २ पर्याय।

( १० ) शूद्रवर्ग—

शूद्र : ४ पर्याय, करण ( शूद्रावैश्यपुत्र ), अम्बष्ठ ( वैश्या में ब्राह्मणजात ), उग्र ( शूद्रा में क्षत्रियजात ), मागध ( वैश्याजात ), माहिष्यः ( वैश्या में क्षत्रियजात ), क्षत्ता ( क्षत्रिय में शूद्रजात ), सूत ( ब्राह्मणी में क्षत्रियजात ), वैदेहक ( ब्राह्मणी में वैश्यजात ), रथकार ( करणी स्त्री और माहिष्य पुरुष से उत्पन्न ), चण्डाल ( ब्राह्मणी में शूद्रोत्पन्न ), शिल्पी : २ पर्याय, श्रेणि ( सजाति का समूह ), कुलक ( शिल्पीकुल-प्रधान ) : २ पर्याय, मालाकार : २ पर्याय, कुम्भकार : २ पर्याय, लेपक (गृहादि) : २ पर्याय, तन्तुवाय : २ पर्याय, तुन्नवाय ( कंचुकी आदि का निर्माता ) : २ पर्याय, चित्रकार : २ पर्याय, शस्त्रमार्जः ( शस्त्रघर्षणा ) : २ पर्याय, चर्मकार : २ पर्याय, लौहकारक : २ पर्याय, स्वर्णकार : ४ पर्याय, शांखिक : २ पर्याय, ताम्रकुट्टक : २ पर्याय, वर्धकिः : ५ पर्याय, ग्रामतक्षः, कौटतक्षः ( अनधीन ), नापित : ५ पर्याय, रजकः : २ पर्याय, शौण्डिक ( सुराजीविन् ) : २ पर्याय, अजाजीवः : २ पर्याय, देवाजीवः : २ पर्याय, माया ( इन्द्रजालिक ) २ पर्याय, मायाकार : २ पर्याय, नट : ६ पर्याय, चारण : २ पर्याय, मार्दंगिक ( कुशल ) : ६ पर्याय, पाणिवादाः २ पर्याय, वैरगुष्माः : २ पर्याय, वीणावादाः : २ पर्याय, शाकुनिक : २ पर्याय, जालिक ( मृग-हन्ता ) : २ पर्याय, मांसिक : ३ पर्याय, वैतंसिक : ३ पर्याय, वार्तावह : २ पर्याय, भारवाह : २ पर्याय, नीच : १० पर्याय, दास : ११ पर्याय, पराचित ( परसंवर्धित ) : ४ पर्याय, अलस : ६ पर्याय, दक्ष : ६ पर्याय, चण्डाल : १० पर्याय,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

किरात : ३ पर्याय, व्याध : ४ पर्याय, शुनक : ७ पर्याय, अलर्क ( पगला, रोगी कुत्ता ), विश्वकद्रु ( मृगयाकुशल कुत्ता ), सरमा ( शुनी कुतिया ) : २ पर्याय, विट्चर ( ग्राम्य सूकर ), वर्कर ( तरुण पशु ), आखेट : ४ पर्याय, दक्षिणेर्मा (व्याधहत दक्षिण भाग में व्रणयुक्त ), चौर : १० पर्याय, चौर्य : ४ पर्याय, लोप्त्रम् ( चौर्यधन ), वीतंस ( मृगपशुबन्धन-उपकरण ), कूट-यन्त्रम् ( बन्धन-यन्त्र ) : २ पर्याय, मृग-बन्धनी : २ पर्याय, रज्जु : ५ पर्याय, घटीयन्त्रम् ( रेंहठ ) : २ पर्याय, वेमा ( वस्त्र बुनने का यन्त्र ) : २ पर्याय, तन्तवः : २ पर्याय, वाणिः (कपड़ा बुनना) : २ पर्याय, पुस्तम् ( लेप्यादिकर्म ), पंचालिका ( पुतली ), जातुषम् ( जतुविकार ), त्रापुषम्, पेटक : ४ पर्याय, विहंगिका : २ पर्याय, शिक्यम् ( इसका आलम्ब ) : २ पर्याय, पादुका : ३ पर्याय, अनुपदीना ( उपानत् ), वरत्रा ( चर्मरज्जु ) : २ पर्याय, कशा ( अश्व ), चाण्डालिका ( अन्त्यजवीणा ) : ३ पर्याय, नाराची ( स्वर्णकारों की लोहशलाका ) : २ पर्याय, शाण : ३ पर्याय, पत्रपरशुः ( स्वर्ण वेदनार्थ ) २ पर्याय, एषिका ( शलाकाभेद ) : २ पर्याय, मूषा ( सोना-चांदी गलाने की घरिया ), चर्म-प्रसेविका ( अग्निप्रज्वलनार्थ ) : २ पर्याय, वेधनिका ( शस्त्रभेद ) : २ पर्याय, कृपाणी : २ पर्याय, वृक्षभेदी : २ पर्याय, पाषाणदारण ( घनभेद ) : २ पर्याय, क्रकच, ( काष्ठविदारणाशस्त्र ) : २ पर्याय, आरा : २ पर्याय, अयःप्रतिमा : ३ पर्याय, शिल्प (कला, गीतनृत्यादि), प्रतिमा : ८ पर्याय, उपमा : २ पर्याय, समः : ७, सदृश : निभ-सकाशादि : ५ पर्याय, वेतन : ११ पर्याय, सुरा : १३ पर्याय, अवदंश (भक्षण), मदस्थान : २ पर्याय, मधुक्रम : २ पर्याय, मध्वासव : ४ पर्याय, आसव (इक्षुरस-शाका-दिजन्य मद्य ) : ३ पर्याय, मेदकः ( सुराकल्क ) : २ पर्याय, संधानम् ( मद्य ) : २ पर्याय, किण्वम् ( तण्डुलादिद्रव्यकृतसुरावीज ) : २ पर्याय, कारोत्तर ( सुरा-मण्ड ), पानगोष्ठिका : २ पर्याय, चषक : २ पर्याय, सरकः ( मद्यपान ), धूर्त (द्यूतकर) : ५ पर्याय, प्रतिभूः (ऋणादि प्रतिनिधि), द्यूतकारक : २ पर्याय, द्यूत : ४ पर्याय, पण : २ पर्याय, अक्षः : ३ पर्याय, परिणाय (शरीर को इधर-उधर ले जाना), शारिफलम् : २ पर्याय, समाह्वय ( प्राणिद्यूत ) ।

## तृतीय काण्ड

### ( १ ) विशेष्यनिघ्न वर्ग—

धन्य : ३ पर्याय, उदारचित्त : २ पर्याय, सुहृदय : २ पर्याय, महोत्साह : २ पर्याय, प्रवीण : १० पर्याय, पूज्य : २ पर्याय, सांशयिक ( संशयापन्न ) २ पर्याय, दक्षिण्य ( दक्षिणार्ह ) : ३ पर्याय, वदान्य : ४ पर्याय, आयुष्मान् : २ पर्याय, शास्त्र-वित् : २ पर्याय, परीक्षक ( प्रमाणों से अर्थ का निश्चय करने वाला ) : २ पर्याय, वरद : २ पर्याय, हृष्टमानस : ४ पर्याय, विमन ( व्याकुल ) : ३ पर्याय, उत्क ( उत्-कंठित ) : २ पर्याय, सरल : ३, तत्पर : ३, उत्सुक : २ पर्याय, ख्यात : ६ पर्याय, कृतलक्षण ( शौर्यख्यात ) : २ पर्याय, धनी : ३ पर्याय, प्रभु : १० पर्याय, समृद्ध :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२ पर्याय, कुटुम्बव्यापृत : ३ पर्याय, मूक : २ पर्याय, पितृतुल्य, कूकुद ( अलंकृता कन्या का दाता ), लक्ष्मीवान् : ४ पर्याय, वत्सल : २ पर्याय, दयालु : ४ पर्याय, स्वच्छन्द : ५ पर्याय, पराधीन : ४ पर्याय, अधीन : ५ पर्याय, दीर्घसूत्री : २ पर्याय, खलपू ( सम्मार्जनादि स्वच्छकारी ) : २ पर्याय, असमीक्ष्यकारी : २ पर्याय, कर्मक्षम : ९ पर्याय, कर्मशील : २ पर्याय, कर्मठ : २ पर्याय, कर्मकर ( वेतनभोगी ) : २ पर्याय, कर्मकार ( विपरीत ), आमिषाशी : २ पर्याय, क्षुधित : ४ पर्याय, परान्न (जीविन्) : २ पर्याय, भक्षक : ३ पर्याय, औदरिक : २ पर्याय, आत्मंभरि : २ पर्याय, सर्वान्नभोगी : २ पर्याय, गृध्नु ( साकांक्ष ) : २ पर्याय, लुब्ध : ३ पर्याय, लोलुप : २ पर्याय, सोन्माद : २ पर्याय, अविनीत : २ पर्याय, मत्त : ४ पर्याय, कामुक : ९ पर्याय, वचनस्थित : ४ पर्याय, वंश्य ( वंशगत ) २ पर्याय, विनीत : २ पर्याय, धृष्ट : ३ पर्याय, प्रगल्भ : २ पर्याय, शालीन : २ पर्याय, विस्मयान्वित : २ पर्याय, अधीर : २ पर्याय, भीरु : ४ पर्याय, आशंसु (वाञ्छाशील): २ पर्याय, ग्रहीता (ग्रहणशील) : २पर्याय, पतयालु ( पतनशील ) : २ पर्याय, लज्जाशील : २ पर्याय, वन्दारु ( वन्दनशील ) : २ पर्याय, हिंसा : ३ पर्याय, वर्धन ( शील ) २ पर्याय, उत्पतिष्णु ( उत्पतनशील ) : २ पर्याय, अलंकरिष्णु : २ पर्याय, भविष्णु : ३ पर्याय, वर्तिष्णु : २ पर्याय, निराकरिष्णु : २ पर्याय, ज्ञाता : ३ पर्याय, विकासी (शील) : २ पर्याय, प्रसारी : ४ पर्याय, सहिष्णु : ६ पर्याय, कोपी : ३ पर्याय, अत्यन्तकोपन : २ पर्याय, जागरूक : २ पर्याय, घूर्णित : २ पर्याय, निद्रालु : ३ पर्याय, शपित : २ पर्याय, विमुख : २ पर्याय, अधोमुख : २ पर्याय, वक्ता : ३ पर्याय, वाक्पति : २ पर्याय, वाग्मी : २ पर्याय, अतिवक्ता : २ पर्याय, वाचाल : ४ पर्याय, मुखर : ३ पर्याय, प्रियंवद : २ पर्याय, अस्फुटवाक् : २ पर्याय, गर्ह्यवादी : २ पर्याय, कद्वद ( दोषकथनशील ) : २ पर्याय, अस्वर : २ पर्याय, शब्दन : २ पर्याय, नान्दीवादी ( स्तुति ) : २ पर्याय, जड : २ पर्याय, तूष्णीक : २ पर्याय, नग्न : ३ पर्याय, निष्कासित : २ पर्याय, धिक्कृत : २ पर्याय, अभिभूत ( मानदर्प ) : २ पर्याय, दापित : २ पर्याय, निराकृत : ४ पर्याय, विप्रकृत ( विवरणीकृत ) २ पर्याय, वंचित : २ पर्याय, मनोहत : ४ पर्याय, बद्ध : ३ पर्याय, आपन्न : २ पर्याय, अभिशप्त ( लोकापवाददूषित ) : २ पर्याय, अस्थिर : २ पर्याय, व्यसनपीड़ित : २ पर्याय, व्याकुल : २ पर्याय, विह्वल : २ पर्याय, विवश : २ पर्याय, कश्य ( कशादि ) : २ पर्याय, द्वेष्य : २ पर्याय, वध्य : २ पर्याय, चपल : २ पर्याय, दोषैकदृक् : २ पर्याय, शठ : ३ पर्याय, कर्णेजप ( कान में पर अपवाद कहने वाला ) : २ पर्याय, खल : ३ पर्याय, नृशंस : ४ पर्याय, वंचक : २ पर्याय, मूर्ख : ६ पर्याय, कृपण : ५ पर्याय, दरिद्र : ५ पर्याय, याचक : ५ पर्याय, अहंकारवान् : २ पर्याय, (स्वेदज, अण्डज, उद्भिद आदि ), सुन्दर १२ : पर्याय, अभीष्ट : ६ पर्याय, निकृष्ट : १३ पर्याय, मलिन : ४ पर्याय, पवित्र : ३ पर्याय, शोधित : ५ पर्याय, असार (निर्बल) : २ पर्याय, रिक्त : ४ पर्याय, प्रधान : १० पर्याय, अतिशोभन : ५ पर्याय, अप्रधान : ३ पर्याय, विशाल : ९ पर्याय, स्थूल : ४ पर्याय, अल्प : ३ पर्याय, सूक्ष्म :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

११ पर्याय, अल्पीय : ४ पर्याय, प्रभूत : १२ पर्याय, सकल : १४ पर्याय, निरन्तर : ३ पर्याय, विरल : ३ पर्याय, समीप : १५ पर्याय, संसक्त ( लग्न ) : ३ पर्याय, अन्तिकतम : २ पर्याय, दूर : २ पर्याय, सुदूर : ३ पर्याय, दीर्घ : २ पर्याय, वर्तुल : ३ पर्याय, उन्नत : ६ पर्याय, ह्रस्व : ५ पर्याय, अवनत : ३ पर्याय, वक्र : ११ पर्याय, ऋजु : ३ पर्याय, आकुल : ३ पर्याय, नित्य : ५ पर्याय, अतिस्थिर : ३ पर्याय, स्थावर : २ पर्याय, जंगम : ६ पर्याय, कम्पनशील : ३ पर्याय, चल : ७ पर्याय, अतिरिक्त : २ पर्याय, कठिन : ९ पर्याय, प्रवृद्ध : ३ पर्याय, पुरातन : ५ पर्याय, नूतन : ७ पर्याय, कोमल : ४ पर्याय, अनुग : ४ पर्याय, प्रत्यक्ष : २ पर्याय, अप्रत्यक्ष, २ पर्याय, एकाग्र : ७ पर्याय, आदि : ५ पर्याय, अन्त : ६ पर्याय, निरर्थक : २ पर्याय, स्पष्ट : ४ पर्याय, सामान्य : २ पर्याय, एकाकी : ३ पर्याय, अन्य : ६ पर्याय, उच्चावच (बहुविध) : २ पर्याय, अरुंतुद (मर्मभेदी) : २ पर्याय, अबाध : २ पर्याय, प्रतिकूल : ४ पर्याय, संकट : २ पर्याय, गहन : २ पर्याय, संकीर्ण : ३ पर्याय, मुण्डित : २ पर्याय, ग्रंथित : ३ पर्याय, विस्तृत : ३ पर्याय, विस्मृत : २ पर्याय, आकम्पित : ६ पर्याय, ईरित : ७ पर्याय, प्रसृत : २ पर्याय, न्यस्त : २ पर्याय, उपचित ( समृद्ध ) : २ पर्याय, गुप्त : २ पर्याय, घ्रात : २ पर्याय, उद्यत : २ पर्याय, उद्धृत : २ पर्याय, वेष्टित : ५ पर्याय, तन्त्रित ( शस्त्र ) : ४ पर्याय, लज्जित : ३ पर्याय, वृत : ३ पर्याय, प्राप्य : ३ पर्याय, सुत : ४ पर्याय, अवगीत ( निन्दित ) : २ पर्याय, नानारूप : ४ पर्याय, विकृत : २ पर्याय, चूर्णित : २ पर्याय, बद्ध : ६ पर्याय, पक्व : २ पर्याय, क्षान्त : २ पर्याय, प्रार्थित : २ पर्याय, पूजित : २ पर्याय, पूर्ण : २ पर्याय, क्लिष्ट : २ पर्याय, दग्ध : ४ पर्याय, विद्ध : ३ पर्याय, निष्प्रभ : ३ पर्याय, विलीन : ३ पर्याय, सिद्ध : ३ पर्याय, भिन्न : ३ पर्याय, स्यूत ( पिरोया गया ) : ३ पर्याय, अर्चित : ६ पर्याय, उपचरित : ४ पर्याय, संतापित : ५ पर्याय, प्रमुदित : ६ पर्याय, छिन्न : ८ पर्याय, च्युत : ७ पर्याय, लब्ध : ६ पर्याय, अन्वेषित : ५ पर्याय, क्लिन्न : ७ पर्याय, रक्षित : ६ पर्याय, अवमानित : ५ पर्याय, त्यक्त : ६ पर्याय, उक्त : ७ पर्याय, विदित : ७ पर्याय, अंगीकृत : ११ पर्याय, वर्णित ( स्तुत ) : १२ पर्याय, खादित : १४ पर्याय ।

( २ ) संकीर्णवर्ग—

यदृच्छा : २ पर्याय, शान्ति : ३ पर्याय, दम : ३ पर्याय, वशक्रिया : २ पर्याय, विधूनन ( कंपन ) : २ पर्याय, प्राणन : ३ पर्याय, परित्राण : ३ पर्याय, सेवन : ३ पर्याय, भिदा ( द्विधाभाव ) : ३ पर्याय, आक्रोशन : २ पर्याय, वेदना : २ पर्याय, अभिव्याप्ति : २ पर्याय, यच्ञा : ४ पर्याय, छेदन : २ पर्याय, आम्नाय ( गुरु परम्परा प्राप्त समुपदेश) : २ पर्याय, क्षय : २ पर्याय, ग्रह : २ पर्याय, वश : २ पर्याय, त्राण : २ पर्याय, क्वण : २ पर्याय, वैध : २ पर्याय, पाक : २ पर्याय, हूति : २ पर्याय, वय : २ पर्याय, भ्रम : २ पर्याय, वृद्धि : २ पर्याय, ख्याति : २ पर्याय, स्रव : २ पर्याय, समृद्धि : २ पर्याय, प्रभा : २ पर्याय, प्रसव : २ पर्याय, क्लम ( ग्लानि ) : २ पर्याय, उत्कर्ष : २ पर्याय, ... : २ पर्याय, ... २ पर्याय, जप : २ पर्याय

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निगद ( कथन ) : २ पर्याय, मद ( हर्ष ) : २ पर्याय, उद्वेग : २ पर्याय, अनुग्रह : २ पर्याय, अभियोग : २ पर्याय, विप्लव : ३ पर्याय, बन्धन : ३ पर्याय, उपतप्त्रा (रोग) : ३ पर्याय, निकार (अपकार) : २ पर्याय, इंगित : ३ पर्याय, परिणाम : २ पर्याय, विकृति : २ पर्याय, आचय : २ पर्याय, समाहार : २ पर्याय, प्रत्याहार : २ पर्याय, विहार : २ पर्याय, अभिहार (चौर्य) : २ पर्याय, अनुहार (विडम्बना), : २ पर्याय, प्रवाह : २ पर्याय, यम : ६ पर्याय, विघ्न : ३ पर्याय, उपभोग : २ पर्याय, परिसर्प (परिजनादिवेष्टन) : २ पर्याय, विधुर ( वियोग ) : २ पर्याय, अभिप्राय : ३ पर्याय, संक्षेपण : २ पर्याय, विरोध : २ पर्याय, परिसर्या : २ पर्याय, स्थितिः : ३ पर्याय, विस्तार : ३ पर्याय, मर्दन : २ पर्याय, विनाश : २ पर्याय, परिचय : २ पर्याय, प्रसर : २ पर्याय, सन्निधि : २ पर्याय, पवनम् ( धान्यपूतीकरण ) : २ पर्याय, अवसर : २ पर्याय, प्रश्रय : २ पर्याय, दुर्गसंचर ( मार्ग ) : ३ पर्याय, उपक्रम : २ पर्याय, संभ्रम : २ पर्याय, प्रतिष्टम्भ (प्रतिघात) : २ पर्याय, विलेपन : २ पर्याय, विप्रलम्भ : २ पर्याय, विश्राव ( ख्याति ) : २ पर्याय, निपाठ ( पढ़ना ) : ३ पर्याय, क्लेश : ३ पर्याय, संगम : ३ पर्याय, मार्गण ( गवेषणा ) : ५ पर्याय, उपगूहन ( आलिंगन ) : ४ पर्याय, ईक्षण : ५ पर्याय, निराकृति : ४ पर्याय, घृणा : ४ पर्याय, विपर्यय : ४ पर्याय, अतिक्रम : ४ पर्याय, उपरति : ४ पर्याय, निष्ठेवनम् ( मुख से सांस उत्सर्ग ) : ४ पर्याय, जव : २ पर्याय, अवसान : २ पर्याय, ज्वर : २ पर्याय, माणव्य ( माणवकों का समूह ), सहायता ( सहायों का समूह ।, हल्या ( हलों का समूह ), ब्राह्मण्य (२) : ब्राह्मणों का समूह, पार्श्व (पशुओं का समूह), पृष्ठ्य (पृष्ठों का समूह ), खल्या : २ पर्याय, खलों का समूह, मानुष्यक ( मनुष्यों का समूह ), ग्रामता, जनता इत्यादि ।

## ( ३ ) नानार्थ-वर्ग—

नाक : २ अर्थ, लोक : २ अर्थ, श्लोक : २ अर्थ, सायक : ३ अर्थ, जम्बुक : २ अर्थ, पृथुक : २ अर्थ, मानक : २ अर्थ, अंक : २ अर्थ, कलंक : २ अर्थ, तक्षक : २ अर्थ, अर्क : २ अर्थ, कः : ३ अर्थ, कम् : २ अर्थ, पुलाक : ४ अर्थ, पेचक : २ अर्थ, करक : २ अर्थ, विनायक : ५ अर्थ, किष्कु : २ अर्थ, वृश्चिक : ५ अर्थ, प्रतीकः : २ अर्थ, भूतिकम् : ३ अर्थ, कोशातकी : २ अर्थ, सोमवल्कः : २ अर्थ, पिण्याकः : २ अर्थ, बाह्लीक : ३ अर्थ, कौशिक : ४ अर्थ, आतंक : ४ अर्थः क्षुल्लक : २ अर्थ, जैवातृकः : ४ अर्थ, वर्तक : २ अर्थ, पुण्डरीक : ३ अर्थ, पुण्डरीकम् : ३ अर्थ, दीपकः : ३ अर्थ, दीपकम् : १ अर्थ, शालावृकः : ३ अर्थ, गैरिकम् : २ अर्थ, व्यलीकम् : २ अर्थ, अलीकम् : ३ अर्थ, अनूकम् : २ अर्थ, शल्कम् : २ अर्थ, निष्कः : ४ अर्थ, कल्कः : ३ अर्थ, पिनाकः : ३ अर्थ, धेनुका : २ अर्थ, धेनुकः : १ अर्थ, कालिका : ४ अर्थ, कारिका : ५ अर्थ, कर्णिका : ४ अर्थ, वृन्दारकः : ३ अर्थ, एकः : ४ अर्थ, कोक्कुटिकः : २ अर्थ, लालाटिकः : २ अर्थ, मयूखः : २ अर्थ, शिलीमुखः : २ अर्थ, शंखः ( पु० ) : २ अर्थ ( पु० न० ) : १ अर्थ, खम् ३ अर्थ, शिखा : ४ अर्थ, नगः, अगः :

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

२ अर्थ, आशुगः : ३ अर्थ, खगः : ३ अर्थ, पतंगः : २ अर्थ, पूगः : २ अर्थ, मृगः : ४ अर्थ, वेग, : २ अर्थ, परागः : ५ अर्थ, नागः : ३ अर्थ, मातंगः : २ अर्थ, अपांगः : २ अर्थ, सर्गः : ५ अर्थ, योगः : ६ अर्थ, भोगः : ४ अर्थ, सारंगः ( पु० ) : ३ अर्थ, पत्री : १ अर्थ, प्लवगः : ३ अर्थ, अभिषंगः : ३ अर्थ, युगः : १ अर्थ, युगम् : २ अर्थ, गौः : १० अर्थ, लिंगम् : २ अर्थ, शृंगम् : ३ अर्थ, वरांगम् : २ अर्थ, भगम् : ८ अर्थ, भगः : १ अर्थ, परिघः : २ अर्थ, ओघः : ४ अर्थ, अर्घः : २ अर्थ, अघम् : ३ अर्थ, लघुः : २ अर्थ, काचः : ३ अर्थ, प्रपंचः : ३ अर्थ, शुचिः ( पु० ) : ४ अर्थ, ( त्रि० ) : ३ अर्थ, रुचिः : ४ अर्थ, अहिभुक् : २ अर्थ, द्विजः : ३ अर्थ, अजः : ६ अर्थ, व्रजः : ३ अर्थ, धर्मराजः : ३ अर्थ, कुंजः : २ अर्थ, वलजम् : २ अर्थ, वलजः : १ अर्थ, आजिः : २ अर्थ, प्रजाः : २ अर्थ, अब्जः : ३ अर्थ, अब्जम् : १ अर्थ, निजम् : २ अर्थ :

क्षेत्रज्ञः ( पु० ) : १ अर्थ ( त्रि० ) : १ अर्थ, संज्ञा : ५ अर्थ ।

करटः : २ अर्थ, कटः : २ अर्थ, शिपिविष्टः : ४ अर्थ, त्वष्टा : ३ अर्थ, दिष्टम् : १ अर्थ, दिष्टः : १ अर्थ, कटुः ( पु० ) : १ अर्थ, कटु ( नपु० ) : १ अर्थ, कटुः ( त्रि० ) : २ अर्थ, रिष्टम् : २ अर्थ, अरिष्टम् : २ अर्थ, कूटम् : ९ अर्थ, कुटिः : ४ अर्थ, कोटिः : ४ अर्थ, जटा : ३ अर्थ, व्युष्टिः : २ अर्थ, दृष्टिः : ३ अर्थ, इष्टिः : २ अर्थ, सृष्टम् : ४ अर्थ, कष्टम् : २ अर्थ, पटुः : ३ अर्थ ।

नीलकण्ठः : २ अर्थ, कोष्ठः : ३ अर्थ, निष्ठा : ३ अर्थ, काष्ठाः : ३ अर्थ, ज्येष्ठः ( त्रि० ) : ३ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, कनिष्ठः : ३ अर्थ ।

दण्डः : २ अर्थ, गुडः : २ अर्थ, व्याडः : २ अर्थ, इडा-इला : ४ अर्थ, क्ष्वेडा : २ अर्थ, नाडी : ३ अर्थ, काण्डः : ६ अर्थ, भाण्डम् : ३ अर्थ, ।

वाढम् ( न० ) : १ अर्थ, ( अव्यय ) : २ अर्थ, प्रगाढम् : २ अर्थ, दृढः : ३ अर्थ, व्यूढः : २ अर्थ ।

भ्रूणः : २ अर्थ, वाणः : २ अर्थ, कणः : २ अर्थ, गणः : ३ अर्थ, पणः : ४ अर्थ, गुणः : ६ अर्थ, क्षणः : ३ अर्थ, वर्णः : ( पु० ) : ३ अर्थ, वर्णम्-न० : १ अर्थ, अरुणः ( पु० ) : ४ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, स्थाणु : २ अर्थ, द्रोणः : ३ अर्थ, रणः : २ अर्थ, ग्रामणीः ( पु० ) : १ अर्थ, ( त्रि० ) : २ अर्थ, अर्णः : २ अर्थ, हरिणी ( स्त्री० ) : ३ अर्थ, हरिणः ( त्रि० ) : २ अर्थ, स्थूणा : ३ अर्थ, तृष्णा : २ अर्थ, घृणा : २ अर्थ, विपणि : २ अर्थ, वारुणी : २ अर्थ, करेणुः : ( स्त्री० ) : १ अर्थ ( पु० ) : १ अर्थ, द्रविणम् : २ अर्थ, शरणम् : २ अर्थ, श्रीपर्णम् : २ अर्थ, तीक्ष्णम् ( न० ) : ३ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, प्रमाणम् : ४ अर्थ, करणम् : ४ अर्थ, संसरणम् : ३ अर्थ, समुद्गिरणम् : ३ अर्थ, विषाणम् : २ अर्थ, प्रवणम् ( त्रि० ) : २ अर्थ, प्रवणः : (पु०) : १ अर्थ, संकीर्णः : २ अर्थ, इरिणम् : २ अर्थ ।

विवस्वान् : २ अर्थ, सरस्वान् : २ अर्थ, गरुत्मान् : २ अर्थ, शकुन्तः : २ अर्थ, धूमकेतुः : २ अर्थ, जीमूतः : २ अर्थ, हस्तः : २ अर्थ, मरुत् : २ अर्थ, यन्ता : २

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थ, भर्ता : ३ अर्थ, पोतः : २ अर्थ, प्रेतः : २ अर्थ, केतुः : २ अर्थ, सुतः : २ अर्थ, स्थपतिः : ३ अर्थ, भूभृत् : २ अर्थ, मूर्द्धाभिषिक्तः : ५ अर्थ, ऋतुः : २ अर्थ, अजितः (पु०) :२ अर्थ, (त्रि०) : १ अर्थ, अव्यक्तः (पु०) : ३ अर्थ, (न०) : २ अर्थ, (त्रि०) : १ अर्थ, सूतः ( पु० ) : ५ अर्थ, ( त्रि० ) : २ अर्थ, व्यक्तः : २ अर्थ, दृष्टांतः : २ अर्थ, क्षन्ता : ६ अर्थ, वृत्तान्ततः : ४ अर्थ, आनतः : ३ अर्थ, कृतान्तः : ४ अर्थ, धातुः : ९ अर्थ, शुद्धान्तः : ३ अर्थ, शक्तिः : २ अर्थ, मूर्तिः : २ अर्थ, व्रततिः : २ अर्थ, वसतिः : २ अर्थ, अपचितिः : ३ अर्थ, सातिः : २ अर्थ, अर्तिः : २ अर्थ, जातिः : ७ अर्थ, रीतिः : ५ अर्थ, ईतिः : २ अर्थ, प्राप्तिः : २ अर्थ, त्रेता : २ अर्थ, महती : २ अर्थ, भूतिः : ३ अर्थ, भोगवती : २ अर्थ, समितिः : ३ अर्थ, क्षितिः : ४ अर्थ, हेतिः : ३ अर्थ, जगती : ४ अर्थ, पंक्तिः : २ अर्थ, आयतिः : २ अर्थ, पत्तिः : ४ अर्थ, पक्षतिः : २ अर्थ, प्रकृतिः : ६ अर्थ, वृत्तिः : ४ अर्थ, सिकता : ३ अर्थ, श्रुतिः : ३ अर्थ, वनिता : २ अर्थ, गुप्तिः : ३ अर्थ, धृतिः : ५ अर्थ, बृहती : ५ अर्थ, वासिता : २ अर्थ, वार्ता : २ अर्थ, वार्तम् : ३ अर्थ, घृतम् ( न० ) : २ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, अमृतम् : ६ अर्थ, अमृतः : २ अर्थ, कलधौतम् : २ अर्थ, निमित्तम् : २ अर्थ, श्रुतम् ( न० ) : १ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, कृतम् : २ अर्थ, अत्याहितम् : २ अर्थ, भूतम् ( न० ) : ३ अर्थ, (त्रि०) : ४ अर्थ, वृत्तम् ( न० ) : २ अर्थ, वृत्तः (त्रि०) : ४ अर्थ, महत् ( त्रि० ) : १ अर्थ (न०) : १ अर्थ, अवगीतम् (न०) : १ अर्थ, अवगीतः ( त्रि० ) : ३ अर्थ, श्वेतम् ( न० ) : १ अर्थ, श्वेतः : ( त्रि० ) : १ अर्थ, ( पु० ) २ अर्थ, श्वेता ( स्त्री० ) : ३ अर्थ, रजतम् ( न० ) : २ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, जगत् (त्रि०) : १ अर्थ, (न०) : १ अर्थ, (पु०) : १ अर्थ, रक्तम् : (न०) : ३ अर्थ, रक्तः (त्रि०) : २ अर्थ, अवदातः (त्रि०) : ३ अर्थ, सितः : ३ अर्थ, अभिनीतः : २ अर्थ, संस्कृतम् ( त्रि० ) : ३ अर्थ, ( न० ) : १ अर्थ, अन्ततः ( त्रि० ) : १ अर्थ, ( पु० ) : २ अर्थ, ( न० ) : १ अर्थ, प्रतीतः : ३ अर्थ, अभिजातः : ३ अर्थ, विविक्तः : ३ अर्थ, मूर्च्छितः : ३ अर्थ, शुक्तः : २ अर्थ, शितिः : २ अर्थ, सत् : ७ अर्थ, पुरस्कृतः : ४ अर्थ, निवातः : ३ अर्थ, उच्छ्रितः : ३ अर्थ, उत्थितः : ३ अर्थ, आहतः : २ अर्थ ।

अर्थः : ५ अर्थः, तीर्थम् : ११ अर्थ, समर्थः : ३ अर्थ, दशमास्यः : २ अर्थ, वीथी : ३ अर्थ, आस्था : ४ अर्थ, प्रस्थः : २ अर्थ ।

छन्दः : २ अर्थ, शब्दः : ४ अर्थ, अपवादः : ४ अर्थ, दायादः : २ अर्थ, पादः : ३ अर्थ, तमोनुद् : ३ अर्थ, निर्वादः : २ अर्थ, शादः : २ अर्थ, आक्रंदः : ४ अर्थ, प्रसादः : ३ अर्थ, सूदः : २ अर्थ, गोविन्दः : ३ अर्थ, आमोदः : ५ अर्थ, ककुदः : ४ अर्थ, संविद् : ८ अर्थ, उपनिषद् : ३ अर्थ, शरद् : २ अर्थ, पदम् : १० अर्थ, गोष्पदम् : २ अर्थ, आस्पदम् : २ अर्थ, स्वादुः : ३ अर्थ, मृदुः : २ अर्थ, मन्दः : ७ अर्थ, शारदः : ३ अर्थ, विशारदः : २ अर्थ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न्यग्रोधः : २ अर्थ, उत्सेधः : २ अर्थ, विवधः वीवधः : ३ अर्थ, परिधिः : ३ अर्थ, आधिः : ४ अर्थ, समाधिः : ३ अर्थ, अनुबन्धः : ४ अर्थ, विधुः : ३ अर्थ, अवधिः : ३ अर्थ, विधिः : ५ अर्थ, प्रणिधिः : २ अर्थ, बुधः : २ अर्थ, स्कन्धः : ५ अर्थ, सिन्धुः : ( पु० ) : ३ अर्थ, ( स्त्री० ) : १ अर्थ, विधा : ५ अर्थ, साधुः : ३ अर्थ, वधः : ३ अर्थ, सुधा : ३ अर्थ, संधा : ३ अर्थ, श्रद्धा : २ अर्थ, मधु : ( नपु० ) : ४ अर्थ, ( पु० ) : ४ अर्थ, अन्धम् ( न० ) : १ अर्थ, (त्रि०) : १ अर्थ, समुन्नद्धः : २ अर्थ, ब्रह्मबन्धुः : २ अर्थ, अवष्टब्धः : ४ अर्थ, प्रसिद्धः : २ अर्थ ।

चित्रभानुः : २ अर्थ, भानुः : २ अर्थ, भूतात्मा : २ अर्थ, पृथग्जनः : २ अर्थ, ग्रावा : २ अर्थ, पत्री : ५ अर्थ, शिखरो : २ अर्थ, शिखी : ७ अर्थ, प्रतियत्नः : ३ अर्थ, सादी : २ अर्थ, वाजी : ३ अर्थ, अभिजनः : ४ अर्थ, हायनः : ३ अर्थ, विरोचनः : ३ अर्थ, वृजिनः : (पु०) : १ अर्थ, वृजिनम् (न०) : २ अर्थ, वृजिन : (स्त्री०) : १ अर्थ, विश्वकर्मा : २ अर्थ, आत्मा : ७ अर्थ, घनाघनः : ३ अर्थ, अभिमानः : ४ अर्थ, घन : (पु०) : ५ अर्थ, (त्रि०) : ३ अर्थ, हनः : ३ अर्थ, राजा : ६ अर्थ, वाणिनी : ४ अर्थ, वाहिनी : ३ अर्थ, ह्लादिनी : २ अर्थ, कामिनी : ४ अर्थ, तनुः : (स्त्री०) : २ अर्थ, (त्रि०) : ३ अर्थ, सूना : ३ अर्थ, वितानम् (न० पु०) : ३ अर्थ, (त्रि०) : २ अर्थ, केतनम् : ४ अर्थ, ब्रह्म (न०) : ४ अर्थ, (पु०): २ अर्थ, गन्धनम् : ४ अर्थ, आतंचनम् : ३ अर्थ, व्यंजनम् : ४ अर्थ, कौलीनम् : ३ अर्थ, उद्यानम् : ३ अर्थ, स्थानम् : ४ अर्थ, देवनम् : ( न० ) २ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, उत्थानम् : ६ अर्थ, व्युत्थानम् : ३ अर्थ, साधनम् : १० अर्थ, निर्यातनम् : ३ अर्थ, व्यसनम् : ९ अर्थ, पक्ष्म : ३ अर्थ, पर्व : ३ अर्थ, वर्त्म : २ अर्थ, कौपीनम् : ३ अर्थ, मैथुनम् : २ अर्थ, प्रधानम् : ५ अर्थ, प्रज्ञानम् : २ अर्थ, प्रसूनम् : २ अर्थ, निधनम् : २ अर्थ, क्रन्दनम् : २ अर्थ, वर्ष्म : २ अर्थ, धाम : ६ अर्थ, संस्थानम् : ४ अर्थ, लक्ष्म : २ अर्थ, आच्छादनम् : २ अर्थ, आराधनम् : ३ अर्थ, अधिष्ठान : ४ अर्थ, रत्नम् : २ अर्थ, वनम् : ४ अर्थ, तलिनम् : २ अर्थ, समान ( त्रि० ) : ३ अर्थ ( पु० ) : १ अर्थ, पिशुनः : २ अर्थ, हीनः : २ अर्थ, तरस्वी : २ अर्थ, अभिपन्नः : ३ अर्थ ।

कलापः : ४ अर्थ, परीवापः : ३ अर्थ, गोपः : २ अर्थ, वृषाकपि : ३ अर्थ, कशिपुः : २ अर्थ, तल्पम् : ३ अर्थ, विटपः : ३ अर्थ, प्राप्तरूपः : २ अर्थ, कच्छपी : २ अर्थ । रेफः : (त्रि०) : १ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, ।

गन्धर्वः : ५ अर्थ, कम्बुः : ४ अर्थ, द्विजिह्वः : २ अर्थ, पूर्व : ( त्रि० ) १ अर्थ, पूर्वा ( स्त्री० ) : १ अर्थ, पूर्वं : १ अर्थ।

कुम्भः : ५ अर्थ, डिम्भ : २ अर्थ, स्तम्भः : ३ अर्थ, शम्भुः : ३ अर्थ, गर्भः : ३ अर्थ, विस्रम्भः : २ अर्थ, दुन्दुभि : : (पु०) : ३ अर्थ, (स्त्री०) : १ अर्थ, कुसुम्भम् (न०) : २ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, नाभिः : (पु०) : ३ अर्थ, ( स्त्री० ) : १ अर्थ, सुरभि : ( स्त्री० ) गौ १ अर्थ, ( त्रि० ) : २ अर्थ, सभा : ३ अर्थ, वल्लभः : २ अर्थ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रश्मिः : २ अर्थ, प्लवंगमः : २ अर्थ, कामः : ३ अर्थ, पराक्रमः : २ अर्थ, धर्म : ( न०पु० ) : ६ अर्थ, ( पु० ) : ३ अर्थ, उपक्रमः : ३ अर्थ, निगमः : ३ अर्थ, नैगमः ( त्रि० ) २ अर्थ, ( पु० ) : २ अर्थ, राम : ( पु० ) : ३ अर्थ, ( त्रि० ) : ४ अर्थ, ग्रामः : ३ अर्थ, विक्रमः : २ अर्थ, स्तोमः : ३ अर्थ, जिह्मः : २ अर्थ, घर्मः २ अर्थ, विभ्रमः : ४ अर्थ, गुल्मः :४ अर्थ, जामिः : २ अर्थ क्षमा ( स्त्री० ) : २ अर्थ, क्षमम् ( न० ) : १ अर्थ, ( त्रि० ) : २ अर्थ, श्यामः : ( त्रि० ) : २ अर्थ, ( पु० ) : ६ अर्थ, श्यामा ( स्त्री० ) : ८ अर्थ, श्यामम् ( न० ) : २ अर्थ, ललालम् : १० अर्थ, सूक्ष्मम् ( न ) : २ अर्थ, सूक्ष्म : ( पु० ) : १ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, प्रथमः : २ अर्थ, वामः : ६ अर्थ, अधमः : २ अर्थ, यातयामम् : २ अर्थ ।

तार्क्ष्यः : ४ अर्थ, क्षयः : ४ अर्थ, श्वशुर्य्यः : २ अर्थ, भ्रातृव्यः : २ अर्थ, पर्जन्यः : ३ अर्थ, अर्यः : २ अर्थ, तिष्यः : २ अर्थ, पर्यायः : ४ अर्थ, प्रत्ययः : ९ अर्थ, अनुशयः २ अर्थ, स्थूलोच्चयः : ३ अर्थ, समयः : ८ अर्थ, अनयः : ४ अर्थ, अत्ययः : ५ अर्थ, संपरायः : ३ अर्थ, पूज्यः : २ अर्थ, सन्नयः : २ अर्थ, संस्त्यायः : ३ अर्थ, प्रणयः : ४ अर्थ, समुच्छ्रयः : २ अर्थ, विषयः :३ अर्थ, कषायः : ३ अर्थ, प्रतिश्रयः : २ अर्थ, प्रायः : ४ अर्थ, मन्युः : ३ अर्थ, गुह्यम् : २ अर्थ, सत्यम् : २ अर्थ, वीर्यम् : ४ अर्थ, द्रव्यम् : ५ अर्थ, धिष्ण्यम् : ५ अर्थ, भाग्यम् : २ अर्थ, गांगेयम् २ अर्थ, गांगेयः : १ अर्थ, विशल्या : ४ अर्थ, वृषाकषायी : ४ अर्थ, अभिख्या : ३ अर्थ, क्रिया : ९ अर्थ, छाया : ४ अर्थ, कक्ष्या : ४ अर्थ, कृत्या ( स्त्री० ) : २ अर्थ, (त्रि०) २ अर्थ, जन्यः : ३ अर्थ, जघन्यः : ४ अर्थ, वक्तव्यः : ३ अर्थ, कल्यः : २ अर्थ, अर्घ्यः : ३ अर्थ, पुण्यम् : ( त्रि० ) : २ अर्थ, (न०) : २ अर्थ, रूप्यम् (त्रि०) : १ अर्थ, (न०) : अर्थ, वदान्यः : २ अर्थ, मध्यम् : ४ अर्थ, सौम्यम् ( त्रि० ) : ३ अर्थ, सौम्य : ( पु० ) : १ अर्थ ।

वारः : ३ अर्थ, संस्तरः : २ अर्थ, गुरुः : ३ अर्थ, द्वापरः : २ अर्थ, प्रकारः २ अर्थ, आकारः : २ अर्थ, किशारु : २ अर्थ, मरु : २ अर्थ, अद्रिः : ३ अर्थ, पयोधरः : ५ अर्थ, वृत्रः : ४ अर्थ, करः : ४ अर्थ, प्रदरः : ३ अर्थ, अस्त्र : ( पु० ) : २, ( न० ) २ अर्थ, तूवरः : ३ अर्थ, राः : २ अर्थ, परिकारः : ७ अर्थ, तारः : ( पु० ) : ४ अर्थ तारम् ( न० स्त्री० ) : २ अर्थ, ( न० ) : १ अर्थ, तारा ( स्त्री० ) ३ अर्थ, तारम् ( त्रि० ) १ अर्थ, शार : ( पु० ) : १ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, संगरः : ५ अर्थ, संगरम् : १ अर्थ, मन्त्रः : २ अर्थ, मित्रः : १ अर्थ, मित्रम् : १ अर्थ, स्वरुः : २ अर्थ, अवस्करः : २ अर्थ, आडम्बरः : ३ अर्थ, अभिहारः : ३ अर्थ, परीवारः : ३ अर्थ, विष्टरः : ३ अर्थ, प्रतीहारः : २ अर्थ, प्रतीहारी : १ अर्थ, बभ्रु : (पु०) : ३ अर्थ, (न०) : ३ अर्थ, सार : (पु०) : २ अर्थ, (न०) : १ अर्थ, (त्रि०) १ अर्थ, दुरोदरः : २ (न०) : १ अर्थ, कान्तारः : ३ अर्थ, मत्सर : (पु०) : १ अर्थ, (त्रि०) : २ अर्थ, वरः (पु०) : ३ अर्थ, (त्रि० ) : १ अर्थ, (न० ) : १ अर्थ, करीर : ( पु० न० ) : १ पु० २

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अर्थ, प्रतिसर : (पु०) : ४ अर्थ, (पु० न०) : २ अर्थ, (त्रि०) : १ अर्थ, हरिः (पु०) १४ अर्थ, ( त्रि० ) : २ अर्थ, शर्करा : ४ अर्थ, यात्रा : ३ अर्थ, इरा : ४ अर्थ, तन्द्रा : २ अर्थ, धात्री : ४ अर्थ, क्षुद्रा : (स्त्री०) : ५ अर्थ, (त्रि०) : ३ अर्थ, मात्रा : ५ अर्थ, मात्रम् : २ अर्थ, चित्रम् : ३ अर्थ, कलत्रम् : २ अर्थ, पात्रम् : ७ अर्थ, पत्रम् : ५ अर्थ, शास्त्रम् : २ अर्थ, नेत्रम् : ४ अर्थ, क्षेत्रम् : ४ अर्थ, पौत्रम् : ३ अर्थ, गोत्रम् : ६ अर्थ, सत्रम् : ५ अर्थ, अजिरम् : ५ अर्थ, अम्बरम् : २ अर्थ, चक्रम् : ७ अर्थ, चक्रः : १ अर्थ, अक्षरम् : ८ अर्थ, क्षीरम् : २ अर्थ, भूरि ( न० ) : १ अर्थ, भूरि : ( पु० ): ३ अर्थ, भूरि ( त्रि० ) : १ अर्थ, चन्द्रः : ५ अर्थ, गोपुरम् : ३ अर्थ, गह्वरम् : ४ अर्थ, उपह्वरम् : २ अर्थ, अग्रम् ( न० ) : ९ अर्थ, (त्रि० ) : ३ अर्थ, पुरम् ( न० ) : २ अर्थ, पुर : (पु०) : १ अर्थ, मन्दिरम् २ अर्थ, राष्ट्रः : २ अर्थ, दरः : २ अर्थ, वज्रः : २ अर्थ, तन्त्रम् : ७ अर्थ, औशीरः : (पु० ) : १ अर्थ, (न०) : ३ अर्थ, पुष्करम् : ८ अर्थ, अन्तरम् : १५ अर्थ, पिठरम् : ३ अर्थ, नागरम् ( न० ) : २ अर्थ, नागरः : (त्रि०) : २ अर्थ, शार्वरम् ( न० ) : १ अर्थ, (त्रि०) १ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, शार्वर : (पु०) : १ अर्थ, गौर : ( त्रि० ) : ४ अर्थ, ( पु० ) : २ अर्थ, ( पु० न० ) : १ अर्थ, अरुष्कर : ( पु० ) १ अर्थ, (त्रि०) : १ अर्थ, जठर : ( त्रि० ) : १ अर्थ, ( पु०न० ) : १ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, अधरः : ( त्रि० ) . २ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, एकाग्रः : २ अर्थ, व्यग्रः : २ अर्थ, उत्तर : ( त्रि० ) : ३ अर्थ, उत्तरम् ( न० ) : १ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ,उत्तरा ( स्त्री० ) : २ अर्थ, अनुत्तर : ( त्रि० ) : ४ अर्थ, अनुत्तरम् : १ अर्थ, पर : ( त्रि० ) : ४ अर्थ, परम् : १ अर्थ, मधुर : ( त्रि० ) : २ अर्थ, (पु०) १ अर्थ, मधुरौ : २ अर्थ, क्रूरः : ३ अर्थ, उदार :—३ अर्थ, इतरः : २ अर्थ, स्वैरः : २ अर्थ, शुभ्रम् ( त्रि० ) : २ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, ।

मौलिः : ३ अर्थ, पीलुः : ( पु० ) : ३ अर्थ, पीलु ( न० ) : २ अर्थ, कालः : ४ अर्थ, कलिः ( पु० ) : २ अर्थ, ( स्त्री० ) : १ अर्थ, कमलः : १ अर्थ, कमलम् : ५ अर्थ, कम्बलः : ४ अर्थ, कम्बलम् : २ अर्थ, वलिः ( पु० ) : ४ अर्थ, ( स्त्री ) : ३ अर्थ, बलम् ( न ) : ४ अर्थ, बलः : ( पु० ) : ३ अर्थ, वातूल : ( पु० ) : १ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, व्यालः ( त्रि० ) : १ अर्थ, ( पु० ) : ३ अर्थ, मलः : ३ अर्थ, शूलम् : २ अर्थ, कीलः : ३ अर्थ, पालिः : १० अर्थ, कला : ५ अर्थ, आलिः : २ अर्थ, वेला : ७ अर्थ, बहुला : ( स्त्री० ) २ अर्थ, बहुलः ( पु० ) : २ अर्थ, ( त्रि० ) : २ अर्थ, लीला : ३ अर्थ, उपला ( स्त्री० ) : २ अर्थ, उपल : ( पु० ) : २ अर्थ, कीलालम् : २ अर्थ; मूलम् : ४ अर्थ, जालम् ( न० ) : ५ अर्थ, ( पु० ) : १ अर्थ, शीलम् : २ अर्थ, फलम् : ७ अर्थ, पटलम् ( न० ) : २ अर्थ, ( न० स्त्री० ) : १ अर्थ, तलम् : ३ अर्थ, पलम् : ३ अर्थ, पातालम् : ३ अर्थ, चैलम् ( न० ) : १ अर्थ, कुकूलम् (न०) : १ अर्थ, कुकूल : (पु०) : १ अर्थ, केवलम् ( अव्यय ) : १ अर्थ, ( त्रि० ) २ अर्थ, कुशलम् ( न० ) : ३ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, प्रवालम् : ३ अर्थ,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्थूलम् : २ अर्थ, कराल: : ३ अर्थ, पेशल: : २ अर्थ, बाल: : ५ अर्थ, लोल: : २ अर्थ।

दव:, दाव: : २ अर्थ, भव: : ६ अर्थ, सचिव: : २ अर्थ, धव: : ४ अर्थ, अवि: : ४ अर्थ, हव: : ३ अर्थ, भाव: : १३ अर्थ, प्रसव: : ५ अर्थ, निह्नव: : ३ अर्थ, उत्सव: : ४ अर्थ, अनुभाव: : ३ अर्थ, प्रभाव: : २ अर्थ, पारशव: : २ अर्थ, ध्रुव: ( पु० ) : ७ अर्थ, ध्रुवम् ( न० ) : १ अर्थ ( त्रि० ) : ३ अर्थ, स्व: ( पु० ) : २ अर्थ, स्वम् ( त्रि० ) : १ अर्थ, स्व: ( पु० न० ) : १ अर्थ, नीवि: : ३ अर्थ, शिवा : ६ अर्थ, द्वन्द्वम् : ३ अर्थ, सत्त्वम् ( न० ) : ३ अर्थ ( न० पु० ) : १ अर्थ, क्लीवम् ( न० ) : १ अर्थ ( त्रि ) : १ अर्थ।

विट् : ३ अर्थ, स्पर्श: : २ अर्थ, राशि: : २ अर्थ, वंश: : ४ अर्थ, वीकाश: : २ अर्थ, निर्वेश: : २ अर्थ, कीनाश : ( पु० ) : २ अर्थ ( त्रि० ) : २ अर्थ, अपदेश: : ३ अर्थ, कृशम् : १ अर्थ, कुश: : ४ अर्थ, दशा : ३ अर्थ, दशा: : १ अर्थ, आशा : २ अर्थ, वशा : ५, दृश् ( स्त्री० ) : ३ अर्थ, ( त्रि० ) : १ अर्थ, कर्कश : ( त्रि० ) : ७ अर्थ, ( पु० ) : ४ अर्थ, प्रकाश: : ४ अर्थ, बालिश: : २ अर्थ।

अनिमिष: : २ अर्थ, पुरुष: : ३ अर्थ, ध्वांक्ष: : ६ अर्थ, कक्ष : ४ अर्थ, अभीषु: : २ अर्थ, प्रेष: :—२ अर्थ, पक्ष: : १२ अर्थ, उष्णीष: : २ अर्थ, वृष: : ६ अर्थ, कोष: : ४ अर्थ, आकर्ष: : ५ अर्थ, अक्षम् : ३ अर्थ, अक्ष: : ५ अर्थ, कर्ष : ( पु० ) : २ अर्थ ( स्त्री० ) : १ अर्थ।

पौरुषम् ( न० ) : ३ अर्थ ( त्रि० ) : १ अर्थ, विषम् : २ अर्थ, आमिषम् : ४ अर्थ, किल्विषम् : २ अर्थ, वर्षम् : १ अर्थ, प्रेक्षा : ४ अर्थ, भिक्षा : ४ अर्थ, त्विट् : ३ अर्थ, न्यक्षम् (त्रि०) : २ अर्थ, न्यक्ष : (पु०) : १ अर्थ, अध्यक्ष : २ अर्थ, रूक्ष: : २ अर्थ।

हंस: : ३ अर्थ, विभावसु: : २ अर्थ, वत्स: : २ वत्सम् : १ अर्थ, दिवौकस: : २ अर्थ, रस : ९ अर्थ, उत्तंस: अवतंस : २ अर्थ, वसु: ( पु० ) : ५ अर्थ, ( न० ) : ४ अर्थ ( त्रि० ) : १ अर्थ, वेधा: : ३ अर्थ, आशी: : २ अर्थ, लालसा : ४ अर्थ, हिंसा : २ अर्थ, प्रसू: : ४ अर्थ, रोदस्यौ, रोदसी : २ अर्थ, अर्चि: : २ अर्थ, ज्योति: : ४ अर्थ, आग: : २ अर्थ, वय: : २ अर्थ, वर्च: : ३ अर्थ, मह: : २ अर्थ, रज: : २ अर्थ, तम: ( पु० ) : १ अर्थ, तम : ( न० ) : ३ अर्थ, छन्द: : ४ अर्थ, तप: ( न० ) : ३ अर्थ, तपा: ( पु० ) : २ अर्थ, सह: (न०) : २ अर्थ, सहा: (पु०) : २ अर्थ, नभ: ( न ) : १ अर्थ, नभा: ( पु० ) : ६ अर्थ, ओक: (न०) : १ अर्थ, ओका: (पु०) : १ अर्थ, पय: : २ अर्थ, ओप: : ३ अर्थ, स्रोत: : २ अर्थ, तेज: : ५ अर्थ, विद्वान् : ३ अर्थ, बीभत्स : ( त्रि० ) : २ अर्थ, (पु०) : १ अर्थ, ज्यायान् : २ अर्थ, कनीयान् : २ अर्थ, वरीयान् : २ अर्थ, साधीयान् : २ अर्थ।

बर्हम् : २ अर्थ, ग्रह: : ३ अर्थ, निर्व्यूह: : ४ अर्थ, प्रग्रह:-प्रगाह: : २ अर्थ,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिग्रहः : ६ अर्थ, गृहा : ( पु० ) : १ अर्थ, गृहम् ( न० पु० ) : १ अर्थ, आरोहः : ३ अर्थ, व्यूहः : ४ अर्थ, अहिः : २ अर्थ, तमोपहः ४ अर्थ, परिवर्हः : ३ अर्थ, ।

अव्यय

आङ् : ४ अर्थ, आ : २ अर्थ, आ : २ अर्थ, कु : ३ अर्थ, धिक् : २ अर्थ, च : ७ अर्थ, स्वस्ति : ४ अर्थ, अति : २ अर्थ, स्वित् : २ अर्थ, तु : २ अर्थ, सकृत् : ३ अर्थ, आरात् : २ अर्थ, पश्चात् : २ अर्थ, उत : ४ अर्थ, शश्वत् : ३ अर्थ, साक्षात् : २ अर्थ, बत : ५ अर्थ, हन्त : ४ अर्थ, प्रति : ६ अर्थ, इति : ७ अर्थ, पुरस्तात् : ४ अर्थ, यावत्-तावत् : ४ अर्थ, अथो-अथ : ९ अर्थ, वृथा : २ अर्थ, नाना : ३ अर्थ, नु : ३ अर्थ, अनु : ७ अर्थ, ननु : ७ अर्थ, अपि : ८ अर्थ, वा : ३ अर्थ, सामि : २ अर्थ, अमा : २ अर्थ, कम् : ३ अर्थ, एवम् : ६ अर्थ, नूनम् : २ अर्थ, जोषम् : २ अर्थ, किम् : २ अर्थ, नाम : ७ अर्थ, अलम् : ५ अर्थ, हुम् : ५ अर्थ, समया : २ अर्थ, पुनः : २ अर्थ, निः : २ अर्थ, पुरा : ३ अर्थ, ऊररी, ऊरी, उररी : २ अर्थ, स्वः : २ अर्थ, किल : ५ अर्थ, खलु : ४ अर्थ, अभितः : ५ अर्थ, प्रादुः : २ अर्थ, मिथः : २ अर्थ, तिरः : २ अर्थ, हा : ३ अर्थ, अहह : २ अर्थ, हि : २ अर्थ।

(४) अव्यय-वर्ग—

चिराय, चिररात्र, चिरस्य। मुहुः, पुनःपुनः, शश्वत्, अभीक्ष्णम्, असकृत् ।
स्रक् , झटिति, अञ्जसा, अह्नाय, द्राक्, मङ्क्षु, सपदि ।
बलवत्, सुष्ठु, किमुत, सु, अति, अतीव ।
पृथक्, विना, अन्तरेण, ऋते, हिरुक्, नाना।
यत्, तत्, यतः ततः । चित्, चन । कदाचित्, जातु ।
सार्धम् साकम्, समा, समम्, सह । प्राध्वम् ।
वृथा, मुधा । आहो, उताहो, किमुत, किम्, किमु, उत ।
तु, हि, च, स्म, ह, वै, सु, अति । दिवा ।
दोषा, नक्तम्, साचि, तिरः । पाट् प्याट्, अंग, हे, है, भोः ।
समया, निकषा, हिरुक् । सहसा । पुरः पुरतः अग्रतः ।
स्वाहा, श्रौषट्, वौषट्, वषट्, स्वधा ।
किंचित्, ईषत्, मनाक् । प्रेत्य, अमुत्र ।
व, वा, यथा, तथा, इव, एवम् । अहो, ही ।
तूष्णीं, तूष्णीकाम् । सद्यः, सपदि ।
दिष्ट्या, समुपजोषम् । अन्तरे, अन्तरा, अन्तरेण ।

प्रसह्य । सांप्रतम्, स्थाने । अभीक्ष्णम्, शश्वत् । नहि, अ, नो, न । मास्म, मा, अलम् । चेत्, यदि । अद्धा, अञ्जसा । प्रादुः, आविः । ओम्, एवम्, परमम् । समन्ततः परितः, सर्वतः, विष्वक् । कामम्, अस्तु।ननु च । कच्चित् । निःषमम्, दुःषमम् । यथास्वम्, यथायथम् । मृषा, मिथ्या । यथार्थम्, यथातथम् । स्वम्, पुनः, वै, वा । प्राक् । नूनम्, अवश्यम् । संवत् । अर्वाक् । आम्, एवम् । स्वयम् । नीचैः । उच्चैः । प्रायः । शनैः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सना । बहिः । स्म । अस्तम् । अस्ति । उ । ऊ । अयि । हुम् । उपा । नमः । अंग । दुष्ठु । सुष्ठु । सायम् । प्रगे, प्रातः । निकषा । परुत्, परारि, ऐषमः । अद्य । पूर्वेद्युः, उत्तरेद्युः, अपरेद्युः, अधरेद्युः, अन्येद्युः अन्यतरेद्युः, इतरेद्युः । उभयद्युः, उभयेद्युः । परेद्यवि । ह्यः । श्वः । परश्वः । तदा, तदानीम् । युगपत्, एकदा । सर्वदा, सदा । एतर्हि, संप्रति, इदानीम्, अधुना, सांप्रतम् । प्राग् इत्यादि : ९ अर्थ ।

(५) लिंगादिसंग्रहवर्ग—

### स्त्रीलिंगशब्द—

विद्युत्, निशा, वल्ली, वीणा, दिक्, भू, नदी, ह्री, लंका, शेफालिका, टीका, धातकी, पंजिका, आढकी, सिध्रका, सारिका, हिक्का, प्राचिका, उल्का, पिपीलिका, तिन्दुकी, कणिका, भंगिः, सुरंगा, सूचिः, माढिः, पिच्छा, वितण्डा, काकिणी, चूर्णिः, शाणी, द्रुणी, दरत्, सातिः, कन्था, आसन्दी, नाभिः राजसभा, झल्लरी, चर्चरी, पारी, होरा, लट्वा, सिध्मला, लाक्षा, लिक्षा, गण्डूषा, गृध्रसी, चमसी, मसी ।

### पुल्लिंगशेष संग्रह—

समेद अनुचर, सपर्याय सुरासुर, स्वर्गः, यागः, अद्रिः, मेघः, अब्धिः, द्रुः, कालः, असिः, शरः, अरिः, करः, गण्डः, ओष्ठः, दोः, दन्तः, कण्ठः, केशः, नखः, स्तनः ( सभेद सपर्याय )। वटकः, अनुवाकः, रल्लकः, कुडंगकः, पुंखः, न्यूङ्खः, समुद्गः, विटः, पट्टः, धटः, खटः, कोट्टः, अरघट्टः, हट्टः, पिण्डः, गोण्डः, पिचण्डः, गड्डुः, करण्डः, लगुडः, वरण्डः, किणः, घुणः, दृतिः, सीमन्तः, हरित्, रोमन्थः, उद्गीथः, बुद्बुदः, कासमर्दः, अर्बुदः, कुन्दः, फेनः, स्तूपः, यूपः, आतपः, नाभिः, कणपः, क्षुरः, केदरः, पूरः, क्षुरप्रः, चुक्रः, गोलः, हिंगुलः, पुद्गलः, वेतालः, भल्लः, मल्लः, पुरोडाशः, पट्टिशः, कुल्माषः, रभसः, कटाहः, पतद्ग्रहः ।

### नपुंसकलिंग संग्रह—

खम्, अरण्यम्, मांसम्, रुधिरम्, मुखम्, अक्षि, द्रविणम्, वलम्, फलम्, हेमम्, शुल्बम्, लोहम्, सुखम्, दुःखम्, शुभम्, अशुभम्, जलपुष्प, लवणम्, व्यंजनम्, अनुलेपनम् । उक्थम्, तोटकम्, चोचम्, पिच्छम्, गृहस्थूलम्, तिरीटम्, मर्म, योजनम्, राजसूयम्, वाजपेयम्, गद्यम्, पद्यम्, माणिक्यम्, भाष्यम्, सिंदूरम्, चीरम्, चीवरम्, पंजरम्, लोकायतम्, हरितालम्, विदलम्, स्थालम्, बाह्लवम् ।

### पुन्नपुंसकलिंग संग्रह—

अर्धर्चः, पिण्याकम्, कण्टकम्, मोदकः, तण्डकः, टंकः, शाटकः, कर्पटः, अर्बुदः, पातकः, उद्योगः, चरकम्, तमालः, आमलकः, नडः, कुष्ठम्, मुण्डम्, शीधु, बुस्तम्, क्ष्वेडितम्, क्षेमम्, कुट्टिमम्, संगमम्, शतमानम्, अर्मम्, शम्बलम्, अव्ययम्, ताण्डवम्, कवियम् कन्दम्, कार्पासम्, पारावारम्, युगंधरम्, यूपम्, प्रग्रीवम्, पात्रीवम्, यूषम्, चमसः, चिक्कसः ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

स्त्रीपुंल्लिग—

मुनिः, वराटकः, स्वातिः, वर्णकः, झाटलिः, मनुः, मूषा, सृपाटी, कर्कन्धूः, यष्टिः, शाटी, कटी, कुटी।

स्त्रीनपुंसकशेष—

मैत्र्यम्, मैत्री। मैथुनिका, मैथुनिकम्। सेना, छाया, शाला, सुरा, निशा। त्रिखट्वम्, त्रिखट्वी। त्रितक्षम्, त्रितक्षी।

त्रिलिंगशब्द—

पात्री, पुटी, वाटी, पेटी, कुवलः, दाडिमः।

## काण्ड-विभाजन का आधार और काण्डों का क्रम

अपनी संकलित शब्द-राशि को तीन भागों में बाँटकर प्रत्येक को 'काण्ड' नाम से अभिहित करने में अमरकोषकार ने सम्भवतः अपने से पूर्व की कोष-परम्परा का निर्वाह किया है। अमरकोष के पूर्व का आज केवल 'वैदिक निघण्टु' ही प्राप्त है। यह 'निघण्टु' भी तीन भागों में विभक्त है और इसमें भी प्रत्येक को 'काण्ड' संज्ञा ही दी गयी है, यथा (१) नैघण्टुक काण्ड, (२) नैगम काण्ड और (३) दैवत काण्ड। 'निघण्टु' पर भाष्य होने के कारण 'निरुक्त' के पूर्वषट्क और उत्तरषट्क भी इन तीन काण्डों में विभक्त हैं। ग्रन्थ की एक बड़ी इकाई के लिए 'काण्ड' शब्द का प्रयोग 'निघण्टु' से भी प्राचीन है। तैत्तिरीय संहिता, साम-संहिता तथा अथर्ववेद संहिता में 'अध्याय' के लिए 'काण्ड' शब्द का प्रयोग किया गया है। इससे 'काण्ड' शब्द की प्राचीनता और प्रतिष्ठा स्पष्ट है। स्वयं अमरकोषकार ने 'नानार्थ वर्ग' में 'काण्ड' शब्द के अर्थ दिए हैं, जो इस प्रकार हैं—'काण्डोऽस्त्री दण्डबाणार्ववर्गावसरवारिषु' (३, ३, ४३)। इन अर्थों में 'वर्ग' अर्थ समाहित है। परन्तु स्वयं अमरकोषकार ने प्रत्येक 'काण्ड' को जिन छोटी इकाइयों में बाँटा है, उनके लिए 'वर्ग' शब्द का प्रयोग किया है। अतः 'काण्ड' का अर्थ अमरकोष के सन्दर्भ में 'वर्ग' न होकर 'वर्ग-समुच्चय' ही होगा।

'निघण्टु' से तुलना करने पर स्पष्ट हो जाता है कि अमरकोषकार का काण्ड-विभाजन 'निघण्टु' की अपेक्षा अधिक तर्कसंगत आधार पर स्थित है और सृष्टि के कोट्यात्मक विभाजन के प्रति कोषकार तथा तत्कालीन समाज की दृष्टि का अधिक परिचायक भी है। 'निघण्टु' में 'दैवतकाण्ड' को सबसे अन्त में स्थान दिया गया है। यद्यपि वैदिक वाङ्मय में सदा से ही देव-गणों का महत्त्व मनुष्य तथा पार्थिव पदार्थों की अपेक्षा कहीं अधिक माना जाता रहा है। 'निघण्टु' का प्रारम्भ 'पृथ्वी' के पर्याय-वाची शब्दों से होता है और उसके बाद हिरण्य, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, रश्मि, दिक्, रात्रि, उषस्, दिन आदि क्रम से पर्यायवाची रखे गये हैं। स्पष्ट है कि 'निघण्टु' के संकलन-कर्ता ने क्रम के सम्बन्ध में यादृच्छिकता से काम लिया है। परन्तु 'अमरकोष' के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काण्ड-विभाजन में कोषकार संगृहीत पदार्थों के महत्त्व की तारतम्यता को विभाजन का आधार बनाता हुआ प्रतीत होता है।

अमरकोषकार ने प्रथम काण्ड में पृथ्वी तक लोकों तथा उनसे सम्बद्ध पदार्थों को स्थान देकर तत्कालीन समाज की पारलौकिक दृष्टि और उसके महत्त्व का मानो उद्घोष किया है। इसके बाद उसने द्वितीय काण्ड में पृथ्वी तथा तत्सम्बद्ध पदार्थों को स्थान दिया है। तृतीय काण्ड स्वयं कोषकार के शब्दों में 'सामान्य' काण्ड है, जिसमें पूर्व काण्ड-द्वय में उक्त पदार्थों से सम्बद्ध विशेषण पदों आदि का समावेश है। इस प्रकार अमरकोष का काण्ड-विभाजन सृष्टि के विभिन्न पदार्थों के प्रति भारतीय विचार-धारा द्वारा निर्धारित महत्त्व के तारतम्य के आधार पर प्रतिष्ठित है और इस विभाजन की तर्क-संगतता का आधार भारतीय-चिन्तन ही है।

## वर्ग-विभाजन का आधार और वर्ग-क्रम

अमरकोषकार ने जैसे काण्ड-विभाजन में पदार्थों के महत्त्व के अनुसार पौर्वापर्य रक्खा है, उसी प्रकार वर्गों के विभाजन और संयोजन में भी महत्त्व का तारतम्य पौर्वापर्य का क्रम निश्चित करते हुए प्रतीत होता है। प्रथम और द्वितीय काण्ड को कोषकार ने १०-१० वर्गों में विभक्त किया है और तृतीय सामान्य काण्ड को ५ वर्गों में बाँटा है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि वर्ग-विभाजन का यही क्रम एकमात्र वैज्ञानिक क्रम है, क्योंकि इस विषय में प्रत्येक कोषकार की अलग-अलग धारणा हो सकती है और इस प्रकार जिस शब्द-राशि को अमरकोषकार ने दस वर्गों में बाँटा है उसको तर्कसंगत ढंग से १५ या २० वर्गों में भी बाँटा जा सकता था। इससे तो केवल कोषकार के शिल्प और पदार्थों के महत्त्व के प्रति उसकी धारणा ही स्पष्ट होती है। काण्डों को १०-१० और पाँच के वर्गों में बाँटने से कोषकार ने अपनी रचना में अवयवसंगति स्थापित करने की चेष्टा की है।

प्रथम काण्ड के १० वर्ग हैं—( १ ) स्वर्ग, ( २ ) व्योम, ( ३ ) दिक्, ( ४ ) काल, ( ५ ), धी, ( ६ ) शब्दादि, ( ७ ) नाट्य, ( ८ ) पातालभोगि, ( ९ ) नरक तथा ( १० ) वारिवर्ग।

इन वर्गों का पौर्वापर्य उच्चतम लोक स्वर्ग से शुरू होकर क्रमशः निम्नतम लोक नरक और तत्पश्चात् दूसरे काण्ड की भूमिकास्वरूप वारिवर्ग तक प्रसरित है। अमरकोषकार की रचना-प्रणाली का एक वैशिष्ट्य यह दिखाई देता है कि उसने काण्ड के अन्तिम-वर्ग को दूसरे काण्ड की भूमिका-स्वरूप स्थित किया है। वारिवर्ग में प्रथम काण्ड की समाप्ति का यही उद्देश्य लक्षित होता है, क्योंकि वारिवर्ग का प्रारंभ समुद्र के पर्यायवाची शब्दों में होता है और समुद्र पृथ्वी को परिवेष्टित किए हुए हैं, अतः यह वर्ग भूमिवर्ग से शुरू होने वाले अगले काण्ड की ओर स्वभावतः ले चलता है। इसमें प्रश्न किया जा सकता है कि वारिवर्ग के अन्तर्गत जल, लहर, नौका, केवट, मत्स्य, मण्डूक, कूप इत्यादि ऐसे शब्द हैं, जिनका पृथ्वी से घनिष्ठ सम्बन्ध है, फिर इनको अगले


CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

काण्ड में भूमिवर्ग में न रखकर यहाँ वारिवर्ग में क्यों रक्खा गया ? इस प्रश्न पर विचार करने पर अमरकोषकार के रचना-शिल्प का एक दूसरा पक्ष सामने आता है। उसने किसी पदार्थ से उद्भावित होने वाले या उनके सदृश तथा उससे घनिष्ठ सम्बन्ध रखने वाले पदार्थों को भी उसी के साथ गिना दिया है। अतः समुद्र के साथ जल तथा जल से सम्बद्ध सभी पदार्थों को, वे भले ही भूमि से अधिक सम्बद्ध हों, समुद्र के साथ ही गिना दिया गया है। यह बात सभी काण्डों में दिखाई देती है। उदाहरणार्थ, स्वर्गवर्ग में वायु के पर्यायवाचियों के साथ ही प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान का उल्लेख कर दिया गया है यद्यपि इनका घनिष्ठ सम्बन्ध मनुष्य शरीर से है और इनको मनुष्य-वर्ग में भी रक्खा जा सकता था। इसी प्रकार वेग, सतत, भ्रंश, तीव्र इत्यादि को भी इसी स्थल पर गिनाया गया है, क्योंकि वायु तथा अन्य देवगणों से इन पदों का घनिष्ठ सम्बन्ध होने से स्वभावतः इस प्रसंग में इनका स्मरण हो आता है। इसी प्रकार पातालभोगि वर्ग के अन्तर्गत सर्प, नाग, विष इत्यादि पदार्थ भी पृथ्वी से सम्बद्ध हैं, परन्तु पुराण-कथाओं में पाताल से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध वर्णित होने के कारण पाताल के साथ ही इनकी गणना की गई है।[1]

इस काण्ड के अन्तर्गत दिग्वर्ग, कालवर्ग, धीवर्ग, शब्दादिवर्ग तथा नाट्यवर्ग की स्थिति इन पदार्थों के प्रति कोषकार की ओर आपाततः तत्कालीन समाज की धारणा को स्पष्ट करती है। ऐसा प्रतीत होता है कि अन्तरिक्ष से सम्बद्ध होने के कारण दिग्वर्ग को इस काण्ड में सन्निहित किया गया होगा। काल का निर्धारण क्योंकि सूर्य, चन्द्र आदि दिक् ज्योतिष्पिण्डों के आधार पर होता है, इसलिए इसको भी यहाँ स्थान मिला, परन्तु धीवर्ग, शब्दादिवर्ग और नाट्यवर्ग द्वितीय काण्ड में मनुष्यवर्ग के साथ अधिक उपयुक्त होते। सम्भवतः अमरकोषकार की धारणा यह रही हो कि बुद्धि का सम्बन्ध देवगणों से अधिक है, जिनकी कृपा से यह मनुष्य को प्राप्त होती है। शब्द अनादि है और सम्भवतः इसी धारणा से कोषकार ने शब्दादिवर्ग का प्रारम्भ भाषा के पर्याय ब्राह्मी शब्द से किया है जिससे भाषा का ब्रह्म से उत्पन्न होना द्योतित होता है। इसी प्रकार नाट्यवर्ग को भी यहाँ इसलिए रक्खा गया होगा, क्योंकि नाट्यशास्त्र में नाट्य की उत्पत्ति का सम्बन्ध देवगणों से जोड़ा गया है।[2] अतः मोटे तौर पर कहा

---

१. स्वयं अमरकोषकार ने प्रथमकाण्ड के अन्त में काण्ड समाप्ति-श्लोक में अपनी इस परिपाटी का संकेत इन शब्दों में कर दिया है :—

उक्तं स्वर्व्योम-दिक्काल-धी-शब्दादि सनाट्यकम्।
पातालभोगि नरकं वारि चैषां च संगतम्॥ वर्गोपसंहार १।१।१०

इस श्लोक में 'एषां च संगतम्' इन शब्दों में कोषकार का अभिमत स्पष्ट हो जाता है।

२. भरत नाट्यशास्त्र के निम्नलिखित श्लोक से यह सुस्पष्ट होता है कि भगवान् ब्रह्मा से नाट्यवेद की उत्पत्ति हुई—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जा सकता है कि इस काण्ड में पृथ्वीतर लोकों का तथा अलौकिक वस्तुओं एवं अनुभूतियों का समाहार किया गया है।

द्वितीयकाण्ड के दस वर्गों का क्रम इस प्रकार है—(१) भूमि, (२) पुर, (३) शैल, (४) वनौषधि, (५) सिंहादि, (६) मनुष्य, (७) ब्रह्म, (८) क्षत्रिय, (९) वैश्य, (१०) शूद्र।

इस वर्गक्रम की आलोचना करते हुए श्री राजवाडे[1] ने कहा है कि भूमिवर्ग के पश्चात् पुरवर्ग को रखना तर्कसंगत नहीं है। इसके बाद तो शैलादि वर्ग को आना चाहिए था और पुरवर्ग को मनुष्यवर्ग के पहले रखना चाहिए था। श्री राजवाडे की आलोचना एक दृष्टि से सही हो सकती है, परन्तु हमें यह भी स्मरण रखना होगा कि कोषकार जिस क्रम से वर्गों का पौर्वापर्य रख रहा है उससे वह पदार्थों के महत्त्व के प्रति अपनी और अपने समाज की दृष्टि का परिचय दे रहा है। यदि महत्त्व की दृष्टि से देखें तो मनुष्य के लिए पृथ्वी पर पुर ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है, जिसमें वह निवास करता है। शैलादि से उसका इतना घनिष्ठ परिचय नहीं होता। इस दृष्टि से यदि अमरकोषकार ने भूमिवर्ग के बाद पुरवर्ग को रक्खा है तो इसमें अनौचित्य ही क्या है?

इसी प्रकार मनुष्यवर्ग की आलोचना करते हुए श्री राज़वाडे[2] का कहना है कि इस वर्ग को अनेक वर्गों में विभाजित करना उचित होता, क्योंकि यह वर्ग अनेक भिन्न जातीय पदार्थों का समाहार है। उनका सुझाव है कि इस वर्ग को ऐसे छोटे-छोटे वर्गों में बाँटना चाहिए था, जैसे कि स्त्रीवर्ग जिसमें स्त्रियों के भेद-प्रभेद, उनके वस्त्रों, अलंकारों इत्यादि से सम्बद्ध शब्द हों। दूसरा शरीरवर्ग, जिसमें शरीर से अङ्ग-प्रत्यंगों से सम्बन्धित शब्द संकलित हों। तीसरा व्याधिवर्ग, जिसमें व्याधियों तथा उनके उपचारों से सम्बद्ध शब्द हों तथा चौथा शरीर गुण-दोषवर्ग, जिसमें शारीरिक सौष्ठव और शारीरिक दोष सम्बन्धी शब्द संकलित हों।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि अमरकोषकार ने एक-एक वर्ग में जितनी सामग्री संकलित की है, उसको अनेक वर्गों में भी विभाजित किया जा सकता है और यह तो प्रत्येक कोषकार के अपने-अपने शिल्प की धारणा के अनुसार अनेक रूपों में सम्भव हो सकता है। अमरकोषकार ने प्रथम-काण्ड को १० वर्गों में बाँटा है और इससे एकरूपता स्थापित करने के लिए उसने द्वितीयकाण्ड को भी १० वर्गों में बाँटा

---

संकल्प्य भगवानेवं सर्वान् वेदाननुस्मरन्।
नाट्यवेदं ततश्चक्रे चतुर्वेदांगसम्भवम् ॥ (१।१६)

भरत नाट्यशास्त्र, मोतीलाल बनारसीदास से सन् १९६४ में प्रकाशित।

१. 'रिफ़लेक्शन्स ऑन दि [अमरकोष'—श्री वी० के० राजवाडे, एनल्स आफ़ दि भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना, वाल्यूम—६, १९२५ में प्रकाशित, द्रष्टव्य, पृ० ७५–८२।

२. ,, वही ,, ,,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होगा। इस अवयवसंगति में ही उसके शिल्प का सौष्ठव है और इस दृष्टि से उसका मनुष्यवर्ग के अन्तर्गत मनुष्यवर्ग से सम्बद्ध शारीरिक अलंकरण, गुणदोष इत्यादि सबको समाहित करना अनुचित नहीं कहा जा सकता। न ही सौन्दर्यबोधक शब्दों के साथ ही कुरूपताबोधक शब्दों को रखना अनुचित कहा जा सकता है, क्योंकि जहाँ किसी पदार्थ के साथ तत्सदृश पदार्थों की स्मृति जागती है, वहाँ तद्विपरीत पदार्थों का स्मरण हो आना भी सर्वथा स्वाभाविक है।

श्रीराजवाडे ने द्वितीय काण्ड के वर्गों में शब्दसयोजन की यह भी आलोचना की है कि अमरकोषकार ने सभी पशु-सम्बन्धी शब्दों को सिंहादिवर्ग में नहीं रक्खा है, अपितु कुछ पशुओं को क्षत्रियवैश्यशूद्रादि वर्गों में भी रख दिया है। उनके अनुसार ऐसा करना उचित नहीं था और औचित्य इसी में होता कि पशु-सम्बन्धी सभी शब्दों को सिंहादिवर्ग में रख दिया जाता, परन्तु इस सम्बन्ध में भी अमरकोषकार की शब्द-संयोजन प्रणाली की यह विशेषता ध्यान में रखनी होगी कि उन्होंने किसी पदार्थ से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध अन्य पदार्थों को उसी पदार्थ के साथ रख दिया है। इस दृष्टि से उन्होंने सिंहादिवर्ग में उन्हीं पशुओं के वाचक शब्द रक्खे हैं, जिनका सामान्यतः सभी मनुष्यों के साथ प्रायः एक-सा सम्बन्ध होता है। जैसे कि वनैले पशु तथा चूहा, बिल्ली, छिपकली इत्यादि। और जिन पशुओं का किसी वर्ग-विशेष के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है, जैसे कि हाथी-घोड़े का राजन्यवर्ग के साथ, गो, वृष, महिष इत्यादि पालतू पशुओं का वैश्यवर्ग के साथ तथा कुत्ता, पालतू सूअर इत्यादि का शूद्रवर्ग के साथ, उनके वाचक शब्दों को उस वर्ग-विशेष के साथ ही रख दिया गया है। शब्द-संयोजन की इस परिपाटी की ओर प्रथम काण्ड के वर्गक्रम की चर्चा करते हुए ऊपर पहले भी संकेत किया जा चुका है।

सामान्य काण्ड होने के कारण तृतीय काण्ड का परिसर पहले दो काण्डों की अपेक्षा आधा रक्खा गया है, और इस प्रकार इसमें कुल पाँच वर्ग इस क्रम से हैं—(१) विशेष्यनिघ्न, (२) संकीर्ण, (३) नानार्थ, (४) अव्यय तथा (५) लिंगादि-संग्रह वर्ग।

विशेष्यनिघ्नवर्ग नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें विशेष्य पर आश्रित पदों अर्थात् विशेषण पदों का संकलन है। संकीर्णवर्ग में प्रत्ययों द्वारा किसी विशिष्ट अर्थ में निर्मित शब्द एकत्र किए गए हैं। नानार्थवर्ग में एक-एक शब्द के अनेकार्थ प्रस्तुत किए गए हैं। अव्ययवर्ग में अव्यय पदों का संकलन है और लिंगादि-संग्रहवर्ग में लिंग के अनुसार शब्दों का वर्गीकरण किया गया है।

इस काण्ड की आलोचना करते हुए श्री राजवाड़े ने कहा है कि कोष का नाम 'नामलिंगानुशासनम्' होने पर भी कोषकार ने अव्ययपदों को इसमें सम्मिलित किया है, यह उचित नहीं है। परन्तु आगे चलकर स्वयं श्री राजवाड़े ने यह स्वीकार किया है कि अमरकोषकार ने पाणिनि का अनुसरण करते हुए ऐसा किया होगा। जैसा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कि भूमिका में भी कहा जा चुका है, अमरकोषकार पर पाणिनि का अत्यधिक प्रभाव है। इसलिए यदि पाणिनि का अनुसरण करते हुए कोषकार ने अव्ययपदों को अपने कोष में स्थान दिया हैं तो इसे अनुचित नहीं कहा जा सकता।

अमरकोष की शब्द-योजना के इस विश्लेषण से स्पष्ट है कि अमरकोषकार ने काण्डों और वर्गों के विभाग में शब्दों के वर्णादिक्रम को न अपनाकर शब्दों के अर्थों का आधार ग्रहण किया है।

वर्गों में शब्द-योजना पर ध्यान देने पर निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण तथ्य सामने आते हैं—

## स्वर्गवर्ग

इस वर्ग में स्वर्ग और देव के पर्यायवाची देने के बाद गणदेवताओं और देवयोनियों के नाम गिनाये गए हैं। तत्पश्चात् असुर के पर्यायवाची देकर तथागत बुद्ध के अनेक नाम दिए गये हैं। बुद्ध के पश्चात् अन्य देवगणों की बारी आती है। देव के पर्यायवाची शब्दों में सुर शब्द ध्यान देने योग्य है। वैदिक वाङ्मय में यह शब्द नहीं मिलता। इस शब्द का जन्म असुर शब्द के भ्रान्त विश्लेषण से हुआ प्रतीत होता है। वेद में 'असुर' शब्द का निर्वचन वस्तुतः असु+र—अर्थात् प्राणयुक्त, बलवान् होता है। परवर्ती काल में अ को नञर्थक मानकर असुर का विश्लेषण अ+सुर इस प्रकार किया गया होगा, जिसके कारण 'सुर' शब्द की स्थिति भी माननी पड़ी।[1] ऋग्वेद संहिता में असुर शब्द अग्नि, इन्द्र, वरुण आदि देवों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस शब्द के अर्थ-परिवर्तन पर आगे यथास्थान विचार किया जायगा। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि असुर के पर्यायवाची शब्दों में 'पूर्वदेवः' दिया गया है, जिससे इस तथ्य की ओर संकेत मिलता है कि जिन्हे बाद में असुर माना गया वे पुराकाल में देव ही थे। क्या इससे असुर शब्द का ऋक्-संहिता में देवों के विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने का संकेत नहीं मिलता है?

देवगणों का नाम गिनाने से पहले बुद्ध के नामों की परिगणना से विद्वानों ने अमरसिंह का बौद्ध होना निश्चित किया है। बुद्ध को सर्वप्रथम स्थान देने से कोषकार का तथागत के प्रति आदरातिशय द्योतित होता है, इसमें तो कोई सन्देह नहीं

---

१. इस प्रसंग में वृहदारण्यक उपनिषद् के अध्याय १ ब्राह्मण ३ में आए हुए 'द्वया ह प्राजापत्या देवाश्चासुराश्च' इस वाक्य पर शांकरभाष्य की यह पंक्तियाँ रोचक हैं—कथं पुनस्तेषां देवासुरत्वम्? उच्यते शास्त्रजनितज्ञानकर्मभाविता द्योतनाद्देवा भवन्ति। त एव स्वाभाविकप्रत्यक्षानुमानजनितदृष्टप्रयोजनकर्मज्ञानभाविता असुराः। स्वेष्वेवासुषु रमणात् सुरेभ्यो वा देवेभ्योऽन्यत्वात्।

इस व्याख्या में आचार्य शंकर 'असुर' शब्द की दो व्युत्पत्तियाँ दे रहे हैं—

(१) असु+र।

(२) अ+सुर।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। परन्तु केवल इसी तथ्य के आधार पर अमरसिंह के बौद्ध होने का निश्चय करना समीचीन नहीं जान पड़ता। यदि अमरसिंह बौद्ध होते तो निश्चित ही अपने कोष में बौद्धसंघ के अनेकानेक पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ बौद्धदर्शन आदि के शब्दों को भी पर्याप्त संख्या में सन्निविष्ट करते। परन्तु अमरकोष में ऐसा नहीं है। अतः बुद्ध का नाम लेने से कोषकार के समय की उस स्थिति पर प्रकाश पड़ता है, जिसमें कि बुद्ध भी हिन्दूमात्र के पूज्य बन चुके थे। सन्निकृष्टकालीन होने के कारण सम्भवतः अमरकोषकार ने उनको पहले स्थान दे दिया।

इसके बाद देवगणों के नाम जिस क्रम से और जितने दिए गए हैं, उससे इतना तो स्पष्ट द्योतित होता है कि वैदिक देवगणों का स्थान बहुत गौण हो गया है। वैदिक देवों में से केवल विष्णु, रुद्र, इन्द्र, अश्विनीकुमार, अग्नि, यम, वरुण, वायु के पर्यायवाची दिए गए हैं। इनमें से विष्णु और रुद्र को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है। वैदिक देवगणों में विष्णु सूर्य की त्रिविध गतियों के प्रतीक हैं। यहाँ सूर्य को देवगणों में स्थान नहीं मिला है। सूर्य के अन्य विविध रूप सविता, पूषा, मित्र आदि का तो नाम ही नहीं है। इन्द्र और अग्नि जो ऋग्वेदसंहिता में देवगणों में सर्वप्रधान थे, यहाँ गौण स्थिति में हैं। इन्द्र का यहाँ जो रूप प्रकट होता है, वह वैदिक की अपेक्षा पौराणिक अधिक है, क्योंकि यहाँ इन्द्राणी, अमरावती, नगरी, इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा, उसके सूत मातलि, उसके प्रासाद वैजयन्त, उसके हाथी ऐरावत, कृष्णादि का उल्लेख इस बात की पुष्टि करता है। यही बात विष्णु के बारे में भी है। यहाँ विष्णु का वैदिक रूप लुप्त हो गया है और पौराणिक रूप स्फुट हुआ है।

इनके अतिरिक्त ब्राह्मी इत्यादि माताओं, अणिमादि सिद्धियों, पार्वती के विविध नामों, गणेश, कार्तिकेय, स्वर्गंगा, मेरुपर्वत, देवतरु, सनत्कुमार, अप्सराएँ, गन्धर्व, किन्नर, यमुना, कुबेर तथा उसके स्थान कैलास के पर्यायवाची गिनाने से अमरकोषकार की दृष्टि में इनका महत्त्व जो कि तत्कालीन समाज में इनकी प्रतिष्ठा द्योतित करता है, स्पष्ट सिद्ध हो जाता है। स्वर्गवर्ग के आधार पर यह निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि इसमें पौराणिक धर्म का और वह भी उसकी प्रारम्भिक स्थिति का चित्र उपलब्ध होता है।

स्वर्गवर्ग में त्वरा, वेग, नित्य तथा अतिशय—इन शब्दों के पर्यायवाची सन्निहित किए जाने के औचित्य पर प्रश्न किया जा सकता है। परन्तु इस प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि वेग और त्वरा शब्द वायु के बाद आए हैं और वायु के साथ इनका घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण अमरकोषकार ने इनके पर्यायवाची यहीं गिना देना उचित समझा होगा। इसी प्रकार देवगणों की नित्यता तथा उनके ऐश्वर्य की अतिशयता के कारण नित्य और अतिशय शब्दों के पर्याय भी यहाँ दिए गए होंगे।

## व्योमवर्ग

स्वर्गवर्ग के बाद व्योमवर्ग लिया गया है, जिसमें केवल व्योमवाची १६ शब्द दिए

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गए हैं। ये १६ पद एक पूरे श्लोक तथा एक श्लोकार्ध में संगृहीत किये गए हैं। इससे सन्देह उत्पन्न होता है कि क्या यहाँ कुछ पाठ खंडित तो नहीं हो गया, क्योंकि जैसा कि स्वाभाविक है, कोपकार ने प्रत्येक वर्ग को एक इकाई मानकर उसकी समाप्ति पूरे श्लोक में ही की होगी। यह प्रश्न अमरकोष के पाठालोचन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

## दिग्वर्ग

व्योमवर्ग के बाद दिग्वर्ग है, जिससे दिशावाची शब्दों के अनन्तर दिशापतियों, दिग्गजों तथा दिक्करिणियों के नाम गिनाकर मेघ, विद्युत् और इन्द्रधनु के पर्यायवाची शब्द देकर वृष्टि और तत्सम्बद्ध शब्दों को देकर चन्द्रमा के पर्यायवाची दिए हैं। चन्द्रमा से सम्बद्ध कला विश्वचन्द्रिका, प्रसाद, लांछन, सुषमा, तुषार, शीत नाम गिनाए गए हैं और तब वृहस्पति, शुक्र, मंगल, बुध, शनि और राहु के पर्यायवाची दिए हैं। इसके बाद लग्न की परिभाषा देकर राशियों के लिए केवल 'मेषवृषादयः' कह दिया गया है। आश्चर्य की बात है कि ग्रहों में प्रधान सूर्य के पर्यायवाची इन सबके बाद में दिए गए हैं। सूर्य के पर्यायवाचियों के बाद अरुण, सूर्यमंडल, किरण, प्रभा, प्रकाश मन्दोष्ण, तीक्ष्ण और मरीचिका, इनके पर्यायवाची दिए हैं, जो सूर्य के प्रसंग में यथास्थान लगते हैं।

व्योमवर्ग और दिग्वर्ग को देखकर प्रश्न उठता है कि व्योमचारी चन्द्रसूर्यादि ज्योतिर्पिण्डों की गणना व्योमवर्ग में ही क्यों न की गई? वस्तुतः चन्द्र, सूर्य, ग्रहनक्षत्रादि को व्योमवर्ग में ही होना चाहिए था। यदि दिग्वर्ग में से 'अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्बलाहकः—'यहाँ से जहाँ से कि मेघादि गगनचारी पदार्थों की गणना शुरू होती है, प्रारम्भ कर दिग्वर्ग के अन्त तक का अंश व्योमवर्ग में मिला दिया जाय तो विषय-संयोजन की दृष्टि से व्योमवर्ग पूर्ण हो जाता है और व्योमवर्ग के श्लोकार्ध की समस्या भी हल हो जाती है, क्योंकि इस अंश में कुल २९॥ श्लोक हैं जो व्योमवर्ग के २॥ श्लोकों से मिलकर पूर्ण ३२ श्लोक बना देते हैं। परन्तु ऐसी कल्पना करने पर फिर दिग्वर्ग के लिए केवल ५॥ श्लोक बच रहते हैं। इस प्रकार श्लोकार्ध की समस्या तब दिग्वर्ग में उपस्थित हो जायगी। कोषकार अमरसिंह ने क्या स्थिति अपनायी थी, इसका अन्तिम निर्णय तो पाठालोचन से ही सम्भव हो सकता है। परन्तु जहाँ तक सूर्यचन्द्रादि ग्रहों को व्योमवर्ग में न रखकर दिग्वर्ग में रखने के औचित्य का प्रश्न है, उसके विषय में ऐसा प्रतीत होता है कि अमरकोषकार ने ज्योतिषशास्त्र के प्रभाव से ऐसा किया होगा। ज्योतिष में ग्रहों को विभिन्न दिशाओं का स्वामी माना गया है। अतः दिग्पति होने के कारण उनका सन्निवेश दिग्वर्ग में ज्योतिष की दृष्टि से सर्वथा उचित है।

ग्रहों के क्रम में सूर्य को सबसे अन्त में स्थान देना एक और जटिल प्रश्न है। यदि यों कल्पना करें कि अमरसिंह ब्राह्मण धर्म से बहुत प्रभावित थे, अतः ब्राह्मणों की इस उक्ति का ध्यान रखते हुए कि 'सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा—' उन्होंने ग्रहों में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चन्द्रमा को ही सबसे पहले स्थान दिया, तब भी इसी आधार पर सूर्य को क्षत्रियों से सम्बद्ध करते हुए उन्हें चन्द्र के बाद ही सूर्य के पर्यायवाची देने चाहिए थे। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया, अपितु सूर्य को राहु के भी काफी बाद स्थान दिया है। क्रम के इस विपर्यय में क्या हेतु हो सकता है, इसके समाधान के लिए भी पाठालोचन आवश्यक है।

## कालवर्ग

इस वर्ग में काल के विविध खण्डों से सम्बद्ध शब्दों के पर्याय देकर कोषकार ने पाप, पुण्य, हर्ष, कल्याण, प्रशस्तवाचक शब्द, भाग्य के पर्यायवाची भी गिना दिए हैं और इनके बाद कारण तथा इसी से सम्बद्ध आदि कारण का पर्यायवाची 'निदान' शब्द देकर पुरुष, प्रकृति, तीन गुण, जन्म तथा मन के पर्यायवाची भी दे दिए हैं। अमरकोष के प्रणेता की यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि किसी वस्तु से घनिष्ठरूप से सम्बद्ध जो गौण शब्द हैं, उनको भी वे उसी के साथ गिना देते हैं। अतः काल के प्रसंग में ये कारण आदि पदार्थ भी सन्निहित कर दिए गए हैं।

कालवर्ग को मन के पर्यायवाची देने से समाप्त कर कोषकार ने इनमें धीवर्ग के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया है। इस वर्ग में बुद्धि के बाद अन्य इन्द्रियों और उनके विषयों से सम्बद्ध शब्दों के पर्यायवाची दिए हुए हैं। धीवर्ग के बाद शब्दवर्ग और नाट्यवर्ग की स्थिति सर्वथा तर्कसंगत प्रतीत होती है। नाट्यवर्ग तक स्वर्ग और स्वर्ग से संगतार्थ विषयों का निरूपण पूर्ण हो जाता है। जैसे स्वर्ग पृथ्वी के ऊपर है, वैसे ही पृथ्वी के नीचे पाताललोक की कल्पना की गयी है, जो सर्पों का निवास-स्थान है। अतः नाट्यवर्ग के बाद पातालभोगि वर्ग की स्थिति क्रमप्राप्त है। जैसे स्वर्ग देवताओं तथा पुण्यात्माओं का स्थान है, वैसे ही नरक की कल्पना इसके बिलकुल दूसरे छोर के रूप में राक्षसों और पापात्माओं के रूप में की गई है। अतः पातालभोगि-वर्ग के बाद नरकवर्ग को स्थान दिया गया है।

प्रथम काण्ड के अन्त में वारिवर्ग को रक्खा गया है। प्रथम काण्ड के संयोजन का आधार पृथ्वीतर लोक होने के कारण जलों का आगार समुद्र भी इसी काण्ड का विषय बनता है और इसीलिए अमरकोषकार ने वारिवर्ग में सबसे पहले समुद्र के पर्यायवाची देकर अपने काण्डविभाजन के आधार की रक्षा की है, इसके साथ ही वारि के अन्य आश्रय कूप, नदी इत्यादि का भी इसी में परिगणन कर दिया है, जो वस्तुतः पृथ्वीतर पदार्थ नहीं है और इस प्रकार वारिवर्ग को दूसरे काण्ड में जिसमें कि पृथ्वी-सम्बद्ध पदार्थों को स्थान दिया गया है, प्रवेश करने के लिए गलियारे के रूप में संयोजित किया गया है।

द्वितीय काण्ड के पहले वर्ग से भूमिवर्ग में भूमि, मृत्तिका तथा उसके भेद, भूमि के भेद, भारत देश तथा उसके प्रदेश, जनपद, देश और उसके विभिन्न प्रकार, सेतु मार्ग तथा मार्गों के प्रकार, कान्तार तथा भूमि नापने के पैमाने परिगणित हैं। इस वर्ग

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में विशेष ध्यान देने की बात यह है कि भारतवर्ष के विभाग दिखाते हुए प्राच्य, उदीच्य और मध्यदेश का उल्लेख कर हिमालय और विन्ध्य के बीच आर्यावर्त की स्थिति बताई है। इसके साथ ही कोषकार ने म्लेच्छदेश का भी नाम लिया है, जो इसका अत्यन्त ( अर्थात् सीमावर्ती ) देश है, परन्तु कोषकार ने दक्षिणापथ अथवा दक्षिणावर्त का नाम तक नहीं लिया। इससे कोषकार का केवल आर्यावर्त तक अपने को सीमित रखना और इसी के सामाजिक, सांस्कृतिक जीवन से सम्बद्ध शब्दों तक अपने को सीमित रखना लक्षित होता है।

इस काण्ड के दूसरे वर्ग पुरवर्ग में नगर और उसके भेद, बाजार, नगर की सड़कों, चहारदीवारियों, भित्तियों, गृह और उसके प्रकारों, गवाक्ष, मण्डप, अलिन्द, देहली, शिला, नासा, विभिन्न द्वार, तोरण, गोपुर, अर्गल, सोपान आदि के पर्यायवाची देकर झाड़ू और कूड़े के भी पर्याय दे दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त सीमावाची शब्द तथा आभीर और शबरों के ग्रामों का भी उल्लेख किया गया है। इस वर्ग में केवल २० श्लोक हैं। पुर सम्बन्धी संकलित शब्दराशि अपर्याप्त प्रतीत होती है।

अगले शैलवर्ग में पर्वत और पर्वत से सम्बद्ध पदार्थों की गणना है, जिनसे पर्वत के शिखरों का मध्यभाग, पर्वत में सम भूभाग; पर्वत का निचला और ऊपर का भाग, पाषाण, प्रपात, खनि, धातु, गुहा और कुंज पर्याय भी संकलित है। पर्वतों में केवल हिमवान्, निषध; विन्ध्य, माल्यवान्, पारियात्रक, गन्धमादन और हेमकूट का नाम गिनाया गया है। इसके आगे का वनौषधिवर्ग अमरकोष का सर्वाधिक समृद्ध वर्ग है। इसमें कुल १९६।। श्लोक हैं। व्योमवर्ग के समान यहाँ भी श्लोकार्ध की समस्या विद्यमान है, परन्तु इस पूरे काण्ड को देखने से यहाँ श्लोकार्ध की समस्या हल हो जाती है, क्योंकि पूरे काण्ड में कुल मिलाकर पूरे ७३४ श्लोक हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि कोषकार में यह आग्रह नहीं है कि एक वर्ग के अन्तर्गत श्लोकार्ध न आने पाये। इस वर्ग के वन और उसके भेद-प्रभेद, उद्यान और उसके प्रकार, वृक्ष, लता और इनके अंगोपांग तथा फलों-पुष्पों, वनौषधियों आदि का विस्तृत संकलन है। इस वर्ग में शब्द-राशि की समृद्धि बहुत कुछ आयुर्वेद की विकसित स्थिति का परिणाम प्रतीत होती है।

सिंहादिवर्ग में सिंह, व्याघ्र, भल्लूक, गण्डकादि हिंस्र पशुओं से प्रारम्भ करके सामान्य मृग और कृष्णसारादि मृगभेद के लिए शब्द संगृहीत हैं। दूसरी ओर विडाल, मूषक, मर्कटक ( मकड़ी ), गृहगोधिका ( छिपकली ) आदि के शब्द दिए गए हैं। पक्षियों, कृमिकीटों तथा पतंगों के उल्लेख के बाद पक्षियों के पंख, उनकी गति, उनके अण्डे तथा नीड़ आदि के लिए शब्द परिगणित हैं। वर्ग का अन्त पशु तथा पक्षियों के संघातों तथा दो प्रकार के पक्षियों के द्वन्द्व-समासों तथा पालतू पशु-पक्षियों के पर्यायों से किया गया है।

छठे मनुष्यवर्ग में मनुष्य और स्त्रियों के पर्याय गिनाकर विभिन्न प्रकार की स्त्रियों के लिए शब्द परिगणित किए गए हैं। इसी वर्ग में विभिन्न पारिवारिक सम्बन्धों, शरीरविकार, विभिन्न रोगों, शरीर के विभिन्न अंगों तथा मनुष्यों के वस्त्राभूषण तथा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सज्जा से सम्बन्धित शब्द पर्याय परिगणित हैं। वर्गान्त में शय्या, खट्वा, दीप, दर्पण तथा व्यंजन इत्यादि आवश्यक पदार्थों के लिए भी शब्द गिनाए गए हैं।

ब्रह्मवर्ग में वंश और वर्ण के पर्याय परिगणित करके चातुर्वर्ण्य का उल्लेख किया गया है। अनन्तर यक्ष तथा उससे सम्बद्ध व्यक्तियों तथा पदार्थों के लिए विस्तृत शब्दसंकलन किया गया है। आतिथ्य, यम-नियम, व्रत तथा उपासना के लिए भी शब्द इसी वर्ग में परिगणित हैं। वर्गान्त में विवाह तथा मैथुन आदि के लिए भी शब्द पठित है।

क्षत्रियवर्ग में क्षत्रियों के पर्याय गिनाकर विभिन्न प्रकार के राजाओं तथा राज-परिवार के सदस्यों के लिए शब्दों का परिगणन हुआ है। शत्रु, मित्र, राज्यांगों, नीति, शक्ति, राजचिह्न, सेना तथा विशेष रूप से हस्त्यश्व से सम्बन्धित शब्द इस वर्ग के विषय हैं। युद्ध, विविध आयुध, विजय-पराजय, वध, मरण, श्मशान, शव आदि से सम्बद्ध शब्दों के परिगणन के साथ वर्ग की समाप्ति की गई है।

वैश्यवर्ग में वैश्य के पर्याय देकर वैश्यों की तीन वृत्तियों—कृषि, पशुपालन तथा व्यापार के लिए शब्द दिए गए हैं। याचित को 'मृत' तथा अयाचित को 'अमृत' कहा गया है। कृषि से सम्बद्ध संकलित शब्दराशि अपर्याप्त जान पड़ती है। इसी वर्ग में घर में प्रयोग होने वाले मुसल, उलूखलादि सामान्य उपकरणों, भोजन तथा पेय से सम्बद्ध पदार्थों व उपकरणों के लिए शब्दों का भी उल्लेख है। वर्गान्त में पालतू पशुओं तथा व्यापार-वाणिज्य से सम्बन्धित पदार्थों के लिए विस्तृत शब्दराशि का संकलन मिलता है।

अन्तिम शूद्रवर्ग में शूद्र के पर्याय परिगणित करके विभिन्न शूद्र प्रकारों का उल्लेख मिलता है। शूद्रों की जीविका के अनुसार विभिन्न भेद करके शूद्रों से सम्बद्ध निम्न कोटि के पशुओं के लिए शब्द परिगणित किए गए हैं। विभिन्न छोटे उद्योगों के उल्लेख के साथ ही इस वर्ग के अन्त में मद्य, द्यूत, पण, अक्ष इत्यादि के पर्यायों का परि-गणन भी मिलता है। पहले काण्ड की अपेक्षा द्वितीय काण्ड के वर्ग अधिक विस्तृत शब्दराशि प्रस्तुत करते हैं और आकार में बड़े हैं।

तृतीय सामान्य कांड के प्रथम वर्ग विशेष्यनिघ्नवर्ग में विभिन्न विशेषण पद पर्यायशैली में परिगणित हैं।

अगले संकीर्णवर्ग में भी पर्यायशैली में संकीर्ण अर्थ और संकीर्ण लिंग के आधार पर शब्द संकलित हैं। यहाँ लिंगज्ञान शब्द के प्रकृति-प्रत्यय इत्यादि के आधार पर होता है।

नानार्थवर्ग में क्रमशः व्यंजनान्त कान्त, खान्त, गान्तादि वर्गों में एक ही शब्द के अनेकार्थ प्रस्तुत किए गए हैं। नानार्थ शब्दों में से कुछ रूप पूर्वपठित पर्यायों में आ भी चुके हैं। नानार्थवर्ग के अन्त में नानार्थ अव्यय भी संगृहीत हैं। यह वर्ग सामान्य-काण्ड का सबसे बड़ा वर्ग है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अव्ययवर्ग में भी विभिन्न अव्ययपद अर्थ की दृष्टि से पर्यायशैली में संगृहीत हैं। सामान्यकाण्ड के अन्तिम वर्ग लिंगादिसंग्रहवर्ग में शब्दों का संकलन अर्थ की दृष्टि से न होकर केवल लिंग की दृष्टि से किया गया है। इसमें पुंल्लिग, स्त्रीलिंग, नपुंसकलिंग, स्त्रीपुंल्लिग, पुन्नपुंसकलिंग तथा स्त्रीनपुंसकलिंग और त्रिलिंग शीर्षकों के अन्तर्गत लिंग के नियम बताते हुए विभिन्न शब्द परिगणित हैं। यह अन्तिम वर्ग लिंगानुशासन कोषों से प्रभावित प्रतीत होता है और अमरकोष के 'नामलिंगानुशासनम्' संज्ञा की सार्थकता सिद्ध करता है।

## पर्याय-योजना

शब्द, अर्थ तथा इनसे सम्बद्ध अन्य विषयों को प्रस्तुत करने की कोषकार की क्षमता ही उसके कोष की उपादेयता का परिचय देती है। वास्तव में कोषकार की मौलिकता एवं नवीनता तथा कोष की उपयोगिता का आधार उसकी शब्द-योजना प्रणाली ही है।[1]

शब्द-संयोजन की दृष्टि से अमरकोष मुख्यतः एक 'पर्यायकोष' है। यद्यपि प्रयोग की दृष्टि से दो पर्यायों का एक स्थान पर प्रयोग नहीं हो सकता,[2] फिर भी एक ही क्रम में आए हुए एक ही अर्थ के वाचक शब्दों (पर्यायों) में[3] एक या अधिक गुणों का साम्य होता है। पर्यायों में आधारभूत इस साम्य के साथ ही कुछ विशेषता भी अवश्य मिलती है। इसी विशेषता या दो पर्यायों में भिन्नता का विश्लेषण करना निरुक्तिकार का कार्य होता है। साहित्यिक का दृष्टिकोण इससे भिन्न और पर्याय-संश्लेषण का होता है। यही कारण है कि साहित्य का सम्बन्ध कोष से तथा कोष का सम्बन्ध साहित्य के शब्दों के संकलन से होता है।

अमरकोष में संकलित पर्यायों को मुख्यरूपेण तीन वर्गों में बाँट सकते हैं—

(१) निश्चित या शुद्ध पर्याय,

(२) आंशिक पर्याय या पर्यायाभास तथा

(३) अनिश्चित या अस्पष्ट पर्याय।

## (१) निश्चित या शुद्ध पर्याय

इस वर्ग में बहुप्रचलित तथा रूढ़ पर्यायों को रखा जा सकता है। इनमें सामान्यतः यदि एक पर्याय के स्थान पर दूसरे को रख दिया जाय तो मूलभाव को विशेष हानि नहीं पहुँचेगी। सम्बद्ध अर्थ पर्याय-संग्रह में से किसी एक से भी द्योतित हो सकेगा। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

१. मोनियर विलियम्स : 'ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी', भूमिका, पृ०५।
२. भोलानाथ तिवारी : 'पर्यायवाची कोष', भूमिका, पृ० ७।
३. 'क्रमेणैकार्थवाचकाः शब्दाः पर्यायाः', शब्दकल्पद्रुम, खण्ड ३, भाग १।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कामदेव के पर्याय—

'मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः ।
कंदर्पो दर्पकोऽनंगः कामः पंचशरः स्मरः ॥
शम्बरारिः मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः ।
पुष्पधन्वा रतिपतिर्मकरध्वज आत्मभूः' ॥ अमर० १।१।२५–२६

लक्ष्मी के पर्याय—'लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीर्हरिप्रिया' । १।१।२७

शिव के पर्याय—'शंभुरीशः पशुपतिः शिवः शूली महेश्वरः ।
ईश्वरः शर्व ईशानः शंकरश्चन्द्रशेखरः ॥
भूतेशः, खण्डपरशुर्गिरीशो गिरिशो मृडः ।
मृत्युंजयः कृत्तिवासाः पिनाकी प्रमथाधिपः ॥
उग्रः कपर्दी श्रीकण्ठः शितिकण्ठः कपालभृत् ।
वामदेवो महादेवो विरूपाक्षस्त्रिलोचनः ॥
कृशानुरेताः सर्वज्ञो धूर्जटिर्नीललोहितः ।
हरः स्मरहरो भर्गस्त्रयम्बकस्त्रिपुरान्तकः ॥
गंगाधरोऽन्धकरिपुः क्रतुध्वंसी वृषध्वजः ।
व्योमकेशो भवो भीमः स्थाणूरुद्र उमापतिः' ॥
अमर० १।१।३०–३४

मेघ के पर्याय—'अभ्रं मेघो वारिवाहः स्तनयित्नुर्बलाहकः ।
धाराधरो जलधरस्तडित्वान् नीरदोऽम्बुभृत् ॥
घनजीमूतमुदिरजलमुग्धूमयोनयः' । अमर० १।३।६–७

अन्धकार के पर्याय—

'अंधकारो स्त्रियां ध्वान्तं तमिस्त्रं तिमिरं तमः' । अमर० १।८।३

समुद्र के पर्याय–'समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः ।
उदन्वानुदधिः सिन्धुः सरस्वान् सागरोऽर्णवः ॥
रत्नाकरो जलनिधिर्यादःपतिरपांपतिः' । अमर० १।१०।१-२

भूमि के पर्याय—

'भूर्भूमिरचलानन्ता रसा विश्वंभरा स्थिरा ।
धरा धरित्री धरणिः क्षोणिर्ज्या काश्यपी क्षितिः ॥
सर्वंसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुंधरा ।
गोत्रा कुः पृथ्वी पृथिवी क्ष्माऽवनिर्मेदिनी मही' ॥
अमर० २।१।२-३

इसी प्रकार अन्य भी समझना चाहिए ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## (२) आंशिक पर्याय का पर्यायाभास

इस वर्ग में ऐसे पर्याय रखे जा सकते हैं जिन्हें शुद्धरूप से पर्याय नहीं कहा जा सकता है। रूढ़ शैली में किसी शब्द-विशेष के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं, परन्तु सामान्य-रूप से किसी अन्य शब्द के लिए भी ये पर्याय कहला सकते हैं। इस तरह के आंशिक पर्यायों को भी दो विभागों में बाँटा जा सकता है—( १ ) रूढ़ प्रयोग तथा ( २ ) ऐसे पर्याय जिनमें से मूलशब्द को गुण-विशेष के आधार पर सामान्य से विशिष्ट या विशिष्ट से सामान्य का बोध होता हो। क्रमशः उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

( १ ) पहले प्रकार में 'ब्रह्मा' के लिए प्रयुक्त

ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः।
हिरण्यधर्मा लोकेशः स्वयंभूश्चतुराननः॥
धाताब्जयोनिर्द्रुहिणो विरिंचिः कमलासनः।
स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विष्वसृड् विधिः॥

अमर० १।१।१६–१७

विष्णु के पर्याय—

दामोदरो हृषीकेशः केशवो माधवः स्वभूः।
दैत्यारिः पुण्डरीकाक्षो गोविन्दो गरुडध्वजः॥
पीताम्बरोऽच्युतः शार्ङ्गी विष्वक्सेनो जनार्दनः।
उपेन्द्र इन्द्रावरजश्चक्रपाणिश्चतुर्भुजः॥
पद्मनाभो मधुरिपुर्वासुदेवस्त्रिविक्रमः।

अमर० १।१।१८-२०

तथा श्रीपति, पुरुषोत्तम इत्यादि भी समझने चाहिए। इसी प्रकार बलराम के लिए 'सीरपाणिः कालिन्दीभेदनो बलः' तथा कामदेव के लिए 'कुसुमेषु मकरध्वज और पुष्पधन्वा' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। 'शूली चन्द्रशेखर भूतेश' तथा 'कपालभृत्' जैसे शब्द महेश्वर शिव के लिए रूढ़ मिलते हैं। गणेश के लिए परिगणित 'विनायक, विघ्नराज, एकदन्त, लम्बोदर तथा गजानन' जैसे पर्याय सर्वप्रचलित और ख्यात ही हैं।

( २ ) इस कोटि में 'आत्मभू' शब्द को रक्खा जा सकता है, जिसको स्वर्गवर्ग में कामदेव तथा ब्रह्मा के लिए प्रयुक्त किया गया है। ब्रह्मा के लिए एक अन्य पर्याय स्वयंभू विष्णु के पर्यायों में भी 'स्वयंभू' शब्द परिगणित है। इन तीनों का आधार एक ही समझा जा सकता है—'स्वयं उत्पन्न होना।' देवताओं के पर्यायों में 'अमर निर्जर' शब्द भी सामान्य से विशेष 'देवता' का बोध कराते हैं। कामदेव के लिए 'मारजित्' तथा बुद्ध के लिए 'धर्मराज' पर्याय का प्रयोग भी इसी वर्ग में रक्खा जा सकता है। असुरों के पर्यायों में 'पूर्वदेवाः' पर्याय-विशेष से सामान्य असुर का बोध कराता है। लरबाम के लिए प्रयुक्त 'अच्युताग्रज' 'रेवतीरमण' तथा 'रोहिणेय' पर्याय तथा कामदेव

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के लिए प्रयुक्त 'रतिपति' पर्याय भी इसी कोटि में समझे जाने चाहिए। इसी प्रकार ब्रह्मा के लिए 'पितामह' 'विधाता' 'स्रष्टा', 'विधि', शंकर के लिए 'ईशः', 'महेश्वरः', 'महादेव', 'शर्व' तथा पार्वती के लिए 'शिवा' ईश्वरी, 'रुद्राणी' आदि पर्याय प्रयुक्त हुए हैं।

## ( ३ ) अनिश्चत या अस्पष्ट पर्याय

इस विभाग के अन्तर्गत ऐसे पर्याय प्रस्तुत किए गए हैं, जो एक से अधिक शब्दों के लिए प्रयुक्त हो सकते हैं, अतः अनिश्चित होते हैं। इसके अन्तर्गत कमल का पर्याय 'पंकज' ( पंक में उत्पन्न ) तथा जल का पर्याय 'कमलम्' रक्खा जा सकता है। मेघ के पर्यायों में वारिवाहः, जलधरः, वारिदः, तथा 'अम्बुभृत्' एवं पृथ्वी के पर्यायों में अचला, अनन्ता, रसा, विश्वंभरा, स्थिता, सर्वसहा तथा वसुन्धरा, समुद्र के पर्यायों में उदन्वान्, उदधिः, रत्नाकरः जलनिधिः तथा अपांपतिः ऐसे ही अस्पष्ट पर्याय हैं जो अन्यान्य विशेष्यों के विशेषणरूप में प्रयुक्त हो सकते हैं।

ऐसे ही विशेषणों में भीमः, उग्रः, स्थाणु (शिव ), सुमनस् (देवता), सर्वज्ञः ( शिव, बुद्ध ), अच्युतः ( विष्णु ), बलः ( बलराम ), कामः ( कामदेव ), हरः ( शिव ) कुमार ( स्कन्द ), जवनः ( अश्व ) जीवनम् सर्वतोमुखम् तथा भुवनम् ( जल ) इत्यादि आते हैं।

पर्यायों के इन तीन मुख्य भेदों के अतिरिक्त अमरकोष में कहीं-कहीं किसी एक संज्ञा में अन्तर्भूत विभिन्न पदार्थों की गणना भी कर दी गयी है।
उदाहरण के लिए स्वर्गवर्ग में ही देवताओं के पर्याय गिनाकर

आदित्यविश्ववसवस्तुषिताभास्वरानिलाः।
महाराजिकसाध्याश्च रुद्राश्च गणदेवताः ॥ अमर० १।१।१०

इनमें ९ गणदेवताओं का नाम परिगणन हुआ है। इसी प्रकार १० प्रकार की देवयोनियों का भी परिगणन स्वर्गवर्ग में हुआ है—

विद्याधराप्सरोयक्षरक्षोगन्धर्वकिन्नराः।
पिशाचो गुह्यकः सिद्धो भूतोऽमी देवयोनयः ॥ अमर० १।१।११

विभिन्न देवों से सम्बद्ध उनके शस्त्र, अलंकरणादि का तो उल्लेख हुआ ही है, केवल नाम परिगणन के भी उल्लेख मिल जाते हैं—

पंचैते देवतरवो मन्दारः पारिजातकः।
संतानः कल्पवृक्षश्च पुंसि वा हरिचन्दनम् ॥ अमर० १।१।५०

यहाँ पर ५ देवताओं का नामोल्लेखमात्र हुआ है। पातालभोगि वर्ग का निम्न स्थल भी द्रष्टव्य है, जिसमें ९ स्थावर विषभेद इस प्रकार वर्णित हैं—

काकोलकालकूटहलाहलाः।
सौराष्ट्रिकः शौल्किकेयो ब्रह्मपुत्रः प्रदीपनः।
दारदो वत्सनाभश्च विषभेदा अमी नव। अमर० १।८।१०-११

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इस प्रकार की पद्धति प्रायः सभी पर्यायकोषों में मिलती है।

अमरकोषकार ने यत्र-तत्र कुछ शब्दों के परिगणन के साथ (आदि) शब्द का प्रयोग किया। उदाहरणार्थ निम्नांकित स्थल देखे जा सकते हैं :—

| | |
|---|---|
| 'ब्राह्मीत्याद्यास्तु मातरः' | अमर० १।१।३५ |
| 'विभूतिर्भूतिरैश्वर्यमणिमादिकमष्टधा' | १।१।३६ |
| 'नारदाद्याः सुरर्षयः' | १।१।४८ |
| 'स्त्रियां वहुष्वप्सरसः स्वर्वेश्या उर्वशीमुखाः' | १।१।५२ |
| 'पद्मशंखादयो निधेः' | १।१।७१ |
| 'राशीनामुदयो लग्नं ते तु मेषवृषादयः' | १।३।२७ |
| 'वंशादिकं तु सुषिरं कांस्यतालादिकं घनम्' | १।७।४ |
| 'एते पंच महायज्ञा ब्रह्मयज्ञादिनामकाः' | २।७।१४ |
| 'आग्नीध्राद्या धनैर्वार्याः' | २।७।१७ |

इत्यादि उदाहरणों में 'पंचमहायज्ञों से क्रमशः ब्रह्मदेव, अतिथि, पितृ और भूतयज्ञों का ग्रहण समझना चाहिए। अन्तिम उदाहरण में 'आदि' शब्द से धनवार्य पुरोहितों में से केवल आग्नीध्र को गिनाया है, अन्य को नहीं। ऐसे ही कुछ अन्य उदाहरण इस प्रकार हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| 'गायत्रीप्रमुखं छन्दो' | | अमर० २।७।२२ |
| 'पात्रं स्रुवादिकम्' | ,, | २।७।२४ |
| 'सांतपनादिकम्' | ,, | २।७।५२ |
| 'व्यूहस्तु बालविन्यासो भेदा दण्डादयो युधि' | | अमर० २।८।७९ |
| 'स्यात्प्रत्यालीढमालीढमित्यादि स्थानपंचकम्' | ,, | २।८।८५ |
| 'हेमकूटादयो नगाः' | | २।३।३ |

इन स्थलों को देखकर ऐसा अनुमान होता है कि अमरकोषकार ने उन शास्त्रीय भेद-प्रभेदों की गणना नहीं की है, जिनका ज्ञान ज्योतिष, कल्प, भूगोल आदि विभिन्न शास्त्रों के अध्येताओं को अपने-अपने शास्त्र के अध्ययन से सरलतया हो जाता है।

अमरकोष के तृतीय काण्ड में केवल दो ऐसे वर्ग हैं, जिनमें पर्यायवाचियों का संकलन नहीं है। ये वर्ग हैं—नानार्थ तथा लिंगादिसंग्रहवर्ग। इनमें से नानार्थवर्ग के द्वारा अमरकोषकार ने अपने कोष में अनेकार्थी कोषों की शैली का समावेश करने की चेष्टा की है तथा लिंगादिसंग्रहवर्ग के द्वारा शब्दों के लिंग प्रदर्शित करने वाले कोषों का भी अन्तर्भाव किया है। इन दो वर्गों के अतिरिक्त अमरकोष का अन्य भाग पूर्णतया पर्यायवाची है। इसीलिए प्रारम्भ में हमने इसे मुख्यतः पर्यायवाची कोष कहा है।

पद्यबद्ध रचना होने के कारण अमरकोषकार के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे पर्यायों का संकलन उनके प्रयोग की अधिकता या न्यूनता के क्रम से कर पाते अथवा वर्णादिक्रम से कर पाते। अतः पर्यायवाचियों को उन्होंने किसी क्रमविशेष का ध्यान

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

न रखते हुए केवल छन्दनिर्वाह की दृष्टि से रख दिया है। परन्तु एक ही वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न पदार्थों के पौर्वापर्य का जो क्रम है, उसमें प्रायः अमरकोषकार पदार्थों के आपेक्षिक महत्त्व तथा तत्कालीन समाज में उनके क्रम का ध्यान रखते हुए प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए स्वर्गवर्ग में देवगणों के क्रम में पौराणिक क्रम ब्रह्मा, विष्णु, महेश का क्रम, अमरकोषकार ने सुरक्षित रक्खा है।

## लिंग-निर्देश

लिंगादिसंग्रह वर्ग को छोड़कर अपने ग्रन्थ के प्रारम्भ में ही पर्यायों के लिंगज्ञान के लिए अमरकोषकार ने निम्नलिखित सामान्य नियम दिए हैं—

( १ ) प्रायशो रूपभेदेन

रूपभेद से लिंग प्रकट किया गया है। प्रथमा के एक वचन के रूप को देखकर लिंग जाना जा सकता है। यथा—

'पद्मालया पद्मा' स्त्रीलिंग हैं, 'पिनाकोऽजगवं धनुः' में 'पिनाक' पुंल्लिग है तथा 'अजगवं धनुः' नपुंसकलिग हैं।

( २ ) साहचर्याच्च कुत्रचित्

कहीं-कहीं शब्दों के साहचर्य से लिंग का बोध होता है। उदाहरण के लिए 'अश्वयुगश्विनी' में 'अश्विनी' के साहचर्य से 'अश्वयुज्' शब्द भी स्त्रीलिंग में जानना चाहिए। इसी प्रकार 'वियद्विष्णुपदम्' में 'विष्णुपदम्' के योग में 'वियद्' भी नपुंसकलिंग ही हुआ।

( ३ ) तद्विशेषविधेः क्वचित्

कहीं-कहीं क्रमशः पुंल्लिग, स्त्रीलिंग तथा नपुंसक लिंग के परिचायक 'पुमान्' 'स्त्री' तथा 'क्लीब' इत्यादि या इनके समानार्थी विशेष उपादानों से भी लिंग का ज्ञान कराया जाता है। 'भेरी स्त्री दुन्दुभिः पुमान्' में क्रमशः भेरी को स्त्रीलिंग तथा दुन्दुभि को पुंल्लिग कहा गया है। कहीं-कहीं प्रयुक्त सर्वनाम व विशेषण पद से भी लिंगों का ज्ञान हो सकता है। यथा—'शुचिस्त्वयम्' तथा 'संहूतिर्बहुभिः कृता' में समझा जा सकता है।

( ४ ) (क) पर्यायों के लिंगों में भेद स्पष्ट करने के लिए उनमें द्वन्द्व, एकशेष या संकर समास नहीं किए गए हैं। यथा—'स्तवः स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः' ( १।६।११ ) में क्रम से एक पुंल्लिग, एक नपुंसक-लिंग तथा दो स्त्रीलिंग कहे गए हैं। 'स्तुतिः स्तोत्रं स्तवो नुतिः' ऐसा लिंगव्यतिक्रमजन्यसंकर भी नहीं किया गया है।

(ख) भिन्न लिंग और कहीं अन्यत्र पर्यायों के लिंगभेद स्पष्ट न किये जाने पर भी द्वन्द्व आदि नहीं किए गए हैं। यथा—भिन्न लिंग-देवताः ( स्त्री० ), दैवतानि ( न० ) तथा अमराः ( पु० ) को कहीं अन्यत्र न कहने के कारण द्वन्द्व में 'देवतादैवतामराः' ऐसा नहीं कहा गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(ग) समान लिंगों में सामान्य रूप से द्वन्द्व आदि किया गया है। यथा—'स्वर्गनाक-त्रिदिवत्रिदशालयाः' में सभी पुंल्लिग शब्द होने से ऐसा किया गया है।

(घ) कहीं-कहीं लिंग कह दिए जाने के कारण भिन्न लिंगों का भी संकरादि किया गया है। यथा—

'पतिपत्न्योः प्रसूः श्वश्रूः श्वशुरस्तु पिता तयोः' (२।६।३१)। इसमें प्रसूः (स्त्रीलिंग तथा श्वशुरः (पुंल्लिग) कह दिए जाने के कारण 'श्वश्रूश्वशुरौ श्वशुरौ' (२।६।३७) यह एक शेष किया गया है।

(ङ) प्रतिज्ञा में 'प्रायः' शब्द के प्रयोग से कहीं-कहीं लिंग के उक्त होने पर भी सम्भव एकशेष आदि नहीं किया गया है। यथा—'पयः कीलालममृतं'....(१।१०।२) तथा 'दुग्धं क्षीरं पयः समम्' (२।९।५१) इत्यादि में यद्यपि 'पयस्' शब्द नपुंसकलिंग में पठित है, तथापि 'अम्बुक्षीरे तु पयसी' ऐसा रूप न मिलकर अमरकोष (३।३।२३३) में 'पयः क्षीरं पयोम्बु च' रूप दृष्टिगत होता है। इसे प्रतिज्ञा-हानि का दोष नहीं कहा जा सकता।

(५) त्रिलिंग पद को सूचित करने के लिए 'त्रिषु' तथा पुंल्लिंग-स्त्रीलिंग पद को सूचित करने के लिए 'द्वयोः' शब्द प्रयुक्त हुए हैं। इसी प्रकार 'पुन्नपुंसकम्' तथा 'स्त्रीनपुंसकम्' प्रयोग भी किए गए हैं।

'त्रिषु' (त्रिलिंग) शब्द के प्रयोग के सम्बन्ध में दो विधियाँ अपनायी गयी हैं—

(क) पहले शब्दों का संग्रह प्रस्तुत करके फिर उत्तमर्णादयस्त्रिषु (२।९।१०) सूत्ररूप में पिछले शब्दों के लिए लिंगधारण करना तथा—

(ख) इमे त्रिषु (२।९।२८) या 'त्रिषूत्तरे' (२।९।२३) इत्यादि नियम कहकर फिर ऐसे शब्दों का परिगणन करना।

(६) निषेध की अवस्था में निषिद्ध लिंग से भिन्न शेष लिंग उस शब्द के होते हैं। यथा—'संवत्सरो वत्सरोऽब्दो हायनोऽस्त्री' में स्त्रीलिंगनिषेध के कारण संवत्सरादि चारों पद पुंल्लिंग और नपुंसकलिंग में समझने चाहिएँ।

(७) 'तु' अन्त तथा 'अथ' आदि पद (नाम-लिंग, सर्वनाम और अव्यय) अपने से पूर्ववाले पद से सम्बन्धि नहीं होते। यथा—'अन्तर्धा व्यवधा पुंसि त्वन्तर्धिरपवारणम्' (१।३।१२) में त्वन्त 'पुंसि' प्रयोग से केवल 'अन्तर्धिः' पद ही पुंल्लिंग है व्यवधा आदि पूर्व के नहीं।

इन सामान्य नियमों के सम्बन्ध में डा० राजवाड़े महोदय ने अपने लेख के तृतीयांश में कहा है कि प्रथम काण्ड तथा द्वितीय काण्ड के कुछ वर्गों के बाद ये नियम अमरकोष में लागू नहीं होते। इस सम्बन्ध में उन्होंने कोई भी उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए हैं। अमरकोष का अध्ययन करने से निम्नलिखित कुछ स्थलों को छोड़कर अन्यत्र प्रायः ये नियम सर्वथा प्रयुक्त हुए ही जान पड़ते हैं—

(१) 'भुजवाहू प्रवेष्टो दोः स्यात्कफोणिस्तु कूर्परः' (२।६।८०)। इसमें 'कफोणि'



CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पद के लिंगज्ञान में असुविधा होती है। यह स्त्रीलिंग है या पुंल्लिंग या दोनों, इसका निर्देश कोषकार ने नहीं किया है।

'व्याघ्रेऽपि पुण्डरीको ना यवान्यामपि दीपकः' (अमर० ३।३।११), इसमें पुंल्लिग-सूचक 'ना' पद पुण्डरीक के साथ है या दीपक के साथ, यह अस्पष्ट है। 'समे क्ष्मांशे रणेऽप्याजिः' ( अमर० ३।३।३२ ), यहाँ 'आजिः' किस लिंग में है, यह संदिग्ध है।

(२) कर्णशब्दग्रहौ श्रोत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः।
उत्तमांगं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम्। (अमर० २।६।९४–९५)

यहाँ पहली पंक्ति में क्रमशः कर्ण ( पुं० ) शब्दग्रहः ( पुं० ) श्रोत्रं ( नपुं० ) श्रुतिः ( स्त्री० ) श्रवणं (नपुं०) तथा श्रवः ( श्रवस्, नपुं० ) परिगणित हैं। मध्य-गत 'श्रुतिः' ( स्त्री० ) संकर उत्पन्न करता है, जो कि नियमविरुद्ध है। दूसरी पंक्ति में यदि 'शिरोवाची शिरो दन्तो रजोवाची रजस्तथा' उक्ति से 'शिरः' को पुंल्लिंग माना जाय तो यहाँ भी संकर स्पष्ट प्रतीत होता है।

(३) अलंकारस्त्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम्, मण्डनं चाथ
( अमर० २।६।१०१ )

प्रस्तुत स्थल में अलंकार ( पुं० ) आभरणम् ( नपुं० ) परिष्कारः ( पुं० ) विभूषणम् तथा मण्डनम् ( नपुं० ) में संकर स्पष्ट है।

(४) 'तक्षा तु वर्धकिस्त्वष्टा रथकारस्तु काष्ठतट्' ( अमर० २।१०।९ )

यहाँ 'त्वन्ताथादि न पूर्वभाक्' (१।१।५) नियम लागू नहीं होता, क्योंकि 'रथकार' शब्द के अन्त में 'तु' के प्रयोग से वह 'वर्धकिः' ( बढ़ई ) का पर्याय नहीं रह जाता।

(५) 'स्त्रीपुंसोर्मिथुनं द्वन्द्वं युग्मं तु युगलं युगम्' ( अमर० २।५।३८ )।

इस स्थल पर यदि 'द्वन्द्वम्' को युग्मादि का पर्याय मानें ( जैसा कि रायमुकुटादि कुछ टीकाकारों का मत है ) तो भी उपर्युक्त नियम भंग होता है। 'तु' के प्रयोग से युग्मादि का सम्बन्ध द्वन्द्व से नहीं रहता।

( ६ ) स्यान्निकायः पुंजराशी तूत्करः कूटमस्त्रियाम् ( अमर० २।५।४२ )।

प्रस्तुत स्थल में निकायः, पुंजः, राशिः, उत्करः तथा कूटम्, सभी राशि ( ढेर ) वाची शब्दों में पर्याय होने के कारण 'तु' का प्रयोग पूर्वप्रतिज्ञात नियम का खण्डन करता है।

इन स्थलों के सम्बन्ध में टीकाकारों ने कहा है कि यह 'तु' आदि जन्य क्रमविपर्यय केवल छन्दयोजना के लिए हुआ है। अपनी टीका में भानुजि दीक्षित ने छन्द-योजना के लिए 'तु' के स्थान पर 'च' का प्रयोग अधिक उपयुक्त बताया है। इसी प्रकार अमरकोष ( २।१०।२८ ) में एकवचन 'तन्तु' के स्थान पर जो बहुवचन 'तन्तवः' पठित है, वह भी छन्द-योजना के लिए ही है। ऐसे उदाहरण कोष में अन्यत्र भी मिलते हैं।

जहाँ तक राजवाड़े महोदय की आलोचना[1] का सम्बन्ध है, कुछ ही अस्पष्ट स्थल

---

१. रिफ्लेक्शन्स आन दि अमरकोष—श्री वी० के० राजवाड़े।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

लिंग-विचार की दृष्टि से हमें मिलते हैं। अधिकांश में तो अमरकोषकार ने उनके द्वारा आलोचना प्राप्त द्वितीय व तृतीय काण्ड में भी पर्याय स्पष्ट लिंग सूचनाएँ दी हैं। कुछ उदाहरण देखे जा सकते हैं—

'मारुते वेधसि व्रध्ने पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः' (अमर० ३।३।५)
'यानाद्यङ्गे युगः पुंसि युगं युग्मे कृतादिषु' (अमर० ३।३।२४)
'प्रतिकूले प्रतीकस्त्रिष्वेकदेशे तु पुंस्ययम्' (अमर० ३।३।७)
'स्वल्पेऽपि क्षुल्लकस्त्रिषु' (अमर० ३।३।१०)
'दीनारेऽपि च निष्कोऽस्त्री कल्कोऽस्त्री समलैनसोः (अमर० ३।३।१४)
'.........न स्त्रीन्द्रियेऽपि खम्' (अमर० ३।३।१८)
'चातके हरिणे पुंसि सारंगः शवले त्रिषु' (अमर० ३।३।२३)
'ग्रामणीर्नापिते पुंसि श्रेष्ठे ग्रामाधिपे त्रिषु' (अमर० ३।३।४९)
'हरिणी स्यान्मृगी हेमप्रतिमा हरिता च या' (अमर० ३।३।५०)
'नभः खं श्रावणो नभाः' (अमर० ३।३।२३२)

राजवाड़े महोदय ने जिन स्थलों में इन नियमों के घटित न होने का दोषारोपण किया है, वहाँ तथा अन्यत्र भी अमरकोषकार ने विशेष नियम प्रतिपादित करके पूर्व निर्मित लिंगनियमों के सहायक नियमों के रूप में उनको प्रस्तुत किया है। उदाहरणार्थ निम्नलिखित उद्धरणों का उल्लेख किया जा सकता है :—

उक्ता भूरिप्रयोगत्वादेकस्मिन्येऽत्र यौगिकाः।
ताद्धर्म्यादन्यतो वृत्तावूह्या लिंगान्तरेऽपि ते॥ (अमर० २।१०।४६)

अमरकोष में सभी लिंगों में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के सभी लिंग नहीं कहे गए हैं। प्रायः प्रचलित एक रूप ही देकर अन्य भी उसमें अन्तर्हित मान लिए गए हैं। अतः ऐसे रूढ़ तथा यौगिक शब्दों को उसी धर्म से अन्य जातिवाची लिंगों में भी प्रयुक्त करना चाहिए। उदाहरणार्थ, शूद्रवर्ग में ही कणा, कुलाल इत्यादि शब्द केवल पुंलिंग में पठित हैं, जब कि इनमें स्त्रीलिंग रूप भी प्रयोग में मिलते हैं। अतः उपर्युक्त नियम के आधार पर इनको स्त्रीलिंग में भी प्रयोग किया जा सकता है। शूद्रवर्ग ही नहीं, अन्यत्र भी ऐसे उदाहरण मिल जाते हैं। मनुष्यवर्ग में पौत्री (पुत्र की कन्या) के 'नप्त्री पौत्री' दो पर्याय परिगणित हैं। अतः वहाँ भी इसी के साथ सम्बद्ध पुंलिंग पौत्र (पुत्र का पुत्र) शब्द का भी अन्तर्भाव समझा जा सकता है।

स्त्रीदाराद्यैर्यद्विशेष्यं यादृशैः प्रस्तुतं पदैः।
गुणद्रव्यक्रियाशब्दास्तथा स्युस्तस्य भेदकाः॥ (अमर० ३।१।२)

विशेष्यनिघ्न (विशेष्याधीन-विशेषण) वर्ग में ऐसे शब्द प्रस्तुत किए गए हैं जो स्त्री-दाराद्य विशेष्यों के अनुसार लिंगधारण करते हैं। ये गुण द्रव्य क्रिया शब्द स्त्री आदि के अनुरूप ही प्रयोग में आते हैं। यथा—

---

एनल्स ऑफ भंडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीटयूट, पूना, खण्ड—६, १९२६ में प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गुण— सुकृतिनी स्त्री, सुकृतिनो दाराः, सुकृति कुलम् ।
द्रव्य— दण्डिनी स्त्री, दण्डिनो दाराः, दण्डि कुलम् ।
क्रिया— याचिका स्त्री, याचका दाराः, याचकं कुलम् ।

'प्रकृतिप्रत्ययार्थाद्यैः संकीर्णे लिंगमुन्नयेत्' । (अमर० ३।२।१)

वक्ष्यमाण लिंगादिसंग्रहवर्गोक्त विधि से प्रकृति-प्रत्ययार्थ और रूपभेद साहचर्य से लिङ्ग का ज्ञान इस संकीर्ण वर्ग में किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए यहाँ पठित 'अपरस्पर' शब्द में 'पर' शब्द के त्रिलिङ्ग होने से प्रकृति अर्थ में पूर्ण शब्द त्रिलिंग हुआ। प्रत्यय के आधार पर भी 'शान्तिः कृतिः' (स्त्री०) 'हसितम् हसनम् (नपुं०) तथा 'आकरः सन्धिः' (पुं०) शब्द मिलते हैं।

'स्वर्गेषुपशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले
लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः........'(अमर० ३।३।२५)

यहाँ गौः के स्वर्गादि अर्थों को स्त्रीलिंग या पुंल्लिग में लक्ष्य की दृष्टि से जानना कहा गया है।

'पुंस्यात्मनि प्रवीणे च क्षेत्रज्ञो वाच्यलिंगकः' (अमर० ३।३।३३)

अर्थात् 'क्षेत्रज्ञ' शब्द 'पुंल्लिग में आत्मा के अर्थ में तथा प्रवीण अर्थ में त्रिलिंग में प्रयुक्त होता है।

'कष्टे तु....पटुर्द्वौ वाच्यलिंगौ च....' (अमर० ३।३।३९-४०)

इत्यादि में 'पटु' शब्द को भी वाच्यलिंगम् कहा गया है।

'अनुक्तैः संग्रहे लिंगं संकीर्णवदिहोन्नयेत्' (अमर० ३।५।१)

लिंगादिसंग्रहवर्ग में भी संकीर्ण वर्ग के समान प्रकृतिप्रत्ययार्थ इत्यादि से लिंग का तर्क किया गया है।

'परं विरोधं शेषं तु ज्ञेयं शिष्टप्रयोगतः' (अमर० ३।५।४६)

लिंगविधायक वचनों में यदि परस्पर विरोध हो तो बाद वाला लिंग ग्राह्य होता है। लिंगादिसंग्रह में जो अनुक्त शब्द रह गए हैं उनका लिंग शिष्टों के प्रयोग से जाना जा सकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अमरकोषकार ने शब्दों के लिंगनिर्धारण में पर्याप्त प्रयत्न किया है। वैसे तो लिंग का विवेचन बड़ा ही विवाद का विषय है, परन्तु यथावसर विभिन्न नियमों से अमरकोषकार ने व्यावहारिक प्रयोग स्पष्ट कर दिए हैं।

## लिंगादिसंग्रहवर्ग

अमरकोष के तृतीय काण्ड के अन्तिम लिंगादिसंग्रह वर्ग में कुछ सामान्य नियम बताकर विभिन्न शब्दों के लिंग का परिचय दिया गया है।

**( १ ) सलिंगशास्त्रैः....**

पाणिनि आदि के लिंगविधायक शास्त्रों में कथित सन्-अधिकृत कृत्, तद्धित तथा समास से उत्पन्न प्रत्ययों से निर्मित तथा पूर्वसंग्रह में अनुक्त शब्दों के लिंग को यहाँ संकीर्ण वर्ग के समान समझा जाता है। अर्थात् प्रकृति और प्रत्यय के अर्थ आदि से लिंग का

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तर्क करना चाहिए। उदाहरणार्थ—'स्त्रियां क्तिन्' (पाणिनि, ३।३।९४) सूत्र के आधार पर 'कृतिः संपत्तिः, विपत्तिः' आदि शब्द स्त्रीलिंग हुए।

( २ ) लिंगविशेषविधिर्व्यापी विशेषैर्यद्यबाधितः—

यहाँ का लिंगविधान सर्वत्र व्यापक होता है, केवल अपवाद को छोड़कर। अर्थात् यदि पहले किसी वचन से यहाँ के लिंग का बाध नहीं होता हो तो यहाँ की लिंगविधि ही सर्वथा मान्य होगी। पूर्वनिषेध ( बाध ) की अवस्था में निषेध ही अधिक प्रभावशाली होगा। उदाहरणार्थ—'स्वर्गयागाद्रिमेघाब्धि:' ( ३।५।११ ) इत्यादि में स्वर्गादि ये शब्द पुंल्लिग में पठित हैं, परन्तु 'स्वरव्ययं....' ( १।१।६ ) इत्यादि में 'स्वर्' (अव्यय) द्यो-दिव् ( स्त्री० ) त्रिविष्टप् ( नपुं० ) कहे गये हैं। अतः यह पूर्व निषेध-वचन अधिक प्रभावशाली होगा और स्वर्ग शब्द पुंल्लिग में प्रयुक्त नहीं होगा।

इस वर्ग में भी विशेषवचन सामान्यवचन का बाधक होता है। उदाहरणार्थ—'अदन्तैर्द्विगुरेकार्थः' ( ३।५।३ ) इस सामान्य वचन से अदन्त शब्द से आगे एकार्थ द्विगु को स्त्रीलिंग कहा गया है। अष्टाध्यायी में त्रिलोकी तथा दशमूली इसके उदाहरण हैं। परन्तु आगे 'न स पात्रयुगादिभिः' ( ३।५।३ ) विशेष निषेधवचन से 'पात्र युग तथा भुवन' आदि के साथ ऐसे शब्दों का स्त्रीलिंग निषेध किया गया है और हमें 'पंचपात्रम् चतुर्युगम् तथा त्रिभुवनम्' रूप मिलते हैं।

इन नियमों के उल्लेख के बाद पूर्ण वर्ग में क्रमशः स्त्रीलिंग, पुंलिंग, नपुंसकलिंग; पुन्नपुंसकलिंग, स्त्रीपुंल्लिग, स्त्रीनपुंसकलिंग तथा त्रिलिंग विभागों में विभिन्न शब्द संगृहीत हैं। यह लिंगविधान अन्य समान शास्त्रों से कहाँ तक समानता रखता है, इसका विवेचन आगे 'लिंगविधान शीर्षक' अध्याय के अन्तर्गत किया जायगा।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्याय ३

# अमरकोष में संगृहीत शब्दों का विस्तार-क्षेत्र

किसी भाषा का शब्दकोष उस भाषा की शब्दराशि का परिचय देता है और इस प्रकार उस भाषा का प्रयोग करने वाले जन-समुदाय की अनुभूतियों तथा ज्ञान के विस्तार का प्रामाणिक लेखा होता है। इससे उस जनसमुदाय के भौतिक एवं आध्यात्मिक विकास का प्रामाणिक विवरण सरलतया प्राप्त हो जाता है।

इस दृष्टि से अमरकोष की परीक्षा करने पर पांचवीं शताब्दी ईसवी के आस-पास के भारतीय समाज की अनुभूतियों, ज्ञान तथा क्रिया-कलापों के विस्तार-क्षेत्र का परिचय मिलने के साथ-साथ यह भी स्पष्ट हो जायगा कि उस समय में संस्कृत भाषा का भारतीय समाज में क्या स्थान था।

मनुष्य, उसकी भौतिक स्थिति, उसके द्वारा अनुभूत विभिन्न पदार्थ तथा उनसे सम्बद्ध उसके विचारों को अध्ययन की सुविधा के लिए निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।[1] यहाँ अमरकोष के शब्दों के विस्तार-क्षेत्र का अध्ययन इन्हीं २१ शीर्षकों के अन्तर्गत किया गया है—

१. सम्पूर्ण भौतिक जगत् तथा उसके बृहद् रूप।
२. मनुष्य तथा पारिवारिक सम्बन्ध।
३. पशु-पक्षी।
४. शरीर के भाग, उनके कार्य तथा दशाएँ।
५. भोजन और पेय तथा सम्बद्ध उपकरण।
६. वस्त्र, अलंकरण तथा सज्जा।
७. आवास, गृह।
८. कृषि तथा वनस्पति।
९. शिल्पकलाएँ तथा सम्बद्ध उपकरण।
१०. यातायात और नौ-विद्या।
११. सम्पत्ति तथा वाणिज्य-व्यापार।
१२. नभमण्डलीय सम्बन्ध, आकार तथा परिमाण।
१३. मात्रा तथा संख्या।

१. प्रस्तुत वर्गीकरण शिकागो युनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित सी. डी. बक की "ए डिक्शनरी ऑफ सिनानिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजेज़" के अनुसार किया गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१४. समय।
१५. प्रत्यक्ष ज्ञान।
१६, मनोभाव, स्वभाव-विषयक, नैतिक तथा कलात्मक भाव।
१७. मस्तिष्क, विचार।
१८, शब्द, वाणी, अध्ययन तथा लेखन।
१९. क्षेत्रीय तथा राजनीतिक विभाजन, शस्त्र एवं युद्ध-सम्बन्धी शब्द।
२०. कानून।
२१. धर्म, दर्शन तथा अन्ध-विश्वास।

## (१) सम्पूर्ण भौतिक जगत् तथा उसके बृहद् रूप—

व्यापक रूप से इसको निम्नलिखित उपविभागों में बाँटा जा सकता है—

जगत्—पंच महाभूतों से बने जगत् के जगती, लोक, विष्टप, भुवन तथा जगत्—ये पाँच पर्याय अमरकोष ( अमर० २।२।६ ) में परिगणित हैं। भूमि, जल, आकाश आदि इसके महाभूतांगों का उल्लेख पृथक् हुआ है।

भूमि—भू, भूमि, क्षमा, पृथ्वी, मही इत्यादि कुल २७ पर्याय इसके परिगणित हैं। इसके साथ ही अमरकोष में मृत्तिका, मृत्स्ना ( प्रशस्त मृद् ), उर्वरा, ऊषर (ऊसर), स्थल ( अकृत्रिम ), मरु, अप्रहत ( अकृष्ट क्षेत्र ), जनपद, देश, प्राच्य, उदीच्य, मध्य, नड्वत् ( नडबहुल ), कुमुद्वत्, वेतस्वत्, शाद्वल, नदीमातृक, देवमातृक, राजन्वत् ( अच्छे राजा से युक्त ), तथा राजवान् ( राजा से युक्त ) इत्यादि भूमि के भेद तथा उनके पर्याय प्रस्तुत किये गए हैं।

रेणु—अमरकोष ( २।८।९८ ) में रेणुः, धूलिः, पांशुः ( पांसु ) तथा रजः चार पर्याय 'धूल' के अर्थ में आए हैं। 'चूर्णम्' तथा क्षोदः दो पर्याय "महीन धूल" के लिए हैं। यह उल्लेख युद्धभूमि तथा सेना के सम्बन्ध में हैं।

पंक ( कीचड़ )—अमरकोष ( १।१०।९ ) में पंक, कर्दम आदि ५ पर्याय परिगणित हैं। अमरकोष ( २।१।१० ) में विशेषण रूप में "पंकिल" शब्द भी आया है। सम्बद्ध शब्द 'काई' के लिए शैवल, शेवल तथा शेवाल तीन शब्द आये हैं। स्निग्ध, चिक्कण प्रभृति शब्द भी यहाँ परिगणित हैं।

सिकता—अमरकोष में बालू के लिए 'सिकताः' ( नित्य बहुवचनान्त ) और 'बालुका' शब्द हैं। बालुकामयी भूमि के लिए भी सिकताः ( ब० व० ) शब्द है, जिसके पर्याय हैं—

शर्करा, शर्करिल ( अधिक बालूवाले प्रदेश ), शार्करः, शर्करावान् ( बालू वाले देश या पदार्थ ) तथा सिकताः, सैकतिलः, सैकतः, सिकतावान् ( अमर० २।१।११ )।

पर्वत—अमरकोष ( २।३।१ ) में इसके लिए पर्वतः, गिरिः, अचलः इत्यादि कुल १३ पर्याय दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त चक्रवाल ( सप्तद्वीप भूमि का प्राकार-भूत पर्वत ), त्रिकूट, हिमवान्, निषध, विन्ध्य, माल्यवान्' पारियात्रक, गन्धमादन,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हेमकूट, उदयाचल तथा अस्ताचल पर्वतों के उल्लेख मिलते हैं। पर्वतसम्बद्ध शब्दों में शिखर, कटक ( पर्वत का मध्य भाग ), प्रस्थ ( समतल भूमि वाला पर्वत प्रदेश ), कन्दरा ( कृत्रिम ) तथा गुहा ( अकृत्रिम ), गण्डशैल ( पर्वत से गिरे पत्थर ), पादा: ( पादस्थ अल्प पर्वत ), उपत्यका ( घाटी ) तथा अधित्यका ( छोटी पहाड़ी ), तथा गैरिक आदि धातुओं के लिए शब्द उपलब्ध होते हैं। यही नहीं, अमरकोष के वनौषधि वर्ग में पर्वतों में पाई जाने वाली कई औषधियों का उल्लेख मिलता है।

समतल भूमि—सम तथा अजस्र जैसे संस्कृत शब्द जो पर्वत से भिन्न समतल भूमि ( मैदानी क्षेत्र ) का अर्थ देते हैं, अमरकोष में नहीं हैं।

द्वीप—वारिवर्ग के अन्तर्गत द्वीपम् तथा अन्तरीपम् दो पर्याय द्वीप के लिए आये हैं। इससे सम्बन्धित अन्य कोई भी शब्द नहीं आया है। प्रस्तुत दोनों शब्दों का अर्थ अमरकोष के अनुसार "ऐसा प्रदेश जो दो ओर से पानी से घिरा हो" है, परन्तु चारों ओर से समुद्र से घिरे प्रदेश तथा महाद्वीप के लिए अमरकोष में कोई शब्द परिगणित नहीं है।

कूल—वारिवर्ग के अन्तर्गत तीरम्, कूलम्, प्रतीरम्, रोधः तथा तटम्—ये पाँच पर्याय अमरकोष में परिगणित हैं। एक अन्य पर्याय 'वेला' नहीं है। 'पारम्' ( नदी के दूसरी ओर का किनारा ), तथा 'अवारम् ( इस ओर का किनारा ), पात्रम् ( नदी के दोनों किनारों के बीच का भाग ), पुलिनम् ( पानी से शीघ्र निकले हुए किनारे ), सैकतम्, सिकतामयम् ( रेतीले किनारे ) ) इत्यादि शब्द यहाँ संगृहीत हैं।

जल—जल के २७ पर्याय गिनाने के बाद आप्य ( जलविकार ), बिन्दवः ( जल-बिन्दु ) प्रमाः ( चक्राकार जल का अधोगमन ), आवर्त (जल का मण्डलाकार भ्रमण) तथा जलोच्छ्वास आदि शब्द अमरकोष में परिगणित हैं। जल के विविध गुण—निर्मल, कलुष, गंभीर, उत्तार ( उथला ) तथा अगाध इत्यादि के पर्याय भी यहाँ मिलते हैं। शब्दादिवर्ग के अन्तर्गत परिगणित विभिन्न प्रकार के शब्दों ( स्वरों ) में जलोत्थ ध्वनि का उल्लेख नहीं है।

समुद्र—अमरकोष में इसके १० पर्याय परिगणित हैं। अनन्तर क्षीरोद, लवणोद आदि भेद भी दिए गए हैं। इसके अतिरिक्त शुक्ति, शंख, क्षुद्र शंख तथा जलशुक्ति ( शम्बूक ) शब्द भी परिगणित हैं। परन्तु समुद्र के गर्जन तथा उसके विस्तार के लिए कोई शब्द नहीं आया है।

सरस्—अमरकोष में जलाशय के पर्याय संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त ह्रदः ( अगाध जल वाले सरोवर ) तथा अल्पसरः शब्दों का भी उल्लेख है।

खाड़ी—अमरकोष में खाड़ी के लिए कोई शब्द संगृहीत नहीं है।

लहर—इसके चार पर्याय अमरकोष में प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त कल्लोल ( महत् ऊर्मि ) शब्द भी आया है। परन्तु लहर की तट की ओर गति, उग्रता उत्पन्न फेन, पूर्णचन्द्र की ओर उसके प्रेरित होने की अवस्था इत्यादि के लिए इसमें शब्द नहीं हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नदी—अमरकोष में इसके १२ पर्याय गिनाने के बाद भागीरथी, यमुना, नर्मदा, करतोया, गौरी (विवाह में प्रवाहित नदी-विशेष), सैतवाहिनी (कार्तवीर्यार्जुन द्वारा प्रवाहित), शतद्रु, विपाशा, शोण, शरावती, वेत्रवती, चन्द्रभागा, सरस्वती तथा कावेरी नदियों के नामोल्लेख हुए हैं। इसके अतिरिक्त कुल्या ( अल्पसरित् ) प्रणाली, सिन्धुसंगम, दाविक ( देविका नदी में उत्पन्न नहर ), तथा सारव ( सरयू नदी में उत्पन्न ) जैसे शब्दों का भी संकलन किया गया है। यही नहीं, स्रोत, तरण्य ( नदी आदि को पार करने में देय मूल्य ) तथा कूपक ( शुष्क नदी में कृत्रिम गर्त ) जैसे शब्दों का पाया जाना भी महत्त्वपूर्ण है।

कूप—कूप शब्द के चार पर्याय अमरकोष में परिगणित हैं। यहाँ "अवट" शब्द प्राप्त नहीं होता। 'उत्सः' शब्द शैलवर्ग में पहाड़ से गिरे जलसमूह के एकत्र होने के स्थान के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसके अतिरिक्त सम्बद्ध शब्द आहाव ( कूप के समीप गायों आदि के लिए बना जलाशय ), त्रिका ( कूप में प्रयुक्त दारुयंत्र, रज्जु ), वीनाह ( मुंडेर ) परिखा, पुष्करिणी, देवखातकम् (अकृत्रिम जलाशय), तड़ाग, वापी, आधार ( सिंचनार्थ जलसंग्रह स्थान ) तथा आलवाल ( वृक्षसेचन के लिए, थाला ) प्रभृति भी संगृहीत मिलते हैं।

वन—वनौषधि वर्ग में वन के ६ पर्याय, महारण्य के ३ पर्याय तथा गृहारण्य ( घर के पास लगाये वन ), उपवन ( कृत्रिम उद्यान ), वृक्षवाटिका ( मंत्रियों या वेश्याओं के उपवन ), आक्रीड़ और उद्यान ( प्रमदाओं या मित्रों के साथ क्रीड़ायोग्य वन ), प्रमदवन ( रानियों का क्रीड़ास्थल ), वन्या ( वनसमूह ) प्रभृति शब्दों तथा वन की विभिन्न वनस्पतियों और ओषधियों का सविस्तर उल्लेख मिलता है। अमरकोष के वनौषधिवर्ग को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय कोषकला में आयुर्वेद के निघण्टुओं के शब्दों को समाविष्ट करने की भी प्रथा रही होगी। 'वन' शब्द वृक्ष का भी एक पर्याय है। अतः वृक्षों तथा लताओं का भी सभेद वर्णन अमरकोष में हुआ है।

वृक्ष—इसके कुल १३ पर्याय अमरकोष में परिगणित हैं। इसका एक पर्याय "वनम्" अप्राप्त है। इसके साथ ही अंकुर, वानस्पत्य, वनस्पति, ओषधि, अवन्ध्य ( फलरहित वृक्ष ), सफल ( यथासमय फल देने वाले वृक्ष ), स्थाणु, क्षुप ( ह्रस्व शाखा तथा शिफा वाला ), स्तम्ब, लता, विस्तृत लता, तथा कुंज शब्द उपलब्ध होते हैं। वृक्ष की ऊँचाई, वृक्षस्कन्ध, शाखा, प्रधान शाखा, तरुमूल (शिफा, जटा), अवरोह (शिखा-मूल ), शिखर ( वृक्षमूल ), मज्जा, त्वक्, काष्ठ, शुष्क वृक्ष, कोटर, मंजरी, पत्र, किसलय, विटप ( वृक्षविस्तार ), सस्य ( फल ) वृन्त, वान ( शुष्कफल ) शलाटु ( अपक्व फल ), नूतन कलिका, कलिका, गुच्छक, ईषद् विकसित कलिका, पुष्प, पुष्पमधु, तथा पुष्परेणु इत्यादि शब्द संगृहीत हैं। विभिन्न प्रकार के वृक्ष, लता, तरकारियों तथा औषधों का सविस्तर उल्लेख तो अमरकोष में हुआ ही है।

अश्मन्—पाषाण, शिला इत्यादि इसके कुल ७ पर्याय अमरकोष में परिगणित

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं। इसके एक पर्याय ग्रावा के आधार पर 'ग्रावा' शब्द तथा शिला के आधार पर 'शैल तथा शिलोच्चय' शब्द पर्वत के लिए भी प्रयुक्त हुए हैं।

आकाश—अमरकोष में व्योमवर्ग में आकाश के कुल १६ पर्याय परिगणित हैं। ज्ञातव्य है कि स्वर्गलोक इससे भिन्न है, जिसके कुल ९ पर्याय प्रथम काण्ड में प्रथम वर्ग में परिगणित हैं। स्वर्ग को देवों का स्थान कहा है तो आकाश का एक पर्याय विष्णुपदम् भी है। इससे सम्बद्ध शब्द दिशा, चार दिशाएँ, दिक्पति, दिग्गज, दिक्करिणियाँ, दो दिशाओं के मध्य का भाग तथा मण्डल आदि शब्द दिग्वर्ग में परिगणित हैं।

सूर्य, चन्द्र—सूर्य के ३७ पर्यायों के साथ सूर्य के पार्श्ववर्तियों के नाम, चण्डांशु तथा पारिपार्श्विक दो भेद तथा सूर्य से सम्बद्ध अरुण, परिधि, सूर्यकिरण, प्रभामात्र के पर्याय, सूर्यप्रभा, ईषदुष्ण, अत्युष्ण तथा मरीचिका प्रभृति शब्द अमरकोष में संकलित हैं। दिग्वर्ग के अन्तर्गत चन्द्र के २० पर्याय गिनाकर बिंब, चन्द्रशकल, अर्द्धचन्द्र, चन्द्रप्रभा, प्रसाद ( चन्द्रकान्ति ), चिह्न ( चन्द्रस्थ दोष ), सुषमा, शोभासामान्य, हिम, हिमसमूह, शीतता इत्यादि शब्दों का समावेश हुआ है।

तारा—इसमें तारक, नक्षत्र आदि कुल ६ पर्याय दिग्वर्ग में ही परिगणित हैं। इसके अतिरिक्त ध्रुव, अगस्त्य, लोपामुद्रा ( अगस्त्य की पत्नी ) तथा दाक्षायण्यः ( अश्विनी, भरणी इत्यादि कुल २७ नक्षत्रों ) का उल्लेख भी हुआ है। सप्तर्षि तथा द्वादश राशियों का भी नामोल्लेख हुआ है। बृहस्पति, शुक्र, मंगल, बुध, शनि, राहु आदि ग्रहों के लिए भी शब्द मिलते हैं परन्तु अमरकोष में केतु का नामोल्लेख नहीं हुआ है।

विद्युत्—इसमें १० पर्याय दिग्वर्ग में पठित हैं। वज्रनिर्घोष के २ पर्याय भी यहाँ मिलते हैं। सम्बद्ध 'ज्योतिस्' शब्द ( अमरकोष २।२।२३० ) प्रकाश अथवा भास अर्थ में भी आया है।

अंधकार—पातालभोगिवर्ग में इसके ५ पर्याय देने के बाद अन्धतमसम् ( बहुत अधिक अन्धकार ), अवतमसम् ( गाढ़ अन्धकार ) तथा संतमसम् ( सर्वत्र व्याप्त अंधकार ) शब्दों का भी उल्लेख हुआ है।

छाया—यह शब्द केवल नानार्थ वर्ग में परिगणित है और प्रतिबिम्ब तथा छाँह दोनों अर्थों में आया है।

वायु—अमरकोष ( १।१।६१ ) में वायु के २० पर्याय परिगणित हैं। इसके साथ ही प्राण, अपान आदि शरीरस्थ पंचवायु तथा वायुसखः ( अग्नि ) का भी उल्लेख अमरकोष ( १।१।५५ ) में मिलता है। इसी क्रम में वेग के ५ पर्याय, शीघ्र के ११ पर्याय, नित्य के ९ पर्याय तथा अतिशय के १४ पर्याय भी दिए गए हैं। ये सभी शब्द वायु की गति से सम्बद्ध हैं। आँधी, झंझावात आदि के लिए शब्द नहीं दिए गए हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मेघ—दिग्वर्ग में मेघ के १५ पर्याय परिगणित हैं। इसके साथ ही मेघवृन्द, मेघभव, मेघनिर्घोष, मेघज्योति तथा इन्द्रधनुष के पर्याय भी परिगणित हैं। दिग्वर्ग में केवल एक शब्द 'मिहिका' ( पाला पड़ने ) ओस के अर्थ में आया है और यह शब्द हिम के पर्यायों के अन्तर्गत परिगणित है। अमरकोष में कोहरा के लिए कोई शब्द उपलब्ध नहीं होता है।

वृष्टि—अमरकोष में इसके दो पर्याय दिये गए हैं। इसके अतिरिक्त वर्षा के निरोध के लिए शब्द, धारासंपात, अम्बुकण, वर्षोपल, दुर्दिन, ( अत्यधिक और अनवरत वर्षा ) तथा आच्छादन के लिए शब्द दिए गये हैं।

ऋतु—कालवर्ग के अन्तर्गत ऋतु शब्द एवं हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षर्तु तथा शरद ऋतुएँ तथा इनका क्रम से मासगत विभाजन का भी उल्लेख हुआ है।

अग्नि—स्वर्गवर्ग में इसके ३४ पर्याय परिगणित करके वाडवाग्नि, वह्निशिखा, अग्निकणिका, तथा अग्निसंताप का उल्लेख किया गया है। अग्नि की पत्नी के स्वाहा, अग्नायी ( अमरकोष २।७।२१ ) आदि नाम बताये गए हैं। अग्नि के भेदों को भी प्रदर्शित किया गया है। दक्षिणाग्नि, गार्हपत्याग्नि, आहवनीय तीन भेद, इन तीनों का समुदाय त्रेता, मन्त्र से संस्कृत अग्नि प्रणीत, यज्ञस्थान की अग्नि समूह्य, दक्षिणाग्नि से मंत्रपूत आनाय्य आदि शब्दों को प्रस्तुत किया गया है। अग्निप्रज्वलन के लिए प्रयुक्त मंत्र सामिधेनी, अग्नि का हव्य अन्न चरु, यज्ञसम्बद्ध अग्नि को जलाने के लिए धुवित्रम् तथा घी के लिए हविष् शब्दों का उल्लेख भी मिलता है। धूम शब्द अमरकोष में नहीं आया है। भस्मन् शब्द भी उपलब्ध नहीं होता।

## (२) मनुष्य तथा पारिवारिक सम्बन्ध—

इस विभाग के अन्तर्गत आने वाले उपविभागों का क्रमबद्ध अध्ययन अमरकोष की शब्दराशि के आधार पर किया जा रहा है।

अमरकोष के द्वितीय काण्ड के छठे वर्ग में मनुष्यवर्ग शीर्षक के अन्तर्गत मनुष्य के ११ पर्याय दिए गए हैं। भानुजि दीक्षित आदि कुछ टीकाकारों के अनुसार यहाँ श्लोकार्धं में पठित ६ पर्याय 'मानव' के तथा अन्त में पठित ५ नाम पुरुष ( मर्द ) के हैं। परन्तु महेश्वर आदि टीकाकारों ने कुल ११ नामों को मनुष्य के पर्याय बताया है। स्त्री के ११ पर्याय मिलते हैं। पुरुष तथा स्त्री बताने के लिए क्रमशः पुंस तथा स्त्री शब्द आये हैं। लिंग या योनि शब्द अमरकोष में योनि या सेक्स के वाचक अर्थ में नहीं प्रयुक्त हुए हैं। बालक-बालिका शब्द यहाँ नहीं हैं। बाल शब्द शिशु का पर्याय है। बाला शब्द कुमारी का पर्याय है। कुमारी शब्द कुमारी कन्या के अर्थ में आया है परन्तु कुमार शब्द उस अर्थ में नहीं मिलता है। नाट्यवर्ग में यह शब्द युवराज अर्थ में आया है।

'कुल' शब्द ९ पर्यायों के साथ ब्रह्मवर्ग के प्रारम्भ में 'वंश' अर्थ में आया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परिवार शब्द अमरकोष में नहीं मिलता। सिंहादिवर्ग में प्राणियों के समूह के लिए वर्ग, संघे, समाज तथा निकाय शब्द अवश्य संगृहीत मिलते हैं।

पति और पत्नी दोनों के युग्म के लिए प्रयुक्त 'दम्पती' शब्द के चार पर्याय अमरकोष में परिगणित हैं। साथ ही, पति-पत्नी के लिए पृथक्-पृथक् शब्द तथा माता-पिता के लिए "पितरौ" शब्द अमरकोष में उपलब्ध है। सौतेली माँ तथा सौतेले पिता के लिए शब्द नहीं हैं जबकि सौतेले पुत्र के लिए वैमात्रेय शब्द का उल्लेख हुआ है। ऐसी पुत्री के लिए भी कोई शब्द नहीं दिया गया है। अमरकोष में 'अनाथ' के लिए कोई शब्द नहीं आया है 'विधवा' शब्द मिलता है जो वय के अनुसार कुमारी, गौरी, मध्यमा, तरुणी, स्वयंवरा, चिरण्टी क्रम में आया है। स्त्रियों के १२ भेदों में पति-पुत्रादिमती 'सभर्तृका', शिशुरहित 'अशिश्वी' तथा पुत्रपतिरहित' 'अवीरा' आदि शब्द मिलते हैं।

अमरकोष में स्त्रियों के गुणों को प्रकट करने वाले शब्दों का बाहुल्य है। उपपति, पतिव्रता, कृतसापत्निका, प्रथमोढा, स्वयंवरा, पतिपुत्रादिमती, कुलस्त्री, अभिसारिका, कुलटा, कोपना, उत्तमा, कृताभिषेका महिषी, अन्यनृपस्त्रियाँ भोगिन्यः, कामुका, कामुकी, सखी, वृद्धा, प्राज्ञी, धीमती, गोपपालिका, आभीरी, वैश्यजात्युत्पन्न अर्या, क्षत्रियजात्युत्पन्न क्षत्रिया, स्वयं अध्यापिका उपाध्याया, मंत्रव्याख्याकृत् आचार्या, स्त्रीपुंसचिह्नयुक्त पोटा, वीरपत्नी, वीरमाता, प्रसूता, कोटवी, दूती, कात्यायनी ( अर्धवृद्धा ), स्वतन्त्र केशविन्यासादि में निपुण 'सैरन्ध्री', अन्तःपुरचारिणी।

असिक्नी, वेश्या, उनमें प्रमुख वारमुख्या, कुट्टनी, दैवज्ञा इत्यादि शब्द ऐसे हो हैं। रजस्वला, दोहदवती, विगतार्तवा, गर्भिणी, द्विरूढ़ा, पुनर्भू, ऐसी पत्नी का पति दिधिषु; ऐसी ब्राह्मणपत्नी अग्रेदिधिषुः शब्द प्रमुख हैं।

स्त्रियों से सम्बद्ध शब्द गर्भाशय, गर्भ, सूतिमास, शुक्रशोणित समुदाय 'कलल', नपुंसक, स्तनपा तथा बाल्य, तारुण्य, वृद्धत्व अवस्थाएँ एवं दुर्बल, मांसल आदि के लिए भी शब्द अमरकोष में परिगणित हैं।

अमरकोष में पारिवारिक सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले पर्याप्त शब्द उपलब्ध होते हैं। भ्राता, स्वसा, पुत्रौ ( पुत्र और पुत्री ), भ्रातरौ ( भगिनी सहित भ्राता ), सोदर्य, सगोत्र, बान्धव, सपिण्ड, अग्रज तथा अनुज शब्द यहाँ संगृहीत हैं। मनुष्यवर्ग में पितामह, मातामह, प्रपितामह, पौत्री, पितृव्य, मातुलानी, भ्रातृव्य (भतीजा), श्वसुर, श्वश्रु तथा इन दोनों का युग्म "श्वश्रूश्वसुरौ", श्यालकः, जामाता, वधू, देवर, ननद, भाइयों की पत्नियाँ 'यातरः', भ्रातृजाया ( भाभी ) आदि शब्द परिगणित हैं परन्तु भानजी, चाची, चचेरे भाई, पौत्र, श्याली, जेठानी, जेठ, जीजा जैसे सम्बन्धों के लिए शब्दों का अभाव है। बुआ का पुत्र 'पैतृष्वसेय' मौसी का पुत्र' मातृष्वसेय' तथा भानजे के लिए 'भागिनेय' शब्दों का उल्लेख हुआ है।

अमरकोष में कुछ ऐसे शब्द भी मिलते हैं जिनके द्वारा तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था तथा सामाजिक सम्बन्धों का बोध होता है। मनुष्यवर्ग में सुत, अपत्य,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

दुहिता के पर्यायों के बाद पुत्रों के भेद कानीन ( कन्याजात ), सौभागिनेय, पारस्त्रैणेय, वैमात्रेय, बान्धकिनेय ( कुलटाजात ), कौलटिनेय ( सती भिक्षुणी से उत्पन्न ), कुण्ड ( जीवित पति के रहते जार पति से उत्पन्न ), गोलक ( पति के मृत होने पर जार पति से उत्पन्न ) तथा औरस इत्यादि संगृहीत हैं।

## पशु-पक्षी

इस विभाग के अवान्तर भागों का अध्ययन अमरकोष के सिंहादिवर्ग, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रवर्ग में परिगणित पशुओं के पर्यायों से किया जायगा। पशु-सामान्य के लिए प्रयुक्त 'मृग' या 'पशु' शब्द अमरकोष में अप्राप्त है। इस सम्बन्ध का "गो" शब्द ( अमर० ३।३।२५ ) आया है। वैश्यवर्ग में 'गो' शब्द वृषभ के ९ तथा गाय के ९ पर्यायों में समानरूप से आया है। 'पशुरज्जु' ( अमर० २।९।७३ ) इत्यादि में अवश्य 'पशु' शब्द का उल्लेख हुआ है। शूद्रवर्ग में पठित 'बर्कर' ( अमर० २।१०।२३ ) शब्द तरुण पशु का द्योतक है। लिंग के प्रत्ययों के आधार पर ही इन पशुओं के लिंग में भेद स्थापित किया गया है। वन्य पशु तथा पालतू पशु के भेदक शब्द अमरकोष में नहीं मिलते। सिंहादिवर्ग के अन्त में 'गृह्यकः' ( गृहासक्त पशु ) एक सामान्य शब्द अवश्य आया है। शूद्रवर्ग ( अमर० २।१०।११ ) में जावालः तथा अजाजीवः शब्द गड़रिये के लिए प्रयुक्त हैं। वैश्यवर्ग में गोपाल ( अहीर ) के ६ पर्याय परिगणित हैं। चरागाह के लिए शब्द अप्राप्त है। भूमिवर्ग ( अमर० २।१।१३ ) में गोष्ठ, गोस्थानक ( गोशाला, पशुशाला ) तथा गोष्ठीन शब्द प्राप्त होते हैं।

अमरकोष में कृषि से सम्बद्ध उपयोगी जानवरों के लिए, आखेटयोग्य जानवरों के लिए तथा व्यापार इत्यादि के लिए योग्य जानवरों के लिए पृथक्-पृथक् शब्द नहीं दिए गए हैं। सिंहादिवर्ग के अन्त में 'गृह्यकः' ( गृहासक्त पशु ) एक सामान्य शब्द अवश्य आया है। वैश्यवर्ग ( अमर० २।९।५८ ) में आया शब्द 'पादवन्धनम्'—गाय, भैंस, घोड़े आदि बाँधे जाने वाले पशुओं का द्योतन करता है। 'गोः' ( गो ) शब्द वैश्यवर्ग में वृषभ के ९ तथा गाय के ९ पर्यायों में समान रूप से आया है।

अमरकोष में सामान्य 'साँड़' के लिए ३ पर्याय देकर 'षण्डो गोपतिविट्चरः' ( अमर० २।९।६२ ) में वृषभ से भिन्न स्वच्छन्द विचरण करने वाले साँड़ का उल्लेख है। इसके अतिरिक्त महोक्ष ( बड़े डील वाले बैल ), जरद्गवः ( वृद्ध वृषभ ), जातोक्ष ( जवान बैल ), युग्यः, प्रासंग्यः, शाकटः ( पहले-पहल काष्ठ वहन करने वाले तथा गाड़ी खींचने वाले बैल ), हालिक, सैरिक ( हल में जुते बैल ), धूर्वह ( धुरा वहन करने वाले ), तथा सर्वधुरीणः ( दाँये-बाँयें चलने वाले बैल ) शब्दों का परिगणन हुआ है। गाय के बछड़े के लिए प्रयुक्त 'शकृत्करि' शब्द के अतिरिक्त तर्णकः ( शीघ्र पैदा हुए बछड़े ), वत्सतरः (जोतने योग्य बछड़े), आर्षभ्यः (साँड़ बनाने योग्य बछड़े), नस्तितः, नस्योतः ( नाथे हुए ), प्रष्ठवाह् ( हल के साथ चलना सिखाने हेतु काष्ठबद्ध

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बछड़े ) तथा वात्सकम् ( बछड़ों का झुण्ड ) शब्दों का परिगणन हुआ है। वृषभ से सम्बद्ध विशेष शब्द वहः ( वृषभस्कन्ध ) तथा सास्ना ( गलकम्बल ) संगृहीत हैं।

गायों के पर्यायों के बाद उनके गुण के अनुसार नैचिकी ( उत्तम गाय ), सुकरा ( सीधी ), सुव्रता ( दुहने में सुकर ), धेनुष्या ( बंधक रक्खी गई ), पीवरस्तनी तथा द्रोणदुग्धा ( एक द्रोण परिमाण-भर दूध देने वाली ), रंग के अनुसार शवली, धवला इत्यादि, वय के अनुसार एकहायनी, द्विहायनी, बहुसूति ( बहुत बार ब्याई हुई ), नवसूतिका, समांसमीना ( प्रति वर्ष बच्चा देने वाली ), चिरप्रसूता ( बहुत समय को ब्याई, बकेनी ), प्रष्ठौही ( प्रथम बार गर्भधारण की हुई ), एवं वन्ध्या, स्रवद्गर्भा ( जिसका गर्भ गिर गया हो ), सन्धिनी ( साँड़ के साथ संगम की हुई ), वेहद् ( संगम से नष्टगर्भा ), काल्या, उपसर्पा ( मैथुनेच्छुक ) शब्द भी अमरकोष में आये हैं। इसके साथ ही ऊधस् ( थन ), कीलक ( खूँटा ) तथा दाम ( बाँधने की पशुरज्जु ) इत्यादि का उल्लेख भी हुआ है। वैश्यवर्ग में गाय से सम्बद्ध शब्द गोपाल, गोकुल ( गायों का झुंड ) तथा अशितं गवीनम् ( गायों के चराने का पुराना स्थान ) भी आये हैं।

पालतू पशुओं में मेष, वृष्णि आदि भेड़ के पर्याय, अजः और अजा ( बकरा, बकरी ), उष्ट्र और औष्ट्रकम् ( ऊँट आदि का झुंड ) तथा गर्दभ शब्दों का परिगणन मिलता है, परन्तु अमरकोष में माल ढोने वाले टट्टू, खच्चर और मेमने के लिए शब्दों का अभाव है। अश्व के १३ पर्याय देकर उसके गुणों के अनुसार आजानेय ( कुलीन अश्व ) जवन ( वेगवाला ), रथ्य ( रथ में जुतने वाला ), पारसीक, काम्बोज आदि अश्व के भेद प्रस्तुत किए गए हैं। आस्कन्दित आदि अश्व की पाँच गतियों तथा अश्व-समूह के लिए प्रयुक्त अश्वीय और वाडवम् इन दो शब्दों के साथ ही कुछ विशेष शब्द भी उपलब्ध होते हैं। ये हैं—आश्वीनम् ( घोड़े द्वारा तय किया जाने वाला एक दिन का मार्ग ), हेषा ( अश्वनिःस्वन शब्द ), निगाल ( गलदेश ), प्रोथ ( अश्वनासिका ), खलीन ( लगाम ), खुर, पुच्छ तथा बालहस्त ( पुच्छाग्र ) इत्यादि।

क्षत्रियवर्ग के अन्तर्गत सेनांग के उल्लेख में हस्ति के १५ पर्याय परिगणित करके करिणी, कलभ, हस्तिसमूह के लिए शब्द ( हास्तिक ), समूह के स्वामी के लिए ( यूथनाथ ) शब्दों का उल्लेख हुआ है। हाथी के गुणों के अनुरूप मदोन्मत्त, निर्मद, गर्जित ( मद बहते हाथी ) आदि, शब्दों का उल्लेख हैं। हस्ति के अंग-प्रत्यंगों के लिए प्रयुक्त विस्तृत शब्दों के साथ ही उससे सम्बद्ध कुछ विशेष शब्द हैं—मद, तोत्रम् ( चाबुक इत्यादि ), आलान ( बन्धनाधार ), निगद, अंकुश, कक्ष्या ( मध्यबन्धनरज्जु ), सज्जना ( गलसज्जा ), कुथ ( गज-आस्तरण ), तथा वारी ( गजबन्धनस्थान ) इत्यादि।

शिकार के लिए 'आखेट' तथा मृगया शब्दों का उल्लेख होने के साथ ही सम्बद्ध शब्द व्याध, जालिक (बहेलिया), मांसिक (मांस बेचने वाला), वीतंस ( पशु-पक्षियों को फँसाने का फंदा ), कूटयंत्रम् ( ऐसा यन्त्र ) तथा मृगबन्धनी ( जाल ) इत्यादि अमरकोष में उपलब्ध होते हैं। सिंहादिवर्ग में हिंसक पशुओं—सिंह, व्याघ्र, वृक, भल्लूक,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गण्डक ( गेंडा ), शूकर, महिष, शृगाल, वानर, मृगादन ( मृगविशेष ) तथा विभिन्न हरिणों का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त वन और घरों में पाये जाने वाले जानवरों में गोधार ( स्थलगोधिका ), श्वविन् ( साही ), मूषक, सरट ( गिरगिट ), गृहगोधिका ( छिपकली ), मर्कटक ( मकड़ी ), कर्णजलौका ( गोजर ) वृश्चिक, कृमि ( क्षुद्रकीट ), शुककीट ( कपड़े का कीड़ा ), शश ( खरगोश ), गवय ( नीलगाय ), तथा बिडाल ( बिल्ली ) इत्यादि शब्द उपलब्ध होते हैं। शूद्रवर्ग के अन्तर्गत कुक्कुर के ७ पर्याय के अतिरिक्त अलर्क ( पागल कुत्ता ), विश्वकद्रु ( शिकारी कुत्ता ), शुनी ( कुतिया ) तथा विट्चर ( ग्राम्यशूकर ) जैसे निम्नस्तरीय पशुओं का उल्लेख हुआ है। कुत्ते के पिल्ले के लिए शब्द अमरकोष में उपलब्ध नहीं होता।

पातालभोगि वर्ग में पौराणिक नाग, नागेश, सर्पराज के उल्लेख के साथ ही सर्प के २५ पर्याय, जलव्याल, गोनस, अजगर, राजिल (द्विमुख सर्प ), मालुधान ( चित्र-सर्प), मुक्तकंचुक शब्दों तथा संबद्ध शब्द सर्पफण, कंचुक तथा कालकूट इत्यादि ९ स्थावरविषभेद, विषवैद्य तथा व्यालग्राही शब्द उपलब्ध होते हैं।

वारिवर्ग में जल में रहने वाले जन्तुओं—मत्स्य, गण्डक, पाठीन आदि मत्स्यभेद, कूर्म, ग्राह, नक्र तथा स्त्रीलिंग के शब्द गण्डूपदी, भेकी, कमठी, शृंगी संगृहीत हैं। सम्बद्ध शब्द जाल, शणसूत्रजाल, मत्स्यवेधन, मत्स्याधाती भी उपलब्ध होते हैं।

सिंहादिवर्ग में पक्षी के पर्याय परिगणित करके उनके समूहवाची मिथुन, युग्म, समज ( पशुवृन्द ), कापोत ( कपोतों का समूह ), शौकम् ( शुकों का समूह ), मायूर ( मयूरों का समूह ) इत्यादि शब्द दिये गए हैं। पक्षियों के अंग के लिए शब्द पक्ष ( पंख ), पक्षति ( पंखमूल ), चंचु ( चोंच ) तथा सम्बद्ध शब्द अण्ड, नीड़ तथा उड्डीन ( उड़ने की क्रिया ) भी उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त श्येन, उलूक, भरद्वाज, भृंग, शतपत्रक ( काष्ठकीट ), कुक्कुट, चटक ( गौरेया ), काक, चितल, गृध्र, कादम्ब ( बत्तख ), हंस, मक्षिका, मधुमक्षिका, वनमक्षिका, कपोत, भ्रमर तथा पतंग शब्द पक्षी तथा कीटों के लिए अमरकोष में उपलब्ध होते हैं।

## (४) शरीर के भाग, उनके कार्य तथा दशाएँ--

प्रस्तुत वर्ग अति विस्तृत है। मनुष्यवर्ग में शरीर के १२ पर्याय देकर अंग के चार पर्याय दिये गए हैं। इसके अनन्तर मनुष्य के शरीर के विभिन्न अंगों का विस्तृत विवेचन हैं। साथ ही त्वक्, मांस, रक्त, बुक्का ( हृत्स्थ मांस ), कफ, पित्त, शुक्र, वसा, शिरा, अंत्र, स्नायु, यकृत् तथा वस्ति के लिए शब्द परिगणित हैं। विभिन्न अंगों में हृदय, मस्तिष्क, गुल्म, कपाल, कशेरुका ( पृष्ठदण्ड ), करोटि ( शिरोगत अस्थिसंधि ), पादाग्र, चरण, घुटिका, पार्ष्णि, जंघा, जानु, ऊरु, गुदा, वस्ति, कट ( श्रोणिफलक ), कटि, नितम्ब, जघन, कूपक, कटिप्रोथ ( कटिस्थ मांसपिण्ड ), उपस्थ, योनि, शिश्न, अण्डकोश, त्रिक ( पृष्ठवंश के तीन अस्थिस्थान ), उदर, स्तन, कुचाग्र, वक्ष, पृष्ठ, स्कन्ध, जत्रु ( स्कंधसंधि ), कक्ष ( बाहुमूल ), पार्श्व, भुजा, करभ ( मणि-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बन्ध से कनिष्ठिका तक हस्त ), पाणि, तर्जनी आदि अंगुलियाँ, नख, चपेट ( विस्तृत अंगुलीहस्त ), रत्नि ( बद्धमुष्टि ) व्याम ( दोनों ओर दोनों हाथों का फैलाव ), पौरुष ( ऊर्ध्व हस्तपरिमाण ), कण्ठ, ग्रीवा, मुख, नासिका, ओष्ठ, चिबुक, कपोल, हनु, दन्त, तालु, जिह्वा, ललाट, नेत्र, तारक, अपांग, कर्ण, शिरः, केश, कैशिक ( केशसमूह ), अलक, भ्रमरक दो भेद, काकपक्ष ( बालकों के बाल ), केशवेश, धम्मिल्ल ( बँधे हुए केश ), शिखा, जटा, वेणि, रोम, श्मश्रु ( दाढ़ी ) आदि शब्दों से इनके विस्तार का बोध होता है। अमरकोष में नाभि, पैर की एड़ी तथा मूँछ के लिए शब्द नहीं दिये गए हैं। मल, दूषिका ( नेत्रमल ), लाला ( लार ), मूत्र तथा विष्ठा शब्द तो हैं परन्तु थूक एवं पसीने के लिए शब्द उपलब्ध नहीं हैं।

अमरकोष में शरीर के अवयवों से सम्बद्ध विकार भी वर्णित हैं। इसके तुन्दिल ( तोंदवाला ), गतनासिक, केशी, बलिभ ( श्लथवर्म ), वामन, विकलांग, खरणाः ( तीक्ष्ण नासिक ), खुरणाः ( विकट नासिक ), प्रगतजानु ( घुटनों में अन्तरालयुक्त ), ऊर्ध्वजानु, संहतजानुक, बधिर, कुब्ज, पंगु, केकर ( नेत्रवियुक्त ), खंज तथा तिलक ( शरीर में अत्यधिक तिलों वाला ) इत्यादि शब्द आते हैं।

शरीर के इन अंगों की क्रियाओं, जैसे जमुहाई लेना, सांस लेना, जन्म देना, मल-मूत्रादि त्यागना इत्यादि का उल्लेख नहीं है। इनके संज्ञारूपों का संकलन प्रथम काण्ड के सप्तम नाट्यवर्ग में हुआ है। निगारः, उद्गारः, उद्ग्राहः—निगलना, वमन करना तथा डकारने के नाम हैं। निष्ठेवः, निष्ठ्यूतिः आदि ४ पर्याय 'थूकने' के हैं। आंगिकम् ( कटाक्ष आदि ), सात्विकम् ( स्वेदस्तंभादि गुण ), नष्टचेष्टता ( बेहोशी ), संवेग, संभ्रम, स्मित, विहसित, रोमांच, रुदित, जृम्भणम् ( जम्हाई ), निद्रा तथा स्वप्न, तन्द्रा, कम्प इत्यादि ऐसे ही संज्ञा शब्द हैं। ब्रह्मवर्ग के अन्त में मैथुन ( स्त्रीसंयोग ) के लिए ५ पर्याय परिगणित हैं।

अमरकोष ( १।४।३० ) में जन्म के लिए ६ शब्द आए हैं। अमरकोष (२।८।११६) में मृत्यु के १० पर्याय तथा वध ( मारने ) के लिए ३० शब्दों का परिगणन है। मरे हुए ( मृत, परेत, प्रेत ) के लिए ७ शब्दों के साथ ही चिता, कबन्ध ( बिना धड़ का शरीर ), शव तथा श्मशान के लिए शब्द संगृहीत हैं। शव को दफनाने के लिए कोई शब्द नहीं है।

अमरकोष के मनुष्यवर्ग में मनुष्य के शरीर के विभिन्न रोगों का भी उल्लेख है। रोग के ७ पर्याय गिनाकर क्षय, पीनस, क्षुत ( छींक ), कास ( खाँसी ), शोथ (सूजन); पादस्फोट ( पैर फटना ), खजूं ( खुजली ), विस्फोट ( फोड़ा ), व्रण, कुष्ठ, अर्श ( बवासीर ), संग्रहणी, ज्वर आदि व्याधिभेद तथा अश्मरी इत्यादि रोगों का उल्लेख हुआ है। रोग से पीड़ित मनुष्य के लिए व्याधित दद्रुंण ( दाद से युक्त ), अर्शस, वातकी ( वाताधिक्य ), क्लिन्नाक्ष ( सक्लेद आँखवाला ), कफी, न्युब्ज ( रोगभुग्न ), वृहद्नाभि ( वातादिजन्य रोगयुक्त ), उल्लाघ ( रोगरहित ), कल्पः, आरोग्यम् इत्यादि शब्द उपलब्ध होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरकोष में औषध, चिकित्सा तथा वैद्य के लिए शब्द परिगणित मिलते हैं। शूद्रवर्ग में अलसः (आलसी) शब्द आया है परन्तु थकित के लिए श्रान्त या खिन्न शब्द यहाँ नहीं हैं। विशेष्यनिघ्नवर्ग में नग्न के लिए तीन पर्याय आये हैं। संकीर्णवर्ग में उद्वेग के लिए दो पर्याय दिये गए हैं।

## (५) भोजन और पेय--

अमरकोष में भोजन बनाना, उसके लिए उपकरण तथा सम्बद्ध सामग्री का जो उल्लेख मिलता है उसी का अध्ययन इस वर्ग के अन्तर्गत किया जा रहा है।

अमरकोष ( २।९।५४ ) में बुभुक्षा के ३ पर्याय तथा बुभुक्षित ( भूखे व्यक्ति, अमर० ३।१।२० ), आद्यूनः ( अत्यधिक भूखे ), आत्मम्भरि ( पेटू ), ग्रास, सपीति, सहभोजन, पिपासा, सौहित्यम् ( तृप्ति ) फेला ( जूठन ), प्रकामम् ( पर्याप्त ) शब्द गिनाये गए हैं। विशेष्यनिघ्नवर्ग में पक्व तथा संकीर्णवर्ग में पाक शब्द तृतीय काण्ड के अन्तर्गत आते हैं। यहीं दग्ध ( जला हुआ ) शब्द भी मिलता है। संकीर्णवर्ग में ही 'उपभोग के भी दो पर्याय परिगणित हैं। अमरकोष ( २।९।२७ ) में महानस ( पाकशाला ), पौरोगव ( पाकशाला का मालिक ), सूपकार ( रसोइया ), अरालिक ( पाचक ) तथा आपूपिक ( हलवाई ) शब्द भोजन बनाने वालों के लिए आये हैं।

अमरकोष में भोजन बनाने के उपकरणों में चुल्लि, अंगारधानिका, अंगार, भ्राष्ट्र, कन्दुः ( मदिरा बनाने का पात्र ), अलिंजर ( कूँड़ा ), कर्करी ( झाँझर ), स्थाली ( बटलोई ), कलश, शराव ( कसोरा ), ऋजीषम् ( ताँबा ), पानभाजनम् ( प्याला ), स्नेहपात्रम्, कुतुपः ( कुप्पी ), दर्विः ( करछुल ), दारुहस्तक ( चमचा ) इत्यादि का उल्लेख मिलता है परन्तु रसोईघर में सामान्य प्रयोग के बर्तनों में चकला, बेलन, कड़ाही, संडसी, चिमटा, कटोरी का नाम नहीं गिनाया गया है। वैश्यवर्ग में चालनी, मुसल, उलूखल, शूर्प, कण्डोल ( कंडी ), तथा स्यूत ( वस्त्रभाण्ड ) का परिगणन है, परन्तु चक्की तथा सरौते (सरवटः या शरवटः) के लिए शब्द नहीं दिया गया है। संमार्जनी ( झाड़ू ) के लिए २ पर्याय मनुष्यवर्ग में दिये गए हैं।

अमरकोष के वैश्यवर्ग में प्रणीतम् ( तैयार भोजन ), तथा सुसंस्कृतम् ( परिश्रम से पकाये सुस्वादु भोजन ) के उल्लेख के साथ ही भोज्यपदार्थों में रसाला ( चटनी ), तेमनम् ( दहीबड़ा ), अपूप ( मालपुआ ), दधिसक्तवः ( दहीमिश्रित सत्तू ) तथा यवागूः ( हलुआ ) आदि का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विधि से पकाये व्यंजनों के लिए भी शब्द यहाँ परिगणित मिलते हैं। लोहे के छड़ से पकाये गए माँस के लिए 'शूलम्', बटलोई में पकाये गए भात के लिए 'उख्यम्', रसेदार सब्जी के लिए 'पिच्छिलम्', हींग आदि से सुवासित के लिए 'वासितम्', तथा तले हुए पदार्थ के लिए 'आपक्वम्' शब्द दिए गए हैं। लाजाः ( लावा ), चिपिटक ( चिउड़ा ), धानाः ( भुने हुए जौ ) तथा संमृष्टम् ( साफ किये गए अन्न ) जैसे शब्दों का उल्लेख है परन्तु रोटी, आटा, स्वल्पाहार के लिए कोई शब्द उपलब्ध नहीं होता। यहाँ भक्तम् (भात),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भिस्सटा ( जला हुआ भात ), मण्डप ( माँड़ ), मासरः ( भात का माँड़ ), चिक्कणम् ( स्निग्ध पदार्थ ), तैल एवं घृत के लिए शब्द परिगणित हैं। वनौषधिवर्ग तथा वैश्यवर्ग के अन्तर्गत नमक, मरीच इत्यादि विभिन्न मसालों का सविस्तर उल्लेख हुआ है।

अमरकोष में शाक तथा विभिन्न तरकारियों के नाम उपलब्ध होते हैं। वनौषधि-वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न फलों में आम्र, घोण्टा ( बेर ), कर्कन्धु, मधूक ( महुआ ), उदुम्बर ( गूलर ), कपित्थ, नारंग, ब्रह्मदारु ( शहतूत ), आम्लिक ( इमली ), लकुच (बड़हल) इत्यादि का उल्लेख हुआ है, परन्तु सेव, अंजीर तथा द्राक्षा आदि का उल्लेख नहीं है।

अमरकोष के शूद्रवर्ग में विभिन्न मधुपेय, मदस्थान, मधुक्रम, पानगोष्ठी तथा सम्बद्ध शब्दों का उल्लेख मिलता है। दुग्ध, पयस्य ( दधि, आज्य इत्यादि ), द्राप्सम् ( पतला दही ), नवनीत तथा उसके ३ भेद, तक्र, उदश्वित्, मथित, मस्तु ( दधिभव ), तथा पीयूष ( ताजा दूध ) शब्द भी अमरकोष में पर्यायों सहित उपलब्ध हैं।

## (६) वस्त्र, अलंकरण तथा सज्जा—

इसके अन्तर्गत उपविभागों के आधार पर अमरकोष की सामग्री का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। अमरकोष के मनुष्यवर्ग के अन्तर्गत वस्त्र के तीन पर्याय परिगणित हैं। इसके साथ ही छाल, फल, कृमि तथा रोम को 'वस्त्रयोनि' की संज्ञा दी गई है। कल्क, क्षौम ( केले आदि की छाल से बने वस्त्र ), फालम्, कार्पासम् ( कपास आदि के फल से बने वस्त्र ), कौशेय, कृमिकोशोत्थ ( रेशम के कीड़ों से बने वस्त्र ), मृगरोम-जम् ( ऊनी वस्त्र ), नवाम्बरम्, उद्गमनीय ( धुले हुए वस्त्र ), पत्रोर्ण ( रेशमी धुला हुआ वस्त्र ), महाधन ( बहुमूल्य वस्त्र ), तथा प्रावृत ( ढके वस्त्र ) से इस वर्ग के विस्तार-क्षेत्र का अनुमान लगाया जा सकता है।

स्त्रियों के वस्त्रों में उत्तरीय ( ऊर्ध्व वस्त्र ), अन्तरीय ( अधः वस्त्र ), चोल ( चोली ), आप्रपदीन ( पैर तक लटकने वाले वस्त्र ), तथा चण्डातक (लहँगा इत्यादि) का उल्लेख है। पुरुषों के टोपी, चादर, तौलिया तथा कुर्ता आदि वस्त्रों का उल्लेख अमरकोष में उपलब्ध नहीं है। वस्त्रों की गुणदशा बताने हेतु भीं शब्द दिए गए हैं। जैसे—दैर्घ्य, विशालता, दशा ( वस्त्रप्रान्तभाग ), जीर्णवस्त्र, कर्पट ( जीर्णवस्त्र का खण्ड ), सुचेलक ( शोभन वस्त्र ), स्थूलशाटक ( मोटा वस्त्र ), इत्यादि। ओढ़ने-बिछाने के कुछ विशेष वस्त्रों के लिए भी शब्द यहाँ परिगणित हैं। जैसे—प्रच्छदपट ( चादर ), कम्बल, वितान ( चँदोवा ), दूष्य ( वस्त्रगृह, टेंट ) तथा जवनिका ( पर्दा ) इत्यादि।

अमरकोष में तुन्नवाय ( दर्जी ), तन्तुवाय ( जुलाहा ), रंगाजीव ( कपड़ों को रंगने वाला ), रजक ( धोबी ), नापित तथा चर्मकार को शूद्रवर्ग में स्थान मिला है। इनसे सम्बद्ध शब्द वेमा, सूत्रम् तथा व्यूतिः ( कपड़े को बुनना ) यहाँ मिलते हैं, परन्तु सूई तथा बटन के लिए कोई शब्द नहीं है। पादुः ( जूते ) का उल्लेख है परन्तु मोजे के लिए कोई भी शब्द परिगणित नहीं है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरकोष के वैश्यवर्ग में मार्जना ( शरीर को झाड़ना, पोछना ), अंगसंस्कार, उद्वर्तन ( उबटन आदि से स्वच्छ करना ), स्नान, चर्चा ( चन्दनादि लेपन ), विलेपनम्, प्रबोधनम् ( गन्ध से शरीर को वासित करना ) तथा वासित ( सुगन्धित वस्त्र ) इत्यादि का उल्लेख हुआ है जो उस समय के समाज में प्रचलित अंगसंस्कार और सज्जा की ओर इंगित करना है। शरीर को चित्रित करने का प्रचलन भी रहा होगा जिसके लिए अमरकोष में 'पत्रलेखा' शब्द आया है। शरीर तथा वस्त्रों को सुगन्धित करने के लिए विभिन्न द्रव्यों का विस्तृत उल्लेख अमरकोष में मिलता है। कुंकुम, लाक्षा, लवंग, जायकम् (गन्धद्रव्य), वासयोग ( वस्त्रादि को सुगन्धित बनाने हेतु गन्धचूर्ण ), अगुरु, कालागुरु, यक्षधूप, कृत्रिमधूप, श्रीवेष्ट ( देवदारु के गोंद से बने गन्ध द्रव्य ), कस्तूरी, कंकोल, कर्पूर, चंदन, हरिचन्दन, रक्तचन्दन, जातीफल ( जायफल ), यक्षकर्दम ( लेपविशेष ), इत्यादि ऐसे ही पदार्थ हैं।

ऐश्वर्य तथा आराम की वस्तुओं के लिए प्रयुक्त शब्दों में आभोग ( सेवा-शुश्रूषा ), उपधान ( तकिया ), शय्या, पर्यंक, प्रदीप, आसन, संपुटक ( पान आदि रखने का डिब्बा ), पतद्ग्रहः ( पीकदान ), कंकतिका ( कंघी ), पिष्टातः ( हुक्का ), दर्पण तथा व्यजन ( पंखा ) इत्यादि के पर्याय परिगणित हैं। 'अधिवासनम्' शब्द पान को गुलाबजल इत्यादि से सुवासित करने के अर्थ में आया हैं।

मनुष्य के अलंकरण से संबन्धित शब्द अमरकोष के वैश्यवर्ग में ही आये हैं। यहाँ अलंकार, अलंकृत तथा अलंक्रिया के साथ ही प्रसाधन, रोचिष्णु ( अतिशोभन ) शब्दों का उल्लेख हुआ है। स्त्रियों के आभूषणों में बालपाश्या ( सीमन्तभूषण ), ललाटिका, कर्णिका, कुण्डला, कण्ठभूषा, लम्बनम् (कंठाभूषण, लटकन) तथा माला और उसके भेद—गर्भक ( केश में सज्जित ), प्रभ्रष्टकम् ( शिखा से लटकती हुई माला ), ललाटकम् ( ललाट पर लटकती ), प्रालम्बिका ( गले में लटकती स्वर्णकृत ), शेखर ( शिखा में धारित ), उरःसूचिका ( मोती से बनी माला ), हार तथा उसके भेद देवच्छन्दः ( शतयष्टि हार ), एकावली, नक्षत्रमाला इत्यादि तथा कंकण, मेखला, नूपुर तथा किंकिणी इत्यादि प्रमुख हैं। पुरुषों के आभूषणों में किरीट, शिरोरत्न, तरल ( हार का मध्यमणि ), वलय, केयूर, अंगुलीयक, अंगुलिमुद्रा ( नामांकित अँगूठी ), तथा शृङ्खला ( पुरुष का कटिभूषण ) प्रमुख है और अमरकोष में परिगणित हैं।

## (७) आवास, गृह—

अमरकोष के पुरवर्ग में गृह के १६ पर्याय देकर हर्म्य ( धनिकों का गृह ), प्रासाद ( देव तथा नृप का आवास ), राजसदन तथा देव तथा राजाओं के लिए गृहभेद वर्णित है। अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द हैं— मठ, मदिरागृह, पर्णशाला इत्यादि। गृह से सम्बद्ध शब्दों का विस्तृत उल्लेख यहाँ उपलब्ध होता है—सभागृह, चतुःशालम् ( आमने-सामने के कक्ष, चैत्य ( यज्ञशाला ), वाजिशाला, शिल्पिशाला, पानीयशालिका, गर्भागार (गृहमध्य), सूतिकागृह, अन्तःपुर, अलिन्द (द्वारबहिःप्रकोष्ठ), अट्ट (हर्म्य का पृष्ठभाग), अन्तर्द्वार, पक्षद्वार ( पार्श्ववर्ती द्वार ), गवाक्ष, मण्डप, देहली, अंगण, कपोतपालिका;

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्वार, शिला ( द्वारस्तंभ के नीचे स्थित काष्ठ ), नासा ( द्वारस्तंभ के ऊपर स्थित काष्ठ ), वेदिका, तोरण, कपाट, अर्गल, सोपान, मुख, ( गृह आदि का मुखभाग ), निःश्रेणि ( सीढ़ी ), भित्ति ( दीवाल ), वलीक ( गृहाच्छादन ), पटल ( छादन ) तथा वलभी ( छादनार्थ वक्र दारु ) इत्यादि शब्द सपर्याय यहाँ परिगणित हैं। ताला, चाबी, फर्श, छत, चिमनी तथा नाली इत्यादि के लिए शब्द अमरकोष में संगृहीत नहीं हैं।

## (८) कृषि तथा वनस्पति--

अमरकोष के वैश्यवर्ग में कृषि को 'अनृत' तथा कटे हुए खलिहान में रक्खे धान्य को 'ऋत' कहा गया है। वहीं खेत ( क्षेत्र ) के तीन तथा कृषक के चार पर्याय परिगणित हैं। इसके साथ ही व्रैहेय ( व्रीहिक्षेत्र ), शालेय, मौद्‌गीनम् ( मूंग का खेत ), बीजाकृत, ( बोया गया खेत ), हल ( हल-जुता खेत ), जैसे शब्द भी मिलते हैं।

कृषि के साधनों में कोटिश ( मुद्‌गर ), प्राजनम् ( चाबुक ), खनित्रम् ( कुद्दाल ), लवित्रम् ( हँसुवा ), आबन्धः ( युगबन्धन-रज्जु ), फलम् ( हल का लौहमय काष्ठ ), ईशा ( हलदण्ड ) इत्यादि का उल्लेख है।

अमरकोष में फसल के लिए शब्द परिगणित नहीं हैं। उत्पन्न धान्य के लिए कई शब्द यहाँ मिलते हैं, शूक ( धान्य का तीक्ष्णाग्र ), ऋद्धम् ( अपनीत तृण एवं राशीकृत धान्य ), पूतम् ( अपनीत बुस धान्य ), तथा गवेधुः ( मुनियों का अन्नविशेष ) ऐसे ही शब्द हैं। सम्बद्ध शब्द किंशारु ( ठूंठ ), कणिश ( सस्यमंजरी ), स्तम्ब ( तृणगुच्छ ), नाल ( गुच्छकाण्ड ), बुसम् ( भूसा ), शमी ( फली ) भी उपलब्ध होते हैं।

अनाजों में व्रीहि, यव, तोक्य ( हरितयव ), हरेणु, ( मटर ), कोद्रव ( कोदों ), मसूर, वनमुद्‌ग ( मूँग ), सर्षप ( सरसों ), सिद्धार्थ ( धवल सर्षप ), क्षवः ( कृष्ण सर्षप ), गोधूम, कुल्माष ( आधे सूखे जौ ), चणक ( चना ), तथा तिलपेज ( निष्फल तिल ) इत्यादि के लिए शब्द परिगणित मिलते हैं।

अमरकोष के वनौषधिवर्ग में विभिन्न प्रकार के वृक्ष तथा वनस्पतियों का सविस्तर उल्लेख हुआ है।

## (९) शिल्प, कलाएं तथा सम्बद्ध उपकरण--

शिल्पकार्य क्योंकि शूद्रों को सौंपा गया है, अतः अमरकोष के शूद्रवर्ग में शिल्प, शिल्पी, कुलक ( शिल्पीकुल का प्रधान ) इत्यादि शब्दों के बाद मालाकार, कुंभकार, लेपक ( पुताई करने वाला ), तन्तुवाय, शस्त्रमार्जः ( शस्त्रों को तेज करने वाला ), चर्मकार, लौहकार, स्वर्णकार, शांखिक ( शंख से चूड़ी आदि बनाने वाला ), वर्धकी, तुन्नवाय ( दर्जी ), चित्रकार, ग्रामतक्ष तथा कोटतक्ष, नापित, रजक, शौण्डिक ( सुराजीविन् ), मायाकार ( इन्द्रजालिक ), नट, मार्दंगिक, वेणुध्मा तथा वीणावादः इत्यादि शिल्प तथा जीविका कमाने वालों का उल्लेख है।

शिल्प में प्रयुक्त उपकरणों का प्रयोग भी यहाँ मिलता है। ऐसे शब्दों में नाराची ( स्वर्णकारों की तुला ) शाण, पत्रपरशु ( सोने को छेदने हेतु ), एषिका, मूषा ( स्वर्ण,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रजत गलाने की घरिया ), चर्मप्रसेविका ( धौंकनी ), वेधनिका, कृपाणी, पाषाणदारण ( घन या हथौड़ा ), क्रकच ( काष्ठविदारण शस्त्र ), इत्यादि प्रमुख हैं।

अमरकोष में प्रतिमाकार तथा उसके कर्म के लिए कोई पृथक् शब्द नहीं है। ईंट, चूना इत्यादि का उल्लेख भी यहाँ नहीं मिलता। वैश्यवर्ग से मरकत, पद्मराग, मुक्तक, प्रवाल, स्वर्ण, रजत, रीतिः ( पीतल ), ताम्र, लौह, मण्डूर ( लौहमल ), काचः, पारद तथा सीसकम् ( सीसा ) इत्यादि धातुओं का परिगणन भी हुआ है।

## (१०) यातायात और नौविद्या--

अमरकोष ( २।१।१४ ) में मार्ग के १२ पर्याय परिगणित करके सत्पथः, कापथः, अपथम्, चतुष्पथम् ( चौराहा ), प्रान्तरम् ( छायाहीन मार्ग ), कान्तार ( दुर्गम मार्ग ), गव्यूतिः (दो कोस का मार्ग), नल्वः ( चार हजार हस्त लम्बे मार्ग ), घण्टापथ ( राजमार्ग ), उपनिष्कर ( गाँव का राजमार्ग ), इत्यादि शब्दों का परिगणन हुआ है। सेतुः, आलिः शब्द पुल के लिए प्रयुक्त हैं। रथ्या आदि तीन पर्याय अमरकोष ( २।२।३ ) में गली के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

वाहन सामान्य के लिए 'यान' शब्द प्रयुक्त करने के साथ ही शकट, गन्त्री ( छोटी गाड़ी ), शिविका ( पालकी ), तथा वैनीतकम् ( पालकी आदि ढोने वाली सवारी ) का उल्लेख अमरकोष में मिलता है। रथ, रथांग, रथभेद तथा रथपरिवार का सविस्तर वर्णन अमरकोष में मिलता है। शतांग ( युद्ध का रथ ), पुष्परथ ( यात्रा, उत्सव आदि में प्रयुक्त ), प्रवहणम् ( पर्दासहित रथ ), द्वैप ( व्याघ्रचर्ममण्डित रथ ), पांडु-कम्बली ( ऐसे ढके रथ ), वास्त्रः ( वस्त्र से आच्छादित रथ ) इत्यादि शब्द इस बात के द्योतक हैं कि रथ उस समय का मुख्य वाहन रहा होगा। दक्षिणरथ ( रथ के परिवार ), रथी ( रथ से युद्ध करने वाले ), नियन्ता, यन्ता, सूत, सारथि, सव्येष्ठा, तथा रथ्या ( रथसमूह ) के लिए भी शब्द परिगणित हैं। धुर् ( रथ की धुरी ), रथांग, चक्र, नेमि, पिण्डिका ( पहिये के बीच वाला भाग ), अणि ( कीली ), रथगुप्तिः ( ओट ), युगन्धर ( रथ सम्बद्ध तुला ), अनुकर्ष ( रथ के नीचे का काष्ठ ), तथा प्रासंग ( फड़ ) इत्यादि शब्द रथ के विभिन्न अंगों के लिए आये हैं।

वारिवर्ग में नाव्य मार्ग के उल्लेख के साथ ही तरपण्य ( नदी आदि को पार करने पर देय मूल्य ), द्रोणी ( काष्ठमयी जलवाहिनी ), नौका, उडुप ( अल्प नौका ), नाविक, पोतवणिक्, पोत का नियामक, कैवर्त ( केवट ) शब्दों के पर्याय संकलित हैं। उपकरणों में अरित्र ( चप्पू ), काष्ठकुद्दाल, सेकपात्र, कूपक ( पोत का मध्य स्तम्भ ), तथा नौकादंड शब्द मिलते हैं। बन्दरगाह, मस्तूल तथा बन्धनरज्जु ( नाव आदि को किनारे पर बाँधने की रस्सी ) इत्यादि का उल्लेख अमरकोष में प्राप्त नहीं होता है।

## (११) सम्पत्ति तथा वाणिज्य-व्यापार--

सम्पत्ति, धन, तथा द्रव्य सभी वैश्यवर्ग ( अमरकोष २।९।९० ) में धन के अन्तर्गत परिगणित हैं। इसके अतिरिक्त कार्षापण ( रुपया ), पण ( पैसा ), कोष, कृष्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( ताम्रादि धातुएँ ), रूप्य ( गिन्नी आदि सिक्के में बना धन ), मूँगा, रत्नों की विविध जातियाँ, स्वर्ण, शृंगीकनकम् ( आभूषण बना हुआ स्वर्ण ), रजत आदि सपर्याय आये हैं। परन्तु 'मुद्रा' के लिए कोई शब्द अमरकोष में नहीं हैं। स्वर्गवर्ग में निधि ( खजाने ) का उल्लेख है। याचित को वैश्यवर्ग में 'मृत' और अयाचित को 'अमृत' कहकर भीख माँगने को हेय कहा गया है। यहीं ऋण के तीन पर्याय देकर वृद्धिजीविका ( ऋण देकर जीविका चलाना ), याचितकम् ( भीख में प्राप्त ), याचक, आपमित्यकम् ( बदले में प्राप्त ), अधमर्ण तथा उत्तमर्ण ( क्रमशः ऋण लेने तथा देने वाले ) तथा कुसीदिक ( ब्याज पर जीविका निर्वाह करने वाले ) आदि का उल्लेख है।

वाणिज्य के सम्बन्ध में वैश्यवर्ग में वणिक्, विक्रेता, वाणिज्यकर्म, पुरवर्ग में आपण ( बाजार ), पण्यवीथिका ( दूकानों की पंक्ति ), तथा वैश्यवर्ग में ही मूल्य, मूलधन, लाभ, परिदान ( अदल-बदल ), न्यास ( धरोहर ), प्रतिदान ( लौटाना ), क्रय्य ( वस्तु ), क्रेय-विक्रेय, सत्याकृति ( बयाना ), विक्रय, यौतव ( मान ), विभिन्न परिमाण, इत्यादि शब्दों का संकलन है। वारिवर्ग के अन्तर्गत पोतवणिक् का उल्लेख जलमार्ग से व्यापार की ओर इंगित करता है। अमरकोष में धनिन् (अमर० ३।१।१०), कृपण ( अमर० ३।१।४८ ), तथा दरिद्र ( अमर० ३।१।४९ ) शब्द हैं परन्तु दायाद्य या उत्तराधिकार के लिए कोई शब्द नहीं है। शूद्रवर्ग में चोर, वंचक अमर० ३।१।४ ), चौर्यकर्म, लोप्त्रम् ( चौर्यधन ), पठित हैं। वेतन शब्द अमरकोष में मिलता है परन्तु आय-व्यय, ब्याज, किराया, किराये पर लेना, दुकान, सस्ता, महँगा, इत्यादि के लिए यहाँ शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं। क्षत्रियवर्ग में 'कर' का भी उल्लेख मिलता है।

## (१२) नभमण्डलीय सम्बन्ध, आकार तथा परिमाण--

इस वर्ग के अन्तर्गत आने वाले बहुत कम शब्द ही अमरकोष में संकलित हुए हैं। दिग्वर्ग में दिशा के पर्याय परिगणित करके चारों दिशाओं का उल्लेख है। सिंहादिवर्ग ( अमर० २।५।४२ ) के अन्त में 'राशि' शब्द धान्य आदि के समूह के लिए आया है। विशेष्यनिघ्नवर्ग में विशाल, स्थूल, अल्प, सूक्ष्म, प्रभूत, सकल, विरल, समीप, दूर, दीर्घ, उन्नत, ह्रस्व, अवनत, वक्र, वर्तुल, ऋजु, नूतन, कोमल, अर्ध, पूर्ण, विस्तृत, सम ( संपूर्ण ), तुल्य इत्यादि के लिए शब्द परिगणित हैं। मनुष्यवर्ग में वस्त्रों के सम्बन्ध में दैर्घ्य और विशालता शब्द आये हैं।

भूमिवर्ग के अन्त में 'नल्व' शब्द 'हस्त का चतुःशत परिमाण' अर्थ में आया है। वैश्यवर्ग में अक्ष, पल, कुडविस्त, तुला, भार, इत्यादि तौल के प्रतिमान दिये गये हैं। तौलना, मापना या परिमाण के लिए 'यौतवम्' तथा 'मानम्' शब्द मिलते है। आढक, द्रोण, खारी, वाह, निकुंचक तथा कुडव—ये पाँच प्रस्थमान के अन्तर्गत परिगणित हैं। अमरकोष में चौकोर, समतल, तथा आर-पार जैसे शब्द नहीं मिलते हैं। यहाँ केन्द्र शब्द भी उपलब्ध नहीं होता है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## (१३) मात्रा तथा संख्या—

अमरकोष के वैश्यवर्ग में पादः ( चौथाई ) तथा भागः ( हिस्सा ) शब्द आये हैं, इसी वर्ग में नियम रूप में संख्याओं का भी प्रयोग उल्लिखित है। प्रभूत, विपुल, अतिशय प्रभृति मात्रावाची शब्द अमरकोष में मिलते हैं परन्तु प्रत्येक, भीड़, अधिकतर इत्यादि शब्द यहाँ उपलब्ध नहीं होते हैं।।

अमरकोष के सिंहादिवर्ग के अन्त में सजातीय प्राणिसमूह के लिए 'वर्ग', सजातीय या विजातीय प्राणि या जन्तुसमूह के लिए 'संघ', सजातीय जन्तुसमूह के लिए 'कुल', पक्षिसमूह के लिए 'यूथ', पशुवृन्द के लिए 'समज' तथा पशुभिन्न प्राणियों के लिए 'समाज', सधर्मियों के समूह के लिए 'निकाय' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।

## (१४) समय—

अमरकोष के कालवर्ग में काल के पर्याय देकर तिथि, दिवस, त्रिसन्ध्य, तमिस्रा (तमोयुक्ता), ज्योत्स्नी, पक्षिणी ( आगामी और वर्तमान दिनों के मध्य की रात्रि ) आदि रात्रिभेद, गणरात्र, प्रहर, प्रदोष, अर्द्धरात्रि, पर्व, पूर्णिमा, अमावस्या, ग्रहणकाल, निमेष, काष्ठा, कला आदि कालभेद, मास, ऋतु, अयन, वत्सर, तथा रात्रि, दिन सम होने के लिए शब्द दिये गये हैं। मार्गशीर्ष से प्रारंभ करके कार्तिक तक सभी मास, हेमन्त आदि षड्ऋतुएँ तथा उनका मासगत विभाजन, पैत्र, दैव या ब्राह्म अहोरात्र, कल्प, मन्वन्तर, प्रलय इत्यादि के लिए पठित शब्दों से इस वर्ग की पूर्णता का अनुमान किया जा सकता है। सद्यः, अद्य, ह्यः, श्वः, परश्वः, तदा, सदा तथा प्राक् शब्द अव्यय वर्ग ( अमर० ३।४।२२ ) के अङ्ग हैं।

## (१५) प्रत्यक्ष ज्ञान—

अमरकोष के धीवर्ग के अन्तर्गत, रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श, इन्द्रिय विषय, इन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय तथा ज्ञानेन्द्रिय का विभाग, तुवर ( कषाय सहित ) मधुर, लवण, कटु, तिक्त, अम्ल आदि षड्रस, आमोद, सुगन्धि, आमोदी ( मुख को सुगन्धित करने वाले पदार्थ ), दुर्गन्ध, इत्यादि के लिए शब्द दिये गये हैं। इसके साथ ही धूसर, शुभ्र, कृष्ण, पीत, हरित, रक्त, शोण, अरुण, पाटल ( श्वेतरक्त ), कपिश, धूमता ( कृष्ण-युक्त रक्त ), पिंगल ( भूरा ), चित्रम् ( चितकबरा ), इत्यादि रंगों के लिए शब्द संगृहीत हैं। स्वादु ( अमर० ३।३।९४ ), दृढ़, मृदु तथा तीक्ष्ण जैसे शब्द अमरकोष में परिगणित हैं।

## (१६) मनोभाव, स्वभावविषयक नैतिक तथा कलात्मक भाव—

इस वर्ग में आने वाले शब्दों का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। पूर्ण अमरकोष में यत्र-तत्र ऐसे शब्द मिलते हैं।

कालवर्ग के अन्त में पाप, सुकृत, हर्ष, कल्याण, भाग्य, कारण, आत्मा, प्रकृति, अवस्था, सत्त्वादि गुण, जन्म, प्राणी, जाति, व्यक्ति एवं जन जैसे शब्द आये हैं। इसी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रकार धीवर्ग के अन्तर्गत बुद्धि, मेधा, संकल्प, विचारण, तर्क, संशय, निश्चय, नास्तिकता, भ्रम, ज्ञान, मोक्ष तथा अज्ञान इत्यादि शब्द परिगणित हुए हैं।

नाट्यवर्ग में भाव तथा अनुभाव के क्रम में अहंकार, अनादर, लज्जा, क्षान्ति ( सहनशीलता ), असूया, चिन्ता, प्रसाद, विस्मय, शोक, पश्चात्ताप, उन्माद, क्रोध, प्रेम, इच्छा, लालसा, आधि ( मनःपीड़ा ), स्मृति, उत्कण्ठा, शाठ्य, प्रमाद, कौतूहल, संभ्रम, व्रीड़ा, ईर्ष्या, भय, कम्पन तथा स्त्रियों के विलास आदि हावों के लिए शब्द गिनाए गए हैं। स्वर्गवर्ग में त्वरा के ११ पर्याय और नरकवर्ग में दुःख के ९ पर्याय भी इसी कोटि में आते हैं। संकीर्णवर्ग में घृणा के ४ पर्याय हैं। ब्रह्मवर्ग में आए विवेक, पवित्र, स्वाध्याय, यम, नियम आदि इसी वर्ग के शब्द है।

अमरकोष में गर्वीला, धृष्ट, उदारचित्त, सहृदय, वदान्य, हृष्टमानस, विमन, सरल, तत्पर, उत्सुक, वत्सल, दयालु, दीर्घसूत्री, असमीक्ष्यकारी, लुब्ध, विनीत, शालीन, भीरु, सहिष्णु, आपन्न, व्याकुल, निकृष्ट, मलिन, पवित्र, पुरातन, नूतन, कोमल, इत्यादि अनेक शब्द मिलते हैं। कृतज्ञ, भक्त, ऋत, कुरूप इत्यादि शब्द परिगणित नहीं हैं।

## (१७) मस्तिष्क तथा विचार--

इस वर्ग में आने वाले बुद्धि, मेधा, तर्क, निश्चय, संशय, सिद्धान्त, भ्रम, ज्ञान, विज्ञान, अज्ञान, समस्या, प्रश्न, उत्तर इत्यादि शब्द अमरकोष में स्थान रखते हैं। विशेष्यनिघ्नवर्ग में भी प्रवीण, प्रगल्भ, प्रबुद्ध, एकाग्र, विस्मृत, विद्वान्, मूर्ख, उन्मत्त इत्यादि शब्द आये हैं। ब्रह्मवर्ग के अन्तर्गत अध्यापक, गुरु, आचार्य, शिष्य, अभिप्राय इत्यादि शब्द परिगणित हैं। विस्मरण, पाठशाला, स्थिर, निराकरण, व्याख्या तथा शंका इत्यादि शब्द अमरकोष में नहीं आए हैं।

## (१८) शब्द, वाणी, अध्ययन-लेखन—

शब्दादिवर्ग में वचन के १३ पर्याय बताकर वाक्य, वाचक शब्द, उदात्तादि स्वर, प्रश्न, किंवदन्ती, वृतान्त, आह्वान, संहूति, आम्रेडित, घोषणा, काकु, भर्त्सना, उपालम्भ, मैथुन सम्बद्ध अक्षर, आलाप, प्रलाप, अनुलाप, विलाप, विप्रलाप, संलाप आदि, रुशती, कल्या, सान्त्व, संगत, निष्ठुर, ग्रस्त, निरस्त ( जल्दी-जल्दी बोलना ), अबद्ध, आहत, अविस्पष्ट, वितथ इत्यादि वाग्भेद, मर्मर, शिंजित, वाशित ( पक्षिशब्द ), वीणाक्वणन, कोलाहल तथा प्रतिध्वनि इत्यादि के लिए शब्द परिगणित हैं।

नाट्यवर्ग में सप्तस्वर, काकली, कल, मन्द्र तथा तार ध्वनियाँ पठित हैं। भाषा और वचन समानार्थी कहे गए हैं। अमरकोष ( ३।२।१८२ ) में अक्षर का उल्लेख है। अमरकोष ( २।८।१५ ) में लेखक, लिपिकार और लिपि के लिए भी शब्द हैं। शान्त रहने के लिए कोष या निघण्टु ( शब्दादिसंग्रह ), पत्र, कागज, लेखनी, मसि, पुस्तक, पृष्ठ, ग्रंथ, कवि इत्यादि शब्द परिगणित नहीं हैं।

## (१९) क्षेत्रीय तथा राजनीतिक विभाजन, युद्ध-सम्बद्ध शब्द—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy : Kathmandu Collection

अमरकोष के द्वितीय काण्ड के भूमिवर्ग में जगत् के पर्याय बताकर देश तथा

भारतदेश का उल्लेख हुआ है। इसके अतिरिक्त प्राच्य, उदीच्य, म्लेच्छ देश, मध्यदेश, आर्यावर्त, जनपद, इत्यादि शब्दों का सपर्याय परिगणन हुआ है।

पुरवर्ग में नगर, स्थानीय ( प्राकारवेष्टित नगर ) शाखानगर, प्राकार ( चहार-दीवारी ), प्राचीर, गोपुर ( नगरद्वार ), हस्तिमख ( नगरद्वार के निकट ढलान ), ग्राम, घोष, शबरालय, सोमा तथा उपशल्य ( ग्रामान्त तथा ग्राम के समीप की भूमि ) इत्यादि शब्दों का संग्रह मिलता है।

अमरकोष में सम्बद्ध शब्द जन, राज्यांग रूप में प्रजा, जाति, कुल, वंश, राजा और राजपरिवार से सम्बद्ध अधीश्वर ( सभी सामन्तों के ऊपर ), चक्रवर्ती, मण्डलेश्वर, सम्राट्, राजकम् ( नृपतिसमूह ), मन्त्री, कर्मसचिव, पुरोहित, महामात्य, द्वारपाल, अनीकस्थ ( राजा के रक्षकगण ), अध्यक्ष, रक्षायुक्त ( ग्राम का अधिकारी ), गोप ( अनेक ग्रामों का अधिकारी ), कनकाध्यक्ष, रूप्याध्यक्ष, अन्तर्वंशिक ( अन्तःपुर का अधिकारी ), कंचुकिन् ( राजा के निकट रहने वाला वेत्रधर ), सेवक, शत्रु, मित्र, उदासीन, पार्ष्णिग्राह ( पीछे रहने वाला ) इत्यादि परिगणित हैं।

क्षत्रियवर्ग में राजा के भेद, राज्यांग, प्रकृति, सन्धि इत्यादि षड्गुण, प्रभाव, उत्साह एवं मंत्रज तीन शक्तियाँ, क्षय तथा वृद्धि ( नीतिज्ञों का त्रिवर्ग ), सामदानादि उपायचतुष्टय, उपधा ( कर्मार्थं परीक्षण ), अषडक्षीण ( गुप्तमंत्रणा ), रहस्य, विश्वास, भ्रेष ( पतन ), अभ्रेष ( नीति ), समर्थन, निर्देश, मर्यादा, अदृष्ट ( प्राकृतिक ) तथा दृष्ट ( शत्रुकृत ) भय, अहिभय ( स्वपक्षप्रभव ) तथा अधिकार जैसे शब्दों का संकलन इस वर्ग के विस्तार का द्योतक है।

राजा से सम्बद्ध नृपासन ( सिंहासन ), छत्र, नृपलक्ष्म पूर्णकुम्भ, भृंगार ( स्वर्ण-रचित पात्रविशेष ), वैतालिक एवं मागध, स्तुतिपाठक, शिविर, उपरक्षण ( सैन्य रक्षण ) जैसे शब्द अमरकोष में आए हैं। क्षत्रियवर्ग में हस्त्यश्वादि सेनांग के विस्तृत उल्लेख, सेनामुख से अक्षौहिणी तक का सेनाविभाजन, विविध शस्त्रास्त्र इत्यादि अन्य अनेक शब्दों से अमरकोष में इस वर्ग के शब्दों की व्याप्ति का विस्तार विदित होता है। योद्धा, सैनिक, सैन्य ( समवेत सैनिक ), साहस्र ( साहसी ), सेनानी ( सेनापति ) के उल्लेख के साथ ही कंचुक, कवच, शिरस्त्राण, सारस्न ( बाँधने की पट्टी ), शस्त्र, धनु तथा उसके भेद, बाण, नाराच ( लौहमय बाण ), विषाक्त बाण, तूणीर, खड्ग तथा उसके भाग, मुद्गर, करवालिका, परिघ, ( लौहमय लगुड ), कुठार, छुरिका, तोमर, कुन्त इत्यादि शस्त्रों का सविस्तर उल्लेख मिलता है।

गुण तथा कर्म के अनुसार सैनिकों के लिए विविध विशेषण पद अमरकोष में संगृहीत हैं। इसमें पिनद्ध ( कंचुकादिधारी ), वर्मित, कावचिकम् ( कवचधारियों का समूह ), पदाति तथा पादातकम्, शस्त्राजीव (सैनिक रूप में जीविका कमाने वाले), धनुर्धर, काण्डवान् ( शरधारी ), शाक्तीक ( शक्त्यायुधधारी ), याष्टीक, पारश्वधिक (परशुधारी), नैस्त्रिंशिक, प्रासिक ( कुन्तधारी ), कौन्तिक पताको, जंघाकरिक, जेता,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अभ्यमित्रीय ( शत्रु से लड़ने वाला ), ऊर्जस्वी, उरस्वान् ( विशाल वक्ष वाला ), रथी, शूर, सांयुगीन ( रणकुशल ), समुत्पिज ( आकुल ), संशप्तक ( संग्राम से न लौटने वाले, तथा प्रत्यालीढ आदि धनुर्धरों के ५ स्थितिभेद जैसे शब्द आते हैं।

युद्ध से सम्बद्ध शब्दों का अमरकोष में बाहुल्य है। सेना, व्यूह, प्रत्यासार ( व्यूह का पिछला भाग ), सैन्यपृष्ठ, लक्ष्मी, आपत्, शस्त्र-लक्ष्य, शराभ्यास, पताका, वीराशंसनम् ( भयदा युद्धभूमि ), युद्ध, बाहुयुद्ध, सिंहनाद, इत्यादि शब्दों के साथ-ही-साथ अमरकोष में लौहाभिसार ( युद्धपूर्व शास्त्रादिसमर्पणविधि ), अभिषेणन ( सेनादि का गमन ), आसार ( सैन्यप्रसार ), अभिक्रम ( शत्रुपक्ष में शरों का अभिगमन ), अहंपूर्विका तथा आहोपुरुषिका ( दर्पपूर्ण आत्मसंभावना ), अहमहमिका, वीरपान, क्रन्दन ( योद्धाओं का आह्वान ), वृंहित ( करिगर्जित ), विस्फार ( धनुशब्द ), जैसे शब्दों का परिगणन हुआ है। बलात्कार, छल, उत्पात, मूर्च्छा, पीडनम् ( विपक्षी राजा को कष्ट देना ), अभ्यवस्कन्दनम् ( छलपूर्ण आक्रमण ), विजय, प्रतीकार, द्रवः ( पलायन ), पराजय, मरण, मृत, प्रग्रह ( चौरादि को पकड़ना ) इत्यादि शब्दों के प्राप्त होने से ऐसे शब्दों का अमरकोष में विस्तार का अनुमान लगाया जा सकता है।

नाट्यवर्ग में राजा, रानी, राजकुमारी, युवराज, राष्ट्रिय ( राजश्याल ), वेश्या, राजपरिवार से सम्बद्ध कतिपय सामान्य सम्बन्धवाचक तथा सम्बोधन शब्दों का परिचय मिलता है। यहाँ आया निर्देश शब्द शासन का पर्याय है।

पौर ( पुरवासी ), नागर ( नागरिक ), आचार ( रीति ), आत्मसमर्पण, लूटपाट, बन्दी तथा कपटप्रबन्ध इत्यादि के लिए अमरकोष में शब्द प्राप्त नहीं होते।

## (२०) कानून--

अमरकोष में सामान्य नियमों के लिए धर्म, स्मृति, ( अमर० १।६।६ ) तथा शास्त्रोक्त नियमों के लिए विधि ( अमर० २।८।३९ ) का प्रयोग मिलता है।

इसके अतिरिक्त धीवर्ग के तर्क, संशय, निश्चय, शब्दादिवर्ग के विवाद, शपथ, मिथ्याभियोग, घोषणा, क्षत्रियवर्ग के पुरोहित ( व्यवहार-निर्णेता ), प्राड्विवाक ( जज ), दण्ड, न्याय्य, समर्थन ( युक्तायुक्त परीक्षण ), निर्देश, मर्यादा, अपराध, बन्धन, द्विपाय ( द्विगुण दण्ड ), प्रग्रह (चोर इत्यादि को पकड़ना), कारा तथा शूद्रवर्ग के चोर, चौर्य, लोप्त्र ( चौर्यधन ), आदि शब्द इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। अभिशंस ( दोषी ठहराना ), निन्दा, वध आदि शब्द यहाँ मिलते हैं। विवाद में पैरवी करने वाले ( वकील ), कचहरी, निर्णय, वादिन् ( न्याय माँगने वाले ) या प्रतिवादिन्, साक्षिन्, अपराधिन्, बलात्कार ( व्यभिचार सम्बद्ध ), लूटपाट इत्यादि के लिए शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं।

## (२१) धर्म, दर्शन तथा ( अन्ध-विश्वास )--

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरकोष के कालवर्ग ( १।४।२४ ) में धर्म के पर्याय गिनाये गये हैं। इसके अति-

रिक्त स्वर्गवर्ग में स्वर्ग, देव, देवयोनि, असुर, विभिन्न देव-देवियों तथा उनके वाहन, चिह्न, विमान, देवसभा, अमृत, स्वर्ग की नदी, देवता, किन्नर, यक्ष; कालवर्ग में पाप, सुकृत, कल्याण, भाग्य, प्राणी, जाति, व्यक्ति; धीवर्ग में मोक्ष, अज्ञान तथा नास्तिकता; शब्दादिवर्ग में वेद, वेदांग, ओंकार, संग्रहग्रंथ; पातालभोगिवर्ग में पाताल, अंधकार, नाग, नागेश सर्पराज; नरकवर्ग में नरक, तपन, रौरव इत्यादि नरकभेद, प्रेत, वैतरणी, निर्ऋति ( नारकीय लक्ष्मी ), विष्टि ( नरक में प्रक्षेप ), यातना तथा दुःख; ब्रह्मवर्ग में चातुर्वर्ण्य-विभाग, चार आश्रम-विभाग, षट्कर्मा ( यागादिकर्ता ब्राह्मण ), श्रोत्रिय, अध्यापक, गुरु, आचार्य, यजमान, दीक्षित ( सोमयाग का आदेष्टा ), इज्याशील ( यज्ञ करनेवाला ), यज्वा ( विधिवत् यज्ञ सम्पन्न करने वाला ), स्थपति ( बृहस्पति के मंत्र से यज्ञ करने वाला ), सोमपाः ( सोमयाग का कर्ता ), सर्ववेदाः (विश्वजित् यागकर्ता), अनूचान ( सांगवेद का अध्येता ), समावृत्त ( गुरु की अनुज्ञाप्राप्त करके ब्रह्मचर्याश्रम से निवृत्त शिष्य ), सब्रह्मचारिन् (एक शाखा के अध्येता), सतीर्थ्य (एक गुरु के शिष्य), अग्निचित् ( अग्नि चयनकर्ता ) इत्यादि शब्द संगृहीत हैं।

अमरकोष का काल यज्ञ का काल था। अतः इसमें यज्ञ सम्बन्धी शब्दों का बाहुल्य है। यज्ञकर्म, यज्ञ-सामग्री तथा सम्बद्ध शब्द यहाँ अधिकाधिक मिलते हैं। इनमें पंचमहायज्ञ, प्राग्वंश ( यज्ञ के सदस्यों का गृह ), अध्वर्यु, उद्गाता, होता आदि याजक, वेदिका, यूपाग्रम् ( यज्ञस्तंभ का ऊपरी भाग ), अरणि ( यज्ञकाष्ठ ), तीन प्रकार की अग्नि तथा इनका समूह 'त्रेता', प्रणीत ( मंत्रादि से संस्कृत अग्नि ), समूह्य ( यज्ञ की अग्नि का स्थान ), सामिधेनी ( अग्नि प्रज्वलनहेतु ऋचाविशेष ), चरु ( अग्नि में हव्य अन्न ), हव्य ( दैव ) एवं कव्य ( पितृदेव अन्न ), उपाकृत ( यज्ञ में बलिदेय पशु ), सान्नाय्य ( हविविशेष ), वषट्कृत् ( अग्निहुत ), यज्ञिय ( यज्ञकर्म के योग्य ) इत्यादि शब्द प्रमुख हैं।

अमरकोष में विभिन्न दान, व्रत, एवं नियम, व्रतियों के उपकरण इत्यादि का भी उल्लेख हुआ है। ऐसे शब्दों में अमृत ( यज्ञशिष्ट पुरोडाशादि का दान ), और्ध्वदैहिक ( मृतार्थदान ), पितृदान, श्राद्ध, पर्येषणा (श्राद्ध में द्विजसेवा), अर्घ्य (जल), आतिथ्य, पूजा, उपासना, चर्या (योगमार्ग की स्थिति ), आचमन, मौन, व्रत, उपवास, ब्रह्मासन ( योगासन ), वाचंयम ( वाणी संयम ), स्थण्डिल ( नियमहेतु भूमिशायी ), द्वयातिग ( सत्येकनिष्ठ ), पवित्र, पाखण्ड, स्वाध्याय, अघमर्षण ( सर्वपापों का नाशक जप ), दर्श तथा पौर्णमासेष्टि ( यागविशेष ), यम तथा नियम, उपवीत, ब्रह्मत्व ( ब्रह्म में लीन होने का भाव ), देवत्व इत्यादि प्रमुख हैं।

अमरकोष में कुहना ( मिथ्या धर्माचरण ), व्रात्य ( उपनयनादि संस्कारहीन ), धर्मध्वजी ( जीविकार्थजटाजूटधारी संन्यासी ), क्षतव्रतः, त्रिवर्ग तथा चतुर्वर्ग इत्यादि शब्दों के परिगणन से उस समय के प्रचलित धर्म तथा विश्वास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अमरकोष में यज्ञोपवीत आदि संस्कारों का नामोल्लेख नहीं मिलता है। तथापि समावृत्त, उपवीत तथा संस्कार शब्द यहाँ पठित हैं। मंदिर, बलिवेदिका,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

उपदेशक, देवप्रतिमा, अन्धविश्वास, माया, चुड़ैल इत्यादि के लिए उक्त कोष में शब्द संगृहीत नहीं हैं।

संपूर्ण विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकलता है कि अमरकोष में सर्वाधिक शब्दसंकलन ऐसे शब्दों का है जो वैदिक संस्कृति तथा सभ्यता से सम्बन्धित हैं। यद्यपि उसे वैदिक काल का कोष नहीं कह सकते, तथापि कोषनिर्माणकाल के समाज का आधार वैदिक धर्म और सभ्यता ही रहा होगा। दर्शपौर्णमास्यादि याग तथा "सवन" शब्द का प्रयोग इसका प्रमाण है। शब्दसंकलन के अन्तर्गत सर्वाधिक शब्द भौतिक जगत् तथा मानव से सम्बद्ध हैं। पशु-पक्षियों के सम्बन्ध में भी पर्याप्त शब्दराशि मिलती है। "भोजन तथा पेय" इत्यादि शीर्षक के अन्तर्गत शब्द आवश्यकता से कम ही हैं। वास्तु-कला, मूर्तिकला, चित्रकला तथा नृत्यगीत इत्यादि कलाओं से सम्बद्ध पर्याप्त शब्द उपलब्ध नहीं हैं। कृषि, वनस्पति तथा औषधों से सम्बद्ध शब्द भाण्डार सबसे अधिक समृद्ध है। यातायात के साधनों में व्यापार तथा वाणिज्य के सम्बन्ध में स्थल तथा जलमार्गों का उल्लेख है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर व्यापार इत्यादि का आभास नहीं मिलता है। व्यापार का स्तर बहुत उन्नत न होने के कारण माप, तौल, आकार तथा मात्रा-परिमाण के लिए स्वल्प शब्द ही हैं। कृषि ही मुख्य जीविका का साधन रहा होगा। विधवा-विवाह :ही नहीं, अमरकोष में पुनर्भू ( विधवा पत्नी ) तथा अग्रेदिधिषुः ( ऐसी पत्नी, ब्राह्मण की प्रधान पत्नी ) तक की कल्पना साकार मिलती है। सती-प्रथा का कोई आधार यहाँ उपलब्ध नहीं है। ब्राह्मणों के अध्ययन-अध्यापन, यागादि तथा क्षत्रियों के रणकौशल से सम्बद्ध अधिकाधिक शब्द मिलते हैं। कानून तथा न्याय से सम्बद्ध स्वल्प शब्द ही अमरकोष में संगृहीत हैं।

कृषि के सम्बन्ध में दो मुख्य फसलों के अतिरिक्त "षष्टिक्यम्" (अमर० २।९।६) साठ दिनों में तैयार होने वाले धान-विशेष का भी उल्लेख है। अन्यान्य धान्यों के साथ "मत्स्यण्डी" ( अमर० २।९।४३ राल ) तथा 'शर्करा' ( स्वच्छ चीनी ) का भी उल्लेख हुआ है।

अमरकोष में पर्वतों एवं नदियों के नामों के अतिरिक्त भौगोलिक विभागों तथा स्थितियों पर आधारित शब्द उपलब्ध नहीं होते हैं। केसर का सम्बन्ध काश्मीर ( अमर० २।६।१३१ ) से तथा चन्दन का सम्बन्ध मलय पर्वत ( अमर० २।६।१२४) से बताया गया है। माषपर्णी ( अमर० २।४।१३८ ) को काम्बोज में उत्पन्न तथा तथा सिल्हः ( अमर० २।६।१२८ सुगन्धिद्रव्य ) को तुरुष्क का कहा गया है। हिङ्गु ( अमर० २।९।४० ) को वह्लीक या रमठ प्रदेश का माना गया है। उद्योगों में मुख्य तथा प्राचीन वस्त्र-उद्योग का उल्लेख ( अमर० २।६।११०–११ ) प्राप्त होता है। कुचेलक ( अच्छे कपड़े ), वराशि ( अमर० २।६।११६, मोटे कपड़े ) के अतिरिक्त अनाहतम् ( धुले हुए रेशमी वस्त्र ) का भी उल्लेख हुआ है। चमड़े से बनी तेल रखने की कुप्पी, तथा जूतों के पर्याय भी अमरकोष में संगृहीत हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शंख की बनी वस्तुओं ( अमर० २।९।९२ ) तथा स्वर्णकार ( अमर० २।६।१०५-१०६, विशेषरूप से स्वर्णहार बनाने वाला ) के व्यवसाय का सविस्तार उल्लेख मिलता है। ऊपर के अनुच्छेदों में अमरकोष में जिन ऐसे शब्दों का अभाव प्रदर्शित किया गया है जो जीवन के लिए नितान्त आवश्यक पदार्थों को द्योतित करते हैं तथा अमरकोष के समकालीन समाज में सहज अनुमेय हैं, उसके दो कारण सम्भाव्य हैं। एक तो यह कि कोषकार की अनवधानता से ऐसे अनेक शब्द संकलन में न आ पाये हों, परन्तु इससे भी बड़ा कारण यह प्रतीत होता है कि अमरकोष के निर्माण-काल के बहुत पहले से ही संस्कृत भाषा शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा बन गई थी तथा जनसामान्य में क्षेत्रीय प्राकृतें प्रतिष्ठित हो गई थीं। अतः जनसामान्य के दैनिक जीवन से सम्बद्ध अनेक शब्द तथा विभिन्न व्यवसायों, विशेषतः निम्नवर्ग से सम्बद्ध व्यवसायों के शब्द प्राकृतों में रहे होंगे तथा शिष्टवर्ग के साहित्यिक एवं शास्त्रीय चिन्तन की भाषा संस्कृत में उनका अभाव सर्वथा स्वाभाविक है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चतुर्थ अध्याय | शब्द-हानि

यद्यपि अमरकोषकार ने अपने प्रतिज्ञा–१ श्लोक में 'सम्पूर्णमुच्यतेवर्गैर्नामलिंगानुशासनम्' कहकर अपने कोष की पूर्णता का द्योतन किया है, और अपने पूर्ववर्ती कोषों तथा साहित्य के शब्दों को अधिकाधिक ग्रहण भी किया है, तथापि उनकी 'संक्षिप्तीकरण' तथा 'प्रतिसंस्कार' की शैली के कारण विभिन्न वर्गों में कई आवश्यक शब्दों का समावेश नहीं हो पाया है। अमरकोष की अपूर्णता का उल्लेख, जैसा कुछ श्रीहर्ष ने अपने 'अमरखण्डन' में किया है, वह तो अधिक संगत नहीं है। फिर भी 'निघण्टु' तथा अन्य प्राचीन कोषों के काल से अमरकोषकार के काल तक बहुत से शब्द भाषा में प्रचलन में नहीं रहे होंगे, यह स्वीकार किया जा सकता है। यही नहीं, बहुत से मुख्य शब्दों का छूट जाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं है। पाणिनि की अष्टाध्यायी की महत्ता वार्तिककार द्वारा जोड़े कतिपय प्रचलित बोली के शब्दों से कम नहीं हो जाती। उनको स्वीकार ही किया गया है। इसी प्रकार अमरकोष में जो शब्द संगृहीत होने से रह गए हैं, उनका अध्ययन करना भी महत्त्वपूर्ण है। निम्नलिखित पंक्तियों में वैदिक तथा लौकिक संस्कृत के प्रमुख सम्बद्ध ग्रन्थों से अमरकोष के शब्दों का मिलान करके महत्त्वपूर्ण शब्दहानि के उदाहरण निष्कर्ष सहित प्रस्तुत किए जा रहे हैं। इससे तत्कालीन भाषा तथा उसके स्वरूप पर प्रकाश पड़ेगा।

## ऋग्वेदसंहिता और अमरकोष

ऋग्वेदसंहिता की पदादिसूचि[1] तथा अमरकोष (निर्णयसागरप्रेस, १९४०) के शब्दों का मिलान करने पर यह निष्कर्ष निकला है कि ऋग्वेदसंहिता के लगभग ५० प्रतिशत शब्द अब अमरकोष में नहीं रह गए हैं। वैदिक संहिताओं तथा अमरकोष के मध्य के काल अन्तराल को देखते हुए यह स्वाभाविक ही माना जा सकता है। ऋग्वेदसंहिता के अंशुमती (८.९६.१३), अंहतिः (१.९४.२, ८.७५.९), अंहस् (१.१८.५, ३६.१४, ५८.८), अकूपार (१०.१०९.१), अक्ष (३.५३.१९, १.१६४.१३, १०.३४.४,) अग्नायी (५.४६.८), अथो (१.२८.६, ५०.१२) अध्वर्यु (१.९४.६, १६२.५, ४.६४) तथा अर्वन् (१.७३.९, ४.३१.४, ५.३६.२)

१. भाग ५, एन० एस० सोनटक्के तथा सी० जी० काशीकर द्वारा संपादित तथा तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ वैदिक संशोधनमण्डल, पूना से १९५१ में प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इत्यादि शब्द जहाँ एक ओर अमरकोष में प्राप्त होते हैं, दूसरी ओर ऋग्वेदसंहिता के अगाः ( ३.२१.४, १०.१२.५, १६१.५ ), अग्रिया, अग्रिय ( १.१६.७, ८.२६.२५, ५.४४.९ ), अजरः ( १.५८.२, १.४४.४ ), अजराः ( १.६४.३ ), अजरम् ( १.१२६.२ ), अंजः ( १.३२.२, १६०.२ ), अतिथिनी ( १०.६२.३ ), अनातुराः ( १०.६४.११ ), अनिमेषम् ( १.३१.१२, १६४.२१ ), अभिनेता ( ४.२०.८ ), अमीवाः ( १.१२९.३,२.३३.२ ), अर्यमा ( १.२६.४, ३६.४,४०.५ ) अर्वाचीनम् ( १.८४.३, ३.३०.२ ), काव्यः ( १.८३.५, १. २१.१२, ८.८.११ ) तथा कृच्छ्रा ( १०.५२.४ ) इत्यादि महत्त्वपूर्ण शब्द अमरकोष में स्थान नहीं प्राप्त कर सके हैं।

## निघण्टु और अमरकोष

निघण्टु[1] में परिगणित १९५ शब्दों में से केवल २० शब्द अमरकोष में प्राप्त होते हैं और वह भी प्रायः भिन्न अर्थ में—

| शब्द | निघण्टु | अमरकोष |
|---|---|---|
| अकूपार | ४.१ सूर्य, सागर<br>४.१८ कछुआ | १।१०।१ समुद्र |
| अक्षरम् | १.११ वाणी<br>१.१२ जल | ३।३।१६२ वर्ण, आकाश, मोक्ष आदि |
| अग्नायी | ५.३ पृथ्वी की देवी | २।७।११ अग्नि की स्त्री, स्वाहा |
| अच्छ | ४.२ भी | १।१०।१४ स्वच्छ |
| अजिरम् | २.१५ शीघ्र | २।२।१३ चबूतरा, आँगन |
| अजिराः | १.१३ नदियाँ | ३।३।१८२ शरीर, आँगन आदि |
| अद्धा | ३.१० सत्य | ३।४।१२ सत्त्व |
| अद्भुतम् | ३.३ महान् | १।७।१७,१९ आश्चर्य ( युक्त ) |
| अद्रि | १.१० बादल | ३।३।१६४ पेड़, पहाड़, सूर्य |
| आपः | २.१ क्रिया | १।१०।३ जल |
| अभिख्या | ३.९ वृद्धि | ३।३।१५९ नाम, यश, शोभा |
| अमा | ३.४ गृह | ३।३।२५० साथ, पास ( पुत्रेण अमा भुङ्क्ते। सहेत्यर्थः। अमा भवोऽमात्यः ) |
| अमृत | १.२, १.१२ स्वर्णजल | ३।३।७६ यज्ञ-अवशिष्ट, अमृत, पानी, घी, अयाचित, मोक्ष, धन्वन्तरि। |
| अय | १.२ स्वर्ण | १।७।२७ शुभकारक भाग्य |

1. लक्ष्मणसरूप के 'इंडीसेज़ एण्ड एपेण्डिसेज़ टू दि निरुक्त' का निघण्टुकोषखण्ड, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर से १९२९ ई० में प्रकाशित।

CC-0 Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| | | |
|---|---|---|
| अरण्यानी | ५.३ पृथ्वी की देवी | २।४।१ बड़ा जंगल |
| अर्क | २.७.,२.२० भोजन, पद्मखंड, ४.२ वृक्ष के अधिष्ठातृ देव, विद्युत् । | ३।३।४ स्फटिकमणि, सूर्य, मदार (आक) |
| असिक्नी | १.७ रात्रि | २।६।१८ रनिवास की वृद्धा |
| असु | ३.९ बुद्धि | २।८।११९ प्राण |
| असुर | १.१० बादल | १।१।१२, ३।५।११ दैत्य |
| अहि | १.१०,१.१२ मेघ, जल ५.४ वातावरण के देव | ३।३।२३९ सर्प वृत्रासुर |
| अह्नाय | ३.१७ प्राचीन | ३।४।२ उसी समय, झटपट |

जहाँ कहीं थोड़ी भी समानता है, उन स्थलों में अर्थ बहुत दूर बैठता है, जैसे 'अमा' ( निघण्टु गृह ) का अर्थ अमरकोष में 'पास, साथ' दिया गया हैं। अर्थों की विभिन्नता तो स्पष्ट ही है। निघण्टु में पृथ्वी, आकाश, दिक् इत्यादि के अधिक पर्याय परिगणित हैं, जो अमरसिंह के समय तक आते-आते प्रयोग में नहीं रह गये या भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने लगे। निम्नलिखित तालिका में अध्यायक्रम से निघण्टु के शब्दों तथा अमरकोष में उनके अनुपलब्ध रूपों का उल्लेख किया गया है :—

| निघण्टु के पर्याय संख्या | | अमरकोष में प्राप्त पर्याय संख्या | अमरकोष में अनुपलब्ध शब्द |
|---|---|---|---|
| अध्याय–( १ ) | | | |
| पृथ्वीनाम | २१ | ३८ | ग्मा, ज्मा, क्षा, रिपः, अदितिः, निर्ऋतिः, पूषा, गातुः । |
| आकाश | २२ | २४ | बर्हिः, धन्व, आपः, पृथिवी, भूः, स्वयंभूः, अध्वा ( अमर० मेघाध्वा ), पुष्करम्, सगरः, समुद्रः, स्वः, पृश्निः, नाकः, गौः तथा विष्टप् । |
| दिक् | ८ | ५ | आताः, उपराः, आष्ठाः, व्योम, |
| रात्रि | २३ | १२ | श्यावी, अक्तुः, ऊर्म्या, राम्या, यम्या, नम्या, दोषा, नक्ताः, तमः (अमर०तमी), रजः, असिक्नी, पयस्वती, तमस्वती ( अमर० तमस्विनी ) घृताची, शिरिणा, |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| | | | |
|---|---|---|---|
| | | | मोकी शोकी, ऊधः, पयः, हिमा तथा वस्त्री । |
| मेघ | ३० | १५ | अद्रिः, ग्रावा, गोत्रः, वलः, अश्नः, पुरुभोजाः, वलिशानः, अश्मा, पर्वतः, गिरिः, व्रजः, चरुः, वराहः, शम्बरः, रौहिणः, रैवतः, फलिगः, उपरः, उपलः, चमसः, अहिः, दृतिः, ओदनः, वृषन्धिः, वृजः, असुरः, कोषः । |
| जल | १०१ | २७ | चोदः, क्षद्म, नभः, घृतम्, मधु, पुरीषम्, पिप्पलम्, विषम्, अमृतम्, ( अमर० में भी प्राप्त ), जन्म ( अमर० जीवनं), सुराः, आयुधानि, क्षपः, अहिः, अक्षरम्, स्रोतः, तृप्तिः, रसः, भेषजम्, सहः, सुखम्, व्योम, अन्नम्, सद्म, सदनम्, ऋतम्, सत्यम् इत्यादि । |
| अध्याय—२ | | | |
| मनुष्य | २५ | ६ | धवाः (अमर० पति अर्थ में २।६।३५), जन्तवः, पृतनाः, पंचजनाः इत्यादि । |
| धन | २८ | १३ | मघं, रेक्णः, वेदः, वरिवः, भोजनम्, बन्धुः, मेधा, यशः, ब्रह्म इत्यादि । |
| अध्याय—३ | | | |
| गृह | २२ | १६ | हर्म्यम्, नीडम्, शरणं, छाया, शर्म, स्वसराणि इत्यादि । |
| यज्ञ | १५ | ७ | वेनः, मेधः, होत्रा, इष्टिः, इन्दुः, प्रजापति, विष्णुः, धर्म आदि । |
| कूप | १४ | ४ | कातुः, कतः, खातः, वव्रः, काटः, अवतः, उत्सः, कुशयः, तथा केवट आदि । |

इसके अतिरिक्त निघण्टु में द्यावापृथिवी के २४ नाम, वज्र के १८ नाम, स्तेन ( चोरी ) के १४ नाम, क्षिप्र, बहु, ह्रस्व, समीप, दूर, प्राचीन आदि की संज्ञाएँ, स्वपिति ( सोना क्रिया ), याच्ञाकर्म, दानकर्म आदि की संज्ञाएँ, सुख, रूप, प्रज्ञा, प्रशस्य की संज्ञाएँ, क्रोध के एकादश पर्याय, क्रोध करने के अर्थ में १० शब्द, अंगुली के २२ पर्याय, द्वादश बाहु के पर्याय, अपत्य के १५ नाम, अश्व के २६ नाम, नदी के २७ नाम, वाक् के ५७ पर्याय, दिन की १२ संज्ञाएँ, रश्मि की १५ संज्ञाएँ, हिरण्य के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

१५ नाम तथा उषा के १६ नाम भी द्रष्टव्य हैं, जो कि अमरकोष में कम ही प्राप्त हैं। अन्तिम उषा के १६ नामों में से उदाहरण के लिए, केवल ६ अमरकोष में परिगणित हैं।

## अष्टाध्यायी एवं अमरकोष

व्याकरणकारों में अष्टाध्यायीकर्ता पाणिनि तथा महाभाष्यकार पतंजलि अमरकोष-कार के प्रमाण थे। पाणिनीय अष्टाध्यायी के गणपाठ[1] की शब्दानुक्रमणिका में परिगणित कुल ४६१० शब्दों में से केवल ६८८ शब्द अर्थात् कुल गणपाठ के शब्दों का केवल $१६\frac{२}{१३}$ प्रतिशत अमरकोष में उपलब्ध है।

गणपाठ के कतिपय ये महत्त्वपूर्ण शब्द अमरकोष में प्राप्त नहीं होते—अधिपति (गण० ५।१।१२४), अनुकूल (गण० ४।२।१२७), अम्भोज (गण० ५।२।१३५), आस्तिक (गण० ५।१।१२८), उपदेश (गण० ४।४।१२), कर्षापण (गण० ५।३।११७, ५।४।३८) कुलति (गण० ४।१।८४), गौरव (गण० ५।२।३६), जनवाद (४।४।१०२) तथा धार्मिक (गण० ५।१।१२८) इत्यादि।

## पातञ्जल महाभाष्य एवं अमरकोष

पातंजल महाभाष्य[2] में भी पर्याप्त शब्द ऐसे हैं, जिनका परिगणन अमरकोष में नहीं हो सका है। ऐसे शब्दों को निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा रहा है :—

| शब्द | पात०महा० | शब्द | पात०महा० |
|---|---|---|---|
| अकस्मात् | २.४.३६ इत्यादि | अनुषंग | १.१.४७ इत्यादि |
| अकात्स्न्र्य | ३.१.२२ ,, | अपाय | १.१.२२ ,, |
| अकार्ष्ण्य | ५.१.११६ | अवकाश | १.१.१ |
| अक्षकितव | २.१.४० | अवारपार | ४.२.६३ |
| अक्षरावत् | ८.२.१६ | अश्ववार (युद्ध-सम्बद्ध) | ८.२.१२. |
| अक्षधारण | ५.१.२ | आक्षिप्त | ३.२.१७८ |
| अक्षरशः | १२।३ | आख्यान | १.३.२ |
| अक्षशौण्ड | २.१.१. | आगम (पारिभाषिक शब्द) | १.१.१. |
| अग्रिम | ४.३.२३ | आगमन | १.१.२१ |
| अचिर | १.३.१ | आधिदैविक | ४.३.६० |

१. पाणिनीय शिक्षादिसंग्रह—पं० श्री कनकलाल शर्मा मैथिल द्वारा संशोधित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज से प्रकाशित, पृ० १०३–१४८।

२. महाभाष्यशब्दकोष—पं० श्रीधर शास्त्री पाठक एवं पं० सिद्धेश्वर शास्त्री द्वारा भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पूना से १९२७ ई० में प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | पात०महा० | शब्द | पात०महा० |
|---|---|---|---|
| अधिपति | ८.२.१५ | आधिभौतिक | ४.३.६० |
| अध्ययन | १.४.२६ | आध्यात्मिक | ४.३.६० |
| अनय | ८.३.७ | आयःशूलिक | ५.२.७६ |
| अनुकरण | १.३.४८ | आर्ष | ५.१.१३ |
| अनुशासन | १।२ १ | आस्तिक | ४.४.६० |
| ऐतिहासिक | ४.२.६० इत्यादि | पौरुषेय | ५.१.१० |
| ऐहिलौकिक | ४.३.६० ,, | पौर्वापर्य | १.२.४९ |
| कतिपय | ५.२.५२ | प्रकर्ष | २.१.६९ |
| | | प्रक्षालन | १.४.२३ |
| कात्स्न्र्य | ३.१.२२ | प्रक्षेपण | २.३.३ |
| कार्ष्ण्य | २.२.४ | प्रतिषेध | १.१.४४ |
| | | प्रारब्ध | ७.४.६२ |
| कुटीर | ४.१.९२ | वहुश्रेयसी | १.२.४८ |
| कुटुम्ब | १.४.२ | मन्तव्य | १.१.५६ |
| कृत्रिम | १.१.२३ | माध्यंदिन | ४.३.६० |
| केशाकेशि | २.२.२७ | माध्यमिक | ५.३.५५ |
| | | मूर्धन्य (पा०शा०) | ४.१.१६१ |
| खर्पर | ८.३.३७ | म्लेच्छ | ८.८ २ |
| गरीयस् | १.२.६४ | यथेष्ट | १.१.१. |
| | | यमी | ६.१.१०७ |
| | | यवन ( जाति ) | ३.२.१११ |
| गुप्ता | ६.१.२०५ | यवनानी | ४.१.४९ |
| गृहस्थ | ४.१.३६ | याज्ञिक | २२ २७ १, ३ |
| घृताची | ६.३.९५ | | |
| | | यौन | १.१.४९ |
| | | रन्धन | २.१.३६ |
| चिकीर्षु | १.१.३९ | रात्रिंदिव | ५.४ ७७ |
| चिकीर्षा | २.३.६६ | लौकिक | प्रथम आह्निक |
| जिज्ञासा | १.३.२१ | | |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | पात०महा० | शब्द | पात०महा० |
|---|---|---|---|
| तुम्बुरु ( धान्यवाचक ) | १.१.४७ | वन्दना | ३.३.१०७ |
| त्रैमातुर | २.१.५१ | विवक्षा | १.२.५९ |
| | | वीप्सा | २.३.१. |
| दुर्धर | १.४.२६ | व्यवच्छिन्न | २.१.१ |
| दुर्नय | १.४.६० | व्यवधान | १.१.५१ |
| दुर्नीत | १.४.६० | व्यवसाय | ३.३.१३३ |
| दुर्भिक्ष | २.३.१३ | व्यवस्था (परि०श०) | १.१.२७ |
| दुर्लभ | १.१.४५ | व्याख्यान | २२।२३ ११ |
| निदर्शन | १.४.२३ | संस्कार | २.४.१० |
| निवन्धन | २.२.२९ | समाधान | ८.२.४८ |
| नियत | १.३.१२ | समावेश | १.४.१. |
| नियोग | २.१.४३ | सर्वजनोन | ५.१.९ |
| निर्धारण | ५.३.८ | साहचर्य | १.१.६८ |
| निर्यात | १.१.७ | सुलभ | १.४.६० |
| निवृत्ति | ८.१.४ | स्त्रैण | ४.१.८७ |
| पारलौकिक | ३.१.२६ | | |
| पौनःपुनिक | ६.४.४४ | | |
| पौनःपुन्य | ८.१.१. | | |
| पौराणिक | ४.१.६० | | |

ऊपर की तालिका के सम्यक् अवलोकन से स्पष्ट होता है कि परिगणित कतिपय शब्द ऐसे हैं, जो मूलरूप में तो अमरकोष में नहीं प्राप्त होते, परन्तु उनका कोई खण्ड अथवा परिवर्तित रूप अमरकोष में देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए 'अक्षकितव' शब्द अमरकोष में नहीं है, परन्तु 'अक्षधूर्त' ( अमर० २।१०।४३ ) शब्द देखा जा सकता है। 'अक्षशौण्ड' शब्द यहाँ अप्राप्त है, परन्तु 'अक्ष' ( अमर० २।४।५८ ) भी है और 'शौण्ड' ( अमर० ३।१।२३ ) भी है। 'कुटीर' शब्द अमरकोष में नहीं है, परन्तु 'कुटी' ( अमर० २।२।४ ) शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त देखा जा सकता है। अमरकोष 'कुटुम्बव्यापृत' ( अमर० ३।१।११ ) तथा 'कुटुम्बिनी' ( अमर० २।६।६ ) जैसे यौगिक शब्द देखे जा सकते हैं। 'म्लेच्छ' शब्द अमरकोष में परिगणित नहीं है, तथापि

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

"म्लेच्छदेश' (प्रत्यन्तो म्लेच्छदेशः स्यात्—अमरकोष २।१-७) का उल्लेख मिलता है। 'व्यवधान' शब्द नहीं है, परन्तु समानार्थक 'व्यवधा' ( अमरकोष १।३-११ ) शब्द है। इसी प्रकार 'स्त्रैण' शब्द के अभाव में भी 'पारस्त्रैणेय' ( अमरकोष २।६-२४ ) शब्द मिलता है। 'साहचर्य' शब्द अमरकोष के संग्रह में कहीं नहीं आया है, परन्तु प्रतिज्ञा-वाक्य में अमरकोषकार ने 'साहचर्याच्च कुत्रचित्' ( १-५ अमरकोष प्रथम काण्ड ) रूप में इसका प्रयोग किया है।

अमरकोष के तृतीय काण्ड के नानार्थवर्ग के अन्त में नानार्थ अव्ययपद तथा अव्ययवर्ग में भी अव्ययपद संगृहीत हैं। पाणिनीय गणपाठ की तुलना में अमरकोष के अव्ययसंग्रह में निम्नलिखित अव्ययपदों की हानि दृष्टिगत होती है :—

| अव्ययपद | गणपाठ | अव्ययपद | गणपाठ |
|---|---|---|---|
| अंगफट् | १.४.५७ | इद्धा | १.१.३७ |
| अम | ,, | इम् | १.४.५७ |
| अधि | १.४.५४ | अकन् | ,, |
| | | उन् | ,, |
| अन्तर | १.१.३७ | उद् | १.४.५४ |
| अनुषट् | १.४.५७ | उप | ,, |
| अये | ,, | स्व | १.४.५७ |
| अरे | ,, | आनुषट् | ,, |
| अव | १.४.५४ | ऋतम् | ,, |
| अवस् | १.१.३७ | ऋधक् | १.१.३७ |
| अवस् | | कथम् | १.४.५७ |
| असि | १.४.५७ | कम् | ,, |
| अप | १.४.५४ | कुतः | ,, |
| अभि | ,, | कुत्र | ,, |
| अम् | १.४.५७ | कुवित् | ,, |
| आकीम् | १.४.५७ | कूपत् | ,, |
| आदह | १.४.५७ | खम् | १.४.५७ |
| आदिस् | १.४.६१ | खुम् | ,, |
| | | घुम् | ,, |
| आहोस्वित् | १.४.५७ | चिरम् | १.१.३७ |
| चेण् | १.४.५७ | मिथ्या | १.४.५७ |
| छंवट् | | यत् | ,, |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| अव्ययपद | गणपाठ | अव्ययपद | गणपाठ |
|---|---|---|---|
| तत् | ,, | यत्र | ,, |
| | | यथा | ,, |
| तथाहि | ,, | यावत् | ,, |
| तर्हिकम् | ,, | यूपत् | ,, |
| त्वा | ,, | रात्रौ | १.१.३७ |
| | | रै | १.४.५७ |
| त्वै | ,, | वर् | ,, |
| ताजक | ,, | वत् | ,, |
| दिवा | १.१.३७ | वथा | ,, |
| द्वै | १.४.५७ | वन | ,, |
| | | वशम् | ,, |
| दिष्ट्या | ,, | वा | ,, |
| दुर् | १.४.५४ | वाट् | ,, |
| | | वि | १.४.५४ |
| दुस् | ,, | विहायसा | १.१.३७ |
| नकिर् | १.४.५७ | वेलायाम् | १.४.५७ |
| नकिम् | ,, | शंके | ,, |
| नकीम् | ,, | शम् | ,, |
| | | शाश्वत् | ,, |
| नञ् | ,, | शिकम् | ,, |
| न्वै | ,, | शुकम् | ,, |
| नह | ,, | औषट् | १.४.६१ |
| निस् | १.४.५४ | सनुतर् | १.४.५७ |
| नीचैस् | १.१.३७ | सनात् | ,, |
| नेत् | १.४.५७ | सनुकम् | ,, |
| नेचित् | ,, | सनुतक् | १.१.३७ |
| परा | १.४.५४ | सम् | १.४.५४/५७ |
| परि | ,, | समया | १.१.३७ |
| | | सर्वं | ,, |
| पशु | १.४.५७ | स्म | १.४.५७ |
| पुनर् | १.१.३७ | स्वयम् | १.१.३७ |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| अव्ययपद | गणपाठ | अव्ययपद | गणपाठ |
|---|---|---|---|
| पुरा | १.४.५७ | स्वर् | ,, |
| प्र | १.४.५४ | सि | १.४.५७ |
| | | सिम् | ,, |
| ब्रूहि | १.४.५७ | सीम् | ,, |
| भाजक | ,, | सु | १.४.५४ |
| भूयस् | ,, | सूपत् | १.४.५७ |
| मन्ये | ,, | हाहा | ,, |
| माकिर् | ,, | हेहै | ,, |
| माकिम् | ,, | हो | ,, |
| माकीम् | ,, | | |
| माङ् | ,, | | |
| मात्रायाम् | ,, | | |

निष्कर्ष—कुल गणपाठ के १८० अव्ययपदों में से केवल ६३ अमरकोष में संगृहीत हैं।

## अमरकोष तथा धन्वन्तरिनिघण्टु

अमरकोष के सर्वप्राचीन टीकाकार क्षीरस्वामी ने तथा अन्य भी टीकाकारों ने अमरकोष के 'वनौषधिवर्ग' के लिए धन्वन्तरिनिघण्टु को अमरकोषकार का प्रमाण माना है। इस आयुर्वेदनिघण्टु के कर्ता तथा काल की समस्याओं में न उलझकर हम यहाँ इसमें वर्णित वृक्षौषधियों का ही अध्ययन करेंगे। धन्वन्तरि[1] के निघण्टु में कुल सात वर्ग हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है :—

(१) गुडुच्यादि वर्ग
(२) शतपुष्पादि वर्ग
(३) चन्दनादि वर्ग
(४) करवीरादि वर्ग
(५) आम्रादि वर्ग
(६) सुवर्णादि वर्ग तथा
(७) मिश्रकादि वर्ग

इनमें से छठे वर्ग में सुवर्ण, रौप्य, ताम्रादि धातुएँ, त्रिफला, पंचमूला तथा विभिन्न तैल इत्यादि वर्णित हैं, जिनका सम्बन्ध अमरकोष के किसी भी स्थल से नहीं है।

१. राजनिघण्टुसहित धन्वन्तरिनिघण्टु—श्री वे० शा० रा० रा० पुरन्दरे द्वारा संशोधित तथा श्रीविनायक गणेश आप्टे द्वारा १९२७ ई० में आनन्दाश्रम संस्कृत ग्रन्थावली ग्रन्थांक ३३ में प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सातवें वर्ग में रत्न, लवण, विष तथा विभिन्न प्रकार के मिश्रकों का उल्लेख हुआ है और ये पदार्थ भी अमरकोष के विषय नहीं बन सके हैं। शेष पाँच वर्गों में जो वृक्षौषधियों के उल्लेख से हैं, यद्यपि वे अमरकोष से साम्य रखते हैं, तथापि यहाँ की कई महत्त्वपूर्ण औषधियों तथा पदार्थों के नाम भी अमरकोष में नहीं परिगणित हैं। उदाहरण के लिए मेदा ( धन्वन्तरिनिघण्टु १।१२७ ), यवतिक्ता ( ध० नि० १।२५६ ), कासीसम् ( ध० नि० २।१२३ ), पुष्पकासीसम् ( ध० नि० २।१२५ ), गृंजरम् ( गर्जरम्—ध० नि० ४।६९ ), सुवर्चला ( ध० नि० ४।९८ ), आरुकम् ( ध० नि० ५।३८ ) तथा पालेवतम् ( ध० नि० ५।६६–६७ ) शब्द अमरकोष में प्राप्त नहीं हैं।

धन्वन्तरिनिघण्टु तथा अमरकोष के साम्य वाले स्थलों का अध्ययन करने पर ये तीन निष्कर्ष सामने आते हैं—

( १ ) कहीं-कहीं तो किसी औषधि के लिए अमरकोष तथा धन्वन्तरिनिघण्टु में समान संख्या में पर्याय परिगणित हैं। उदाहरणार्थः—

शतावरी—शतावरी शतपदी पीवरीन्दीवरी वरी।
ऋष्यप्रोक्ता द्वीपिशत्रुर्द्वीपिका चोर्ध्वकण्टका ॥
धन्वन्तरिनिघण्टु १।२९१

शतमूली बहुसुताऽभीरुरिन्दीवरी वरी।
ऋष्यप्रोक्ताऽभीरुपत्री नारायण्यः शतावरी ॥ अमर० २।४।१०१

पृष्टिपर्णी ( पृश्निपर्णी )

पृष्टिपर्णी पृथक्पर्णी कलशी धावनी गुहा।
शृगालविन्नाऽङ्घ्रिवल्ली पर्णी क्रोष्टुकपुच्छिका ॥
धन्वन्तरिनिघण्टु १।९०

पृष्निपर्णी पृथक्पर्णी चित्रपर्ण्यङ्घ्रिपर्णिका।
क्रोष्टुविन्ना सिंहपुच्छी कलशिर्धावनिर्गुहा ॥ अमरकोष २।४।१२

पलाण्डु ( प्याज )

पलाण्डुर्यवनेष्टश्च सुकन्दो मुखदूषणः।
हरितोऽन्यः पलाण्डुश्च लतार्को दुर्द्रुमः स्मृतः ॥
धन्वन्तरिनिघण्टु ४–७१

.... ...... ...... पलाण्डुस्तु सुकन्दकः।
लतार्कद्रुर्द्रुमौ तत्र हरिते। अमर० २।४।१४७

सुश्रुत ने तो लशुन को भी पलाण्डु का ही भेदविशेष बताया है—

लशुनं दीर्घपत्रश्च पिच्छगन्धो महौषधम्।
फरणश्च पलाण्डुश्च लतार्कश्चापराजिता।
गृंजनं यवनेष्टश्च पलाण्डोर्दश जातयः ॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

परन्तु यह बात विशेष ध्यान देने की है कि अमरकोषकार ने धन्वन्तरिनिघण्टु का ही अनुकरण करके दोनों को भिन्न-भिन्न ही स्थलों पर रखा है।

मुस्ता ( मोथा )--

मुस्ता चाम्बुधरो मेघो घनो राजकशेरुकः।
भद्रमुस्तो वराहोऽब्दो गांगेयः कुरुविन्दकः॥
जीमूतोऽथ वृषध्वांक्षी जलदोऽथ जलावहः।
नादेयः पिण्डमुस्तोऽन्यो नागरः परिकीर्तितः॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।४०-४१

कुरुविन्दो मेघनामा मुस्ता मुस्तकमस्त्रियाम्।
स्याद् भद्रमुस्तको गुन्द्रा चूडाला चक्रलोच्चटा॥ अमरकोष २।४।१५९

जीवन्ती ( शाकविशेष )—

जीवन्ती जीवनीया च जीवनी जीववर्धिनी।
मांगल्या नामधेया च शाकश्रेष्ठा यशस्करी॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१४०

जीवन्ती जीवनी जीवा जीवनीया मधुः स्रवा। अमरकोष २।४।१४२

जीवक—

जीवकः शृंगकः क्ष्वेडो दीर्घायुः कूर्चशीर्षकः।
ह्रस्वांगो मधुरः स्वादुः प्राणदश्चिरजीव्यपि॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१२३

कूर्चशीर्षो मधुरकः शृंगह्रस्वांगजीवकाः। अमरकोष २।४।१४२

पूगफलम् ( सुपारी )—

स्यात्पूगफलमुद्वेगस्त्रंसि घोण्टफलं स्मृतम्।
चिक्कणं चिक्कणी चिक्का गुवाकः खपुरं च तत्॥

धन्वन्तरिनिघण्टु ३।३९

घोण्टा तु पूगः क्रमुको गुवाकः खपुरोऽस्य तु, फलमुद्वेगम्।

अमरकोष २।४।१६९

अमरकोष में पूग के वृक्ष तथा फल को पृथक्-पृथक् परिगणित किया गया है। फल की केवल एक संज्ञा 'उद्वेग' दी गई है, जब कि धन्वन्तरि ने सभी ९ पर्याय वृक्ष के नहीं, वरन् फल के लिए गिनाये हैं।

( २ ) कुछ स्थलों में अमरकोषकार ने धन्वन्तरिनिघण्टु के सभी पर्यायों को ग्रहण नहीं किया है। कुछ उदाहरण ये हैं :—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मंजिष्ठा ( मंजीठ )--

मंजिष्ठा कालमेषी च समंगा विकसाऽरुणा ।
मंजुका रक्तयष्टी च माण्डी योजनवल्ल्यपि ॥
क्षेत्रिणी विजया रक्ता रक्तांगी वस्त्रभूषणा ।
जिंगी मण्डी तथा काला गण्डाली कालमेषिका ॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१७,१८

मंजिष्ठा विकसा जिंगी समंगा कालमेषिका ।
मण्डूकपर्णी मण्डीरी मण्डी योजनवल्ल्यपि । अमरकोष २।४।९०

दारुहरिद्रा ( हल्दी )—

अन्या दारुहरिद्रा च पीतद्रुः पीतचन्दनम् ।
निर्दिष्टा काष्ठरजनी सा च कालेयकं स्मृतम् ॥

पीतदारु या पर्जन्या—

कालायको दारुनिशा दर्वी पीताध्वपीतकम् ।
कटं कटेरी पर्जन्या पीतदारु पचंपचा ॥
हेमवर्णवती पीता हेमकान्ता कुसुम्भवा ।

धन्वन्तरिनिघण्टु १।५७-५९

अथ पीतद्रुकालेयकहरिद्रवः, दार्वी पचंपचा
दारुहरिद्रा पर्जनीत्यपि । अमरकोष २।४।१०१

गोक्षुरक—

गोक्षुरः स्याद् गोक्षुरको भक्षकः स्वादुकण्टकः ।
गोकण्टको भक्षटकः षडङ्गः कण्टकान्वितः ॥
अन्यच्च—
गोकण्टको गोक्षुरः कण्टी षडंगः क्षुरकं क्षुरः ।
त्रिकण्टकः कण्टफलः श्वद्रंष्टो व्यालदंष्टकः ॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१०३

पलंकषा त्विक्षुगन्धा श्वदंष्ट्रा स्वादुकण्टकः ।
गोकण्टको गोक्षुरको वनशृंगाट इत्यपि ॥

अमरकोष २।४।-९९

मुद्गपर्णी ( वनमूँग )—

मुद्गपर्णी क्षुद्रसहा शिम्बी मार्जारगन्धिका ।
वनजा रिंगिणी ह्रस्वा शूर्पपर्ण्यामुभे स्मृते ॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१३८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मुद्गपर्णी तु काकमुद्गा सहेत्यपि ।

अमरकोष २।४–११३

माषपर्णी ( वनउड़द )—

माषपर्णी च काम्बोजी कृष्णवृन्ता महासहा ।
आर्द्रमाषा सिंहविन्ना मांसमाषाऽश्वपुच्छिका ॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१:६

हयपुच्छी तु काम्बोजी माषपर्णी महासहा ।

अमरकोष २।४।१३८

( ३ ) तीसरे प्रकार के स्थल वे हैं, जहाँ कि धन्वन्तरिनिघण्टु की अपेक्षा अमरकोष में ही अधिक पर्याय परिगणित हैं ।

उदाहरणार्थ––

गुडूची ( गिलोय या गुडुच )—

गुडूच्यमृतवल्ली च च्छिन्ना छिन्नरुहाऽमृता ।

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१–५

वत्सादनी छिन्नरुहा गुडूची तन्त्रिकाऽमृता ।
जीवन्तिका सोमवल्ली विशल्या मधुपर्ण्यपि ॥

अमरकोष २।४–८२

मूर्वा ( लताविशेष )—

मूर्वा मधुरसा देवी पृथक्पर्णी त्रिपर्ण्यपि ।
देवश्रोणी स्वादुरसा स्निग्धपर्णी च मोरटा ॥

धन्वन्तरिनिघण्टु १।१३

मूर्वा देवी मधुरसा मोरटा तेजनी स्रवा ।
मधूलिका मधुश्रेणी गोकर्णी पीलुपर्ण्यपि ॥

अमरकोष २।४।८३

परन्तु ऐसे उदाहरण सबसे कम हैं । प्रस्तुत पहले उदाहरण के आधार पर कहा जा सकता है कि यद्यपि कुछ स्थलों में किसी वृक्ष या औषधि के पर्याय धन्वतरिनिघण्टु में ही अधिक हैं, तथापि अमरकोषकार ने उन सबको ग्रहण न करके कुछ शब्द अन्य आयुर्वेद ग्रन्थों से भी लिए हैं । इस प्रकार अन्य भी कई स्थलों में कई शब्द ऐसे आए हैं, जो धन्वन्तरिनिघण्टु में परिगणित नहीं हैं । मनुष्यवर्ग में प्राप्त रोगों के विषय में भी ऐसा ही कहा जा सकता है । संभवतः अमरकोषकार ने पूर्ववर्ती चरक तथा सुश्रुत संहिताओं का भी आश्रय अपने कोष के निर्माण के सम्बन्ध में लिया होगा । वनौषधि-वर्ग के ही अन्तर्गत परिगणित विभिन्न तरकारियों के आधारस्रोत भी कुछ अन्य ग्रन्थ

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

रहे होंगे, जिनका अनुमान भर हम लगा सकते हैं। फिर भी निष्कर्षरूप में तो य कथन ही ग्राह्य होगा कि अमरकोषकार का प्रमुख प्रमाण एवं आधारस्रोत धन्वन्तरि निघण्टु ही है।

## कालिदास तथा अमरकोष

संस्कृत वाङ्मय के मूर्धन्य कवि कालिदास के काल-निर्धारण के सम्बन्ध में दि गए एक मत के अनुसार वह चतुर्थ शती के माने जाते हैं और विक्रमादित्य हो के नवरत्नों में से एक कहे जाते हैं। कालिदास के काव्यग्रंथों में आए विभिन्न शब्द अमरसिंह ने अपने कोष में सम्मिलित किए। सम्भवतः कालिदास अमरकोषकार के पूर्ववर्ती रहे होंगे। अमरकोष से सुरेशचन्द्र बैनर्जी द्वारा सम्पादित 'कालिदासकोष'[1] के शब्दों का साम्य करने पर अधिकतर शब्द दोनों में समान अर्थ में मिलते हैं—

### पुष्प तथा वृक्षों से सम्बन्धित नाम

| | |
|---|---|
| इन्दीवर रघु० ४.६५ | १.१०.३७ |
| अब्ज रघु० ४.६१ | ३.३.३२ |
| कुशेशय अभि० रघु० | १.१०.४० |
| पद्म रघु० मे० वि० | १.१.७१, १.१०.३९ |
| पुण्डरीक रघु० कु० वि० | १.३.३, १.१०.४१, ३.३,११ |
| पुष्कर रघु० कु० | १.२.१, १.१०.४, २.४.१४३ |
| राजीव कु० | १.१.४९, १.१०.४२ |
| तामरस कु० रघु० | १.१०.४० |
| उत्पल, कमल मे० कु० रघु० | १.१०.३७, २.४.११६.३.३.१९ |

कालिदास द्वारा उल्लिखित कमल के सभी प्रमुख पर्याय अमर० में प्राप्त हैं। साथ-साथ-ही कुछ अन्य मिलाकर कमल के १६ पर्याय अमरकोष में परिगणित हैं। इसी प्रकार कालिदास के द्वारा प्रयुक्त आम्र के अनेक पर्याय 'चूत' (अमर० २।४।३३) तथा 'सहकार' (अमर० २।४।३३) आदि भी अमरकोष में संगृहीत हैं। इसके अतिरिक्त अकारादिक्रम से कुछ अन्य वृक्षों एवं फूलों से सम्बन्धित नाम आए हैं, जिनका उल्लेख निम्नांकित पंक्तियों में हुआ है :——

| कालिदासकोष | अमरकोष |
|---|---|
| अशोक | २।४।६४ |
| अर्जुन | २।४।४५ |

१. चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९६८, चौखम्बा संस्कृत स्टडीज।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| कालिदासकोष | | अमरकोष |
|---|---|---|
| अक्षोट | | २।४।१८ |
| अर्क | मदार, आक | ८।३।४ |
| चन्दन | | २।६।१३७ |
| बिस | कमलनाल | १।१०।४२ |
| बिसिनी | कमलपौध | १।१०।३९ |
| इंगुदी | एक औषध वृक्ष | २।४।४६ 'तापस तरु' |
| जम्बू | जामुन | २।४।१९ |
| कदली ( कन्दली ) | | २।४।११३ |
| किंशुक | पलाश | २।४।२९ |
| नारिकेल | | २।४।१६८ |
| पूग | सुपारी | २।४।१६९ |
| सप्तपर्ण | सप्तच्छद | २।४।३३ |
| सरल | देवदारु वृक्ष का एक प्रकार-मल्लिनाथ | २।४।५६ |
| ताल ( तालि ) | | २।४।१६८ |
| **तृण** | | |
| दर्भ | कुश घास | २।४।१६६ |
| दूर्वा | सामान्य ,, | २।४।११८ |
| काश | तृणविशेष | २।४।१६२ |
| कुश | | २।४।१६३ |
| शाद्वल | ,, | २।१।१० |
| उशीर | ,, | २।४।१६४ |
| **जड़ें तथा लताएँ** | | |
| वंश | बाँस | २।४।१६० |
| इक्षु | ईख | २।४।१६३ |
| कीचक | बाँस का प्रकार | २।४।१६१ |
| एला लता | इलायची | २।४।१६३ |
| लवंग | लौंग | २।६।१२५ |
| द्राक्षा | अंगूर | २।४।१०७ |

इनके अतिरिक्त कालिदासकोष में 'पक्षी' शीर्षक के अन्तर्गत परिगणित शब्दों में से अधिकांश अमरकोष में प्राप्त होते हैं।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

**पक्षी**

| | | |
|---|---|---|
| बलाक | बगुला | २।५।२५ |
| बर्हिण | मयूर | २।५।३० |
| चक्रवाक | चकवा | २।५।२२ |
| चातक | | २।५।१७ |
| हंस | | २।५।७१।३।३१, २।५।२ |
| कोकिल | | २।५।१९ |
| मयूर | | २।४,१११ |
| शुक | | २।४।१३२ |

**पशु**

| | | |
|---|---|---|
| अनेकप | हाथी | २।६।३४ |
| बलीवर्द | बैल | २।९।५९ |
| गवय | एक प्रकार का हरिण—मल्लिनाथ। | २।५।११ |
| करेणु | हथिनी | ३।३।५२ |
| स्तम्बेरम | हाथी | २।८।३५ |
| शार्दूल | | २।५।१ |
| वामी | घोड़ी | २।८।४६ |

**जल-जन्तु**

| | | |
|---|---|---|
| नक्र | मगर | १।१०।२१ |
| तिमि | ह्वेल मछली | १।१०।१९ |

कालिदास के काव्य में आए स्थानों की संज्ञाएँ अमरकोष में उपलब्ध नहीं होतीं। नदियों में गंगा, मन्दाकिनी, भागीरथी, कालिन्दी, सरस्वती, कावेरी, सोन तथा वेत्रवती के उल्लेख अमरकोष तथा कालिदासकोष में समानरूप से मिलते हैं। पर्वतों के नामों में हिमालय, गन्धमादन, हेमकूट तथा त्रिकूट के नाम उल्लेखनीय हैं, जो कि दोनों कोषों में पाए जाते हैं। कालिदास के काव्यों में संगीत के वाद्यों का भी उल्लेख हुआ है, जिनके साम्य अमरकोष में उपलब्ध होते हैं। इनमें से मुख्य हैं—दुन्दुभि, मृदंग, मुरज, पटह, वल्लकी तथा वीणा। पौराणिक पुरुषों में मनु, अत्रि तथा अगस्त्य के नाम भी दोनों कोषों में परिगणित हैं।

देवी-देवताओं के नामों की निम्नलिखित सारणी में दोनों कोषों में साम्य देखा जा सकता है :—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| कालिदासकोष | | अमरकोष |
|---|---|---|
| आखण्डल | इन्द्र | १।१।४१, ४४ |
| अम्बिका, भवानी, पार्वती, अपर्णा, गौरी | पार्वती | १।१।३७ |
| अनंग | कामदेव | १।१।२५-२६ |
| हर, गिरीश, शर्व, स्थाणु शूलभृत्, विरूपाक्ष, सहस्राक्ष, भव, पिनाकिन्, स्मरशासन | शिव | १।१।३२, ३।३।१४ |
| इन्द्र, शक्र, पुरन्दर पाकशासन, विडौजा, मघवन्, प्रचेतस्, गोत्रभित् | इन्द्र | १।१।४१-४४ इन पर्यायों के साथ ही कुल ३५ नाम । |
| काम, मदन, कन्दर्प, अनंग, स्मर, मन्मथ, मनसिज, कुसुमायुध, पंचशर | कामदेव | १।१।२५-२६ इनके साथ ही कामदेव के कुल १९ नाम संगृहीत हैं । |

इसी भाँति ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, कुबेर, जयन्त इत्यादि देव-देवियों के नामों में दोनों कोषों में बहुत अधिक साम्य दृष्टिगत होता है ।

संस्कृत साहित्य के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि कालिदास के सर्वाधिक प्रचलित एवं ख्यात काव्य-ग्रन्थों, रघुवंश तथा कुमारसम्भव, में आए शब्दों का संकलन अधिकांश अमरकोष में संगृहीत मिलता है और इससे अमरकोष की लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है । रघुवंश के द्वितीय सर्ग में आए नामपदों का अध्ययन करने से स्पष्ट हुआ कि इसमें कुल ३५२ नामपद प्रयुक्त हुए हैं, जिसमें से कुल २७५ पद अमरकोष में उन्हीं अर्थों में मिलते हैं । इस प्रकार कुल प्रयुक्त शब्दों का लगभग ८०.४ प्रतिशत अमरकोष में संगृहीत है । कालिदास द्वारा रघुवंश में प्रयुक्त निम्नलिखित कुछ महत्त्वपूर्ण शब्द अमरकोष में अप्राप्त हैं :—

अनुज्ञा, अनुनय, अनुयायी, अपांसुला, अभिनन्दन, अभिराम, अर्थपति, अव्याहत, अष्टमूर्ति, आचार, आस्वाद, उन्मूलन, उपप्लव, ऊन, ओत्सुक्य, औषधीनाथ, क्लान्त, क्षत, क्षितिपाल, क्षितीश, गृहिणी, चेष्टा, निवारण, निष्क्रिय, परम्परा, प्रयत्न, विचार तथा विलय इत्यादि । इसी प्रकार कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में आए नामपदों का अध्ययन करने से स्पष्ट हुआ कि इसमें कुल ३४९ नामपद प्रयुक्त हुए हैं, जिनमें से कुल २७४ पद अमरकोष में उन्हीं अर्थों में मिलते हैं । इस प्रकार कुल प्रयुक्त शब्दों का लगभग ७८.५१ प्रतिशत अमरकोष में संगृहीत है । कुमारसम्भव के प्रथम सर्ग में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रयुक्त निम्नलिखित प्रमुख नामपदों को अमरकोषकार ने अपने कोष में स्थान नहीं दिया है :—

अभ्यर्थना, अम्भोनिधि, आधिपत्य, उत्संग, उपदेश, उपयोग, कमनीय, कृत्रिम, गिरा, दर्प, निर्माण, प्रयोग, प्राक्तन, शिथिल तथा संस्कार इत्यादि।

निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि कालिदास के द्वारा प्रयुक्त अधिकाधिक शब्द अमरकोष में हैं और शब्द-हानि स्वल्प है।

## अमरकोष तथा नाटचशास्त्र

अमरकोष की लोकप्रियता एवं समृद्ध होने का अनुमान उसमें संगृहींत पदों से किया जा सकता है। अमरकोष के प्रथम काण्ड के सप्तम नाट्यवर्ग में परिगणित पद भरतमुनि प्रणीत ख्यात कृति नाट्यशास्त्र के उल्लेखों से साम्य रखते हैं। इस वर्ग की नाट्यशास्त्र[1] से तुलना करने पर निम्नांकित प्रकार के तथ्य सामने आते हैं—

नाट्यशास्त्र के खण्ड १ अध्याय ४ में नृत्त तथा ताण्डव में भेद स्थापित किया गया है, जो कि अमरकोष ( १।७।१० ) के 'ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तने' भेदों की सार्थकता सिद्ध करता है—

गीतप्रयोगमाश्रित्य नृत्यमेतत्प्रवर्त्यताम्।
प्रायेण ताण्डवविधिर्देवस्तुत्याश्रयो भवेत्॥
सुकुमारप्रयोगश्च श्रृंगाररससंभवः। ४।२६५।६

इसी प्रकार भाव तथा अनुभाव ७।१ के उल्लेख में आया है—

'विभावैराहृतो योऽर्थो ह्यनुभावैस्तु गम्यते।
वागंगसत्त्वाभिनयैः स भाव इति संज्ञितः॥

अमरकोष ( १।७।२१ ) में उल्लेख हैं—

'विकारो मानसो भावोऽनुभावो भावबोधकः।'

नाट्यशास्त्र ( ७।३ ) में भाव का उत्तम विवेचन हुआ है—

वागंगमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च।
कवेरन्तर्गतं भावं भावयन्भाव उच्चते॥
नानाभिनयसंबद्धान्भावयन्ति रसानिमान्।

इसी प्रकार अनुभाव ( ७।७) का नाट्यशास्त्र में विशेष विवेचन होना स्वाभाविक ही है। अमरकोष में क्रोध, उत्साह, रोमांच, चिन्ता, उन्माद, कौतूहल इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है। नाट्यशास्त्र में स्थायी तथा व्यभिचारी भावों के रूप में प्रयुक्त हुए

---

१. मानवल्ली रामकृष्ण कवि द्वारा संपादित—केन्द्रीय लाइब्रेरी, बड़ौदा १९२६ में गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज के अन्तर्गत प्रकाशित।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

हैं। इसी प्रकार स्त्रियों से सम्बद्ध श्रृंगार उसके 'हाव' विशेष का उल्लेख दोनों में लगभग समानरूप से हुआ है—

यो वै हावः स एवैषा श्रृंगाररससंभवा।
समाख्याता बुधैर्हेला ललिताभिनयात्मिका ॥ नाट्य० २४।११
स्त्रीणां विलासविव्वोकविभ्रमा ललितं तथा।
हेला लीलेत्यमी हावाः क्रियाः श्रृंगारभावनाः ॥

अमर० १।७।३१-३२

परन्तु स्त्रियों के स्वभावज लीला, विलास, विच्छिति, विभ्रम, किलकिंचित, मोहायित, कुट्टमित, विव्वोक, ललित तथा विहृत—इन दश भावों का अमरकोष में उल्लेख का पूर्ण अभाव है। ये भाव सा० द० ३।८९-९३ तथा ३।९३-११० में और 'नाटकरत्नकोश' में भी स्पष्ट किए गए हैं।

श्रृगाररस के विषय में अमरकोष तथा नाट्यशास्त्र में बहुत मतभेद है :—

'श्यामो भवति श्रृंगारः सितो हास्यः प्रकीर्तितः।' नाट्य० ६।४७

तथा— 'श्रृंगारः शुचिरुज्ज्वलः।' अमर० १।७।१७

नाट्यशास्त्र ( वॉल्यूम ३ ) में मुख, प्रतिमुख प्रभृति नाट्यसन्धियों के वर्णन में जो 'निर्वहण' का उल्लेख है, वह अमरकोष में भी प्राप्त है—

'समानयनमर्थानां मुख्यार्थानां सबीजिनाम्।'
नानाभावोत्तराणां यद् भवेन्निर्वहणं तु तत् ॥' नाट्य० २१।४३
'निष्ठा निर्वहणे समे।' अमर० १।७।१५

अर्थात् नाटक के निर्वहण नामक पाँचवीं सन्धि विशेष या आरंभ किए हुए विषय को पूर्ण करने के दो नाम हैं। अमरकोष के नाट्यवर्ग के प्रारम्भ में दिए गए विभिन्न स्वर प्रकार—निषाद, ऋषभ, गान्धारादि, विभिन्न मुखनिःसृत स्पष्ट तथा अस्पष्ट ध्वनियों—काकली, कल, तार, मन्द्र इत्यादि का उल्लेख नाट्यशास्त्र में नहीं मिलता। परिवादिनी ( सितार ), ततम् ( वीणा, सारंगी आदि वाद्य ), आनद्धम् ( चर्ममंडित मुरज आदि ), सुषिरम् ( वंशी आदि ), घनम् ( घंटा आदि ) इत्यादि वाद्यों का भी उल्लेख नाट्यशास्त्र में नहीं हुआ है। 'अमरकोष के नाट्यवर्ग के प्रारम्भ में ही मृदंग, उसके विभिन्न भेद, यशःपटह ( नगाड़ा ), भेरी, घोणः ( इसराज आदि ), पटह तथा वीणा के विभिन्न स्थानों का विस्तृत वर्णन किया गया है। नाट्यशास्त्र में तो इनका उल्लेख भी नहीं हुआ है। अमरकोष में इनके समावेश का कारण सम्भवतः इनका व्यवहार में होना ही है। इनका आधारस्रोत संगीतशास्त्र ही रहा होगा, ऐसी कल्पना की जा सकती है।

नृत्य, ताल, लय, भ्रंकुस ( स्त्री का रूप बनाकर नाचने वाले नर्तक ) इत्यादि

 CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पदों का भी बृहत् संयोजन अमरकोष में किया गया है। नाटक में ही प्रयुक्त होने वाले भावः ( विद्वान् ), आबुकः ( पिता ), आवुत्तः ( बहनोई ) इत्यादि पद अमरकोष में ही प्राप्त होते हैं।

यहीं पर परिगणित त्रपा, व्रीडा ( लज्जा ), क्षान्ति, तितिक्षा ( दूसरे की उन्नति को सहन न करना ), अभिध्या (दूसरे की सम्पत्ति की इच्छा करना), असूया, वैर, मन्यु, शोक, पश्चात्ताप, शील, उन्माद, दोहद ( गर्भिणी की इच्छा ) इत्यादि शब्दों को नाट्यवर्ग में स्थान देने के औचित्य पर शंका हो उठती है। उत्कंठा, उत्कलिका, चिन्ता, स्मृति, उत्साह, वीर्य, लालसा, धर्मचिन्ता आदि नायक–नायिकाओं के मानसिक विकारों के लिए प्रयुक्त शब्दों का औचित्य तो स्वीकार किया जा सकता है।

भरतनाट्यशास्त्र के अनुसार ५ नाट्यसंधियों में से कुल एक और अन्तिम 'निर्वहण' सन्धि का ही उल्लेख अमरकोष में किया गया है। अतः मुख, प्रतिमुख इत्यादि ४ अन्य के उपविभागों के उल्लेख का तो प्रश्न ही नहीं उठता। कैशिकी, आरभटी, भारती आदि नाट्यवृत्तियों का अभाव भी अमरकोष के नाट्यवर्ग की अपूर्णता का द्योतक है। अमरकोष में आधिकारिक, प्रासंगिक, आनुषंगिक इतिवृत्तियों का उल्लेख नहीं हुआ है। इसी प्रकार फलारंभ प्रभृति पंचावस्था तथा बीजबिन्दु प्रभृति अर्थप्रकृतियों का भी उल्लेख नहीं हुआ है। नाट्यशास्त्र में नेपथ्य, आकाशभाषित, त्रिपताक आदि नाट्य व्यवहारों का वर्णन आया है, जो अमरकोष में सर्वथा अप्राप्य है। इसी प्रकार नाटक के पात्रों के वस्त्रालंकरण, उनकी चेष्टाओं, भाषा इत्यादि का भी अमरकोष में कोई सन्दर्भ नहीं मिलता।

अमरकोष में नायिका-भेद भी अप्राप्त है। यही बात नायकों के प्रकार के विषय में भी कही जा सकती है। शठ, निष्ठुर, वाम, स्वामी, नन्दन, धीरोदात्त, धीरललित इत्यादि नायकप्रकार तथा वासकसज्जिका, अभिसारिका, स्वाधीनपतिका, प्रोषित-भर्तृका इत्यादि नायिका-भेद भी अमरकोष में नहीं है। यहाँ परिचारिका, कुमारी, वृद्धा, अन्तःपुरिका, कारुक, वर्षवर, कुमारीरक्षक इत्यादि पात्रों का भी उल्लेख नहीं हुआ है। कृताभिषेक पटरानी के लिए 'देवी' या 'महादेवी' शब्द दोनों स्थानों पर प्रयुक्त हुआ है।[1]

दूरस्थाभाषण, आत्मगतभाषण, अपवारित तथा जनान्तिक इत्यादि प्रमुख नाट्य-सम्भाषणों का पूर्ण अभाव अमरकोष के शब्द-संकलन में दीखता है।

## अमरकोष तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र

अमरकोष के द्वितीय काण्ड के द्वितीय पुरवर्ग तथा अष्टम क्षत्रियवर्ग के अधिकांश शब्दों तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र में प्रयुक्त शब्दों में पर्याप्त साम्य दृष्टिगत होता है।

१. द्रष्टव्य—नाट्यशास्त्र ( ३ ) ५–२४।३७ तथा अमरकोष १।७।१३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

चाणक्य विरचित कौटिल्य अर्थशास्त्र[1] से अमरकोष के शब्दों का मिलान करने पर निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते हैं—

अधिकांश शब्द दोनों में एक ही अर्थ में प्रयुक्त हैं, यद्यपि अमरकोष में वही शब्द एक से अधिक अर्थों में भी आया है। उदाहरणार्थ—

अक्ष ( पांसा ), अत्यय ( वैद्यदण्ड ), अधिविन्ना ( एक से अधिक विवाह करने वाले पति की प्रथम विवाहिता पत्नी ), अन्य ( दुष्ट नीति ), अनूप ( जलमय प्रदेश ), अन्तर्वेंशिमक ( अन्तःपुर का रक्षक प्रधान अधिकारी ), आजीव ( जीविका ), आपूपिक ( अपूपादि का निर्माता, विक्रेता ), आसन[2] ( नीति जानने वालों के छह गुणों में से एक— सन्धि-विग्रहादि की उपेक्षा करके अपनी शक्ति को पुष्ट करके अपने राज्य में चुपचाप बैठ जाना ), उपजाप ( कुत्सित मंत्रणादि के द्वारा फूट उत्पन्न करना ), उपधा ( छल-पूर्वक मंत्री आदि के धर्मगुणादि का राजा द्वारा परीक्षा लेना ), उपनिधि ( धरोहर ), ऊह ( चिन्तन या तर्क ), औरस ( विवाहिता पत्नी से उत्पन्न अपना पुत्र ), कदर्य ( स्वयं एवं परिवार वालों को कष्ट देकर धन संचय करने वाला, कंजूस ), कर्ष (सोलह माशा भर का बाटविशेष ), कानीन ( अविवाहिता कन्या से उत्पन्न पुत्र ), कारु ( शिल्पी, कारीगर ), कार्तान्तिक ( कृतान्त या यम का पट दिखाकर जीविका चलाने वाला ज्योतिषी ), कुल्या ( नहर ), कौशिक ( साँप दिखाकर जीविका कमाने वाला, सँपेरा ), गूढ़ पुरुष ( गुप्तचर ), गोपुर ( दुर्ग या नगर का द्वार ), जंघाकारिक ( हर-कारा ), डमर, डिम्ब ( विप्लव ), टंक ( छेनी ), तुन्नवाय ( दर्जी ), दायाद ( पिता की सम्पत्ति पाने का अधिकारी पुत्रादि ), द्यूत ( जुआ ), नदीमातृक ( कृषि-कार्य हेतु नदी जलसुलभ प्रदेश ), नीवी ( मूलधन ), निधि ( खजाना ), नियामक ( जलपोत का चालक ), पत्तन ( नगर ), प्रकृति ( राजा, मंत्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और दंड नाम के सात राज्यांग ), प्रतिभू (जमीनदार), प्रतोली ( रथ चलाने योग्य गली या सड़क ),

---

१. पाण्डेय रामतेज शास्त्री 'रंजना' हिन्दी टीकोपेत सं० २०१६, पण्डित पुस्तकालय, काशी से प्रकाशित संस्करण के परिशिष्ट में प्राप्त पारिभाषिक शब्दकोष।

२. 'विग्रहेऽपि स्वके देशे स्थितिरासनमुच्यते।'
इति राजनीतिप्रकाशे वीरमित्रोदयः, पृ० ३२४।

क्षीणस्य चैव क्रमशो दैवात्पूर्वकृतेन वा।
मित्रस्य चानुरोधेन द्विविधं स्मृतमासनम्॥ 'इति मनुः ७।१६२–६८

'स गुणानां बलानां च षण्णां षण्मुखविक्रमः।
बभूव विनियोगज्ञः साधनीयेषु वस्तुषु॥ रघु० १७.६७

पणबन्धमुखान् गुणानजः षडुपायुङ्क्त समीक्ष्य तत्फलम्।
रघुरप्यजयद् गुणत्रयं प्रकृतिस्थं समलोष्टकाञ्चनः॥ रघु० ८।२१

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रवहण ( शकट आदि सवारी ), पारशव ( ब्राह्मण का शूद्रा पत्नी से उत्पन्न पुत्र ), पुरोहित ( राजा का धार्मिक उपदेष्टा ), वर्धकि ( बढ़ई ), वास्तु ( घर, खेत आदि ), विग्रह[1] ( दो राजाओं में युद्धस्वरूप द्रोहभाव तथा अपकारसाधन ), वैदेहक (व्यापारी), भृतक ( वेतनभोगी कर्मचारी ), मौहूर्तिक ( ज्योतिषी ), यान[2] ( शत्रु पर चढ़ाई ), रूपाजीवा ( वेश्या ), शौण्डिक ( मद्यविक्रेता ), सन्धि[3] ( भूमि, कोष, सेना आदि के माध्यम से दो राजाओं में समझौता ), समवाय ( समूह ), समाह्वय[4] ( पशु-पक्षियों आदि को दाँव लगाकर लड़ाना ), स्थान ( समयानुसार अपनी सुरक्षा करके शान्त बैठना ), सूना ( पशुवधशाला ), स्तेन ( चोरी ), हाटक ( स्वर्ण ), तथा हिरण्य ( धन ) इत्यादि ।

दोनों में कुछ शब्द ऐसे प्राप्त होते हैं जिनमें पृथक्ता प्रयुक्त सामान्य तथा विशेष अर्थों में पर्याप्त साम्य है । उदाहरण के लिए—अनुग्रह ( अमर० ३।२।११ ) सामान्य अर्थ 'भलाई करना' में प्रयुक्त हुआ है । अर्थशास्त्र में इसका अर्थ है—अल्पकालीन राजकरमुक्ति या राजा से प्राप्त प्रजा को बीज, धन आदि के रूप में सहायता । इसी प्रकार—अपसर्प ( अमर० २।८।१३ ) गुप्तचर तथा अर्थ० गुप्तचर के कार्य ), अवक्रय ( अमर० २।९।७९ मूल्य ) तथा अवक्रमण, अवक्रीत, अवक्रेता (कौ० अ० घर का भाड़ा, किरायेदार, मालिक ), अवमर्द ( अमर० २।८।१०६ अन्नादि से परिपूर्ण देश को राजा के शत्रु द्वारा पीड़ित करना तथा अर्थ० शत्रु-दुर्ग पर कब्जा ), अय ( अमर० १।४।२७ शुभकारक भाग्य, कौ० अर्थ० अभीष्टफल की प्राप्ति ), आवेशन ( अमर० २।८।७ कारीगर का घर ), आवेशिक ( कौ० अर्थ० सोने-चांदी का कारीगर ), आसार ( अमर० २।८।९६ सेना का फैल जाना, पीछे से आने वाली सेना तथा अर्थ० इस नाम के राजमित्र या सुहृत्सेना का आगमन ), ईक्षणिका ( अमर० २।६।२० हस्तपाद

---

१. वीरमित्रोदयः—'अपकारस्तु विग्रहः ।'
स्वयं कृतश्च कार्यार्थमकाले काल एव वा ।
मित्रस्य-चैवापकृते द्विविधो विग्रहः स्मृतः ॥ मनु० ७।१६२-१६८

२. 'पणबन्धः स्मृतः सन्धिः'—इति वीरमित्रोदयः । पृ० ३२४ ।
'समानयानकर्मा च विपरीतस्तथैव च ।
तदा त्वायतिसंयुक्तः संधिर्ज्ञेयो द्विलक्षणः ॥' मनु०, वही ।

३. 'जिगीषोः शत्रुविषये यानं यात्राऽभिधीयते' । वीरमित्रोदयः
एकाकिनश्चात्यायिके कार्ये प्राप्ते यदृच्छया ।
संहतस्य च मित्रेण द्विविधं यानमुच्यते ॥ मनु०, वही ।

४. तदुक्तम्—अप्राणिभिः कृतं यत्तु लोके तद् द्यूतमुच्यते ।
प्राणिभिः क्रियते यत्तु स विज्ञेयः समाह्वयः ॥ मनु० ९।२२३

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आदि का रेखाओं को देखकर शुभाशुभ लक्षणों को बताने वाली स्त्री), ईक्षणिक ( कौ० अर्थ० प्रश्नोत्तर द्वारा शुभाशुभ फल बताने वाला ), उदासीन ( अमर० २।८।१० शत्रु और मित्र से भिन्न लक्षण वाला राजा, कौ० अर्थ० सबसे बलवान् राजा ), विजिगीषु, ( उसके शत्रु एवं मध्यम राजा की अमात्यादि प्रकृति से बाहर विद्यमान, उसकी अपेक्षा प्रबल और इन तीनों राजाओं का एक साथ या अलग-अलग निग्रह करने में समर्थ ), उपस्कर ( अमर० २।९।३५ छौंक देने के लिए मसाला आदि, अर्थ० गृहस्थी की सामग्री ), गोप ( अमर० ३।३।१३० देश या कुल का अध्यक्ष, कौ० अर्थ० समाहर्ता के अधीन रहकर पंचगामी, दशगामी आदि का काम देखने वाला अधिकारी ), दण्डनीति ( अमर० १।६।५ बृहस्पति आदि रचित अर्थशास्त्र, कौ० अर्थ० राजनीति-विद्या ), नायक ( अमर० ३।१।११ स्वामी, कौ० अर्थ० दस सेनापतियों पर अधिकारप्राप्त प्रधान अफसर ), निशान्त ( अमर० २।२।५ मकान, कौ० अर्थ० राजमहल ), पक्ष ( अमर० ३।३।२२० पार्श्व, कौ० अर्थ सेना के अग्रभाग में दोनों पार्श्व भाग ), पण ( अमर० ३।३।४६ धन, अर्थ० चांदी का सिक्काविशेष ), प्रणय ( अमर० ३।३।१५२ याचना अर्थ० राजकोष के लिए अर्थसंकट के समय प्रजा से विशेष कर की याचना ), पार्ष्णिग्राह ( अमर० २।८।१० ), राजा के युद्धादि यात्रा में पीछे से किले पर चढ़ाई करने वाले या योद्धा के पीछे से रक्षा करने वाले राजा, कौ० अर्थ० विजिगीषु राजा के पृष्ठदेश की सटी हुई भूमि का अधिकारी ), पूग ( अमर० ३।३।२० समूह, अर्थ० मजदूर-संघ ), वर्तनी (अमर० २।१।१५ मार्ग, अर्थ० अन्तपाल द्वारा संगृहीत पथकर), विज्ञान ( अमर० १।५।६ शिल्प, शास्त्रसंबंधी बुद्धि, अर्थ० किसी विषय का विशेष ज्ञान ), व्यवहार ( लेन-देन संबंधी झगड़ा, अर्थ० ऋण आदि का लेनदेन का व्यापार ), युग्य ( अमर० २।८।५२ वाहनमात्र, अर्थ० बैल, खच्चर आदि जुए में जुतने वाले वाहन ), रिक्थ ( अमर० २।९।९० धन, अर्थ० पिता की छोड़ी हुई सम्पत्ति ) इत्यादि शब्द भी समझने चाहिए।

अमरकोष तथा कौटिल्य अर्थशास्त्र दोनों में कुछ ऐसे समान शब्द भी मिलते हैं जो पूर्णतया भिन्न अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित शब्द देखे जा सकते हैं—

अनीकस्थ (अमर० २।८।६ राजा आदि के अंगरक्षक, अर्थ० निपुण हस्ति-शिक्षक), अनुशय ( अमर० ३।३।१४८ द्वेष, कौ० अर्थ० क्रय-विक्रय सम्बन्धी विवाद ), अन्तर्धि ( अमर० १।२।१२ ढक देना, कौ० अर्थ० जो दुर्बल राज्य विजिगीषु तथा शत्रु के बीच पड़े ), अपहार ( अमर० ३।२।१६ अपहरण करना, अर्थ० आय खाते में न लिखना निर्धारित व्यय न करना, बचत का अपव्यय ) आक्रन्द ( अमर० ३।३।९० टोना, रक्षक आदि, अर्थ० विजिगीषु राजा के पीछे पार्ष्णिग्राह की सटी भूमि वाला राजा एवं विजिगीषु का मित्र ), आन्वीक्षिकी ( अमर० १।६।५ गौतम आदि रचित तर्कविद्या, अर्थ०

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अध्यात्म विद्या ), आरालिक ( अमर० २।९।२८ रसोइया, अर्थ० रक्तमांस विक्रेता ), उपगत ( अमर० ३।१।१०९ स्वीकृत, अर्थ० बान्धव द्वारा या स्वयं समर्पित पुत्र ), उरस्य ( अमर० २।६।२८ अपना सगा पुत्र, अर्थ० सेना का मध्यभाग ), कार्णिक ( अमर० ३।१।७ मठों के दानाध्यक्ष, अर्थ० गणना विभाग का छोटा कर्मचारी ), कुप्य (अमर० २।९।९१ सोना-चांदी से भिन्न ताँबादि धातु, अर्थ० साल, बांस, वल्कल, रस्सी, औषधि, विष, पशुचर्म आदि वस्तुएँ ), तीक्ष्ण ( अमर० ३।३।५३ विष, लड़ाई आदि, अर्थ० अपने शरीर की भी चिन्ता न करने वाला साहसी गुप्तचर ), दूष्य ( अमर० २।६।१०० डेरा, तम्बू इत्यादि, अर्थ० राजद्रोही ), नय ( अमर० ३।२।९ नीति, कौ० अर्थ० मानव कर्म द्वारा योगक्षेम का निर्वाह ), नालिका ( अमर० २।९।३४ साग के डण्ठल, अर्थ० २४ मिनट का समय ), पार्श्व ( अमर० २।६।७९ कोण, कौ० अर्थ० निश्चित आय से अधिक आय ), पार्ष्णि ( अमर० २।६।७२ घुटने के नीचे का भाग, अर्थ० राजसेना का पृष्ठभाग ), पुस्त (अमर० २।१०।२८ मिट्टी, कपड़े आदि से पुत्तलिका बनाना अर्थ० हिसाब की बही या पुस्तकविशेष ), वर्णक ( अमर० ३।५।३ चन्दन, गन्धद्रव्यादि, अर्थ० क्षुद्र स्वर्णमुद्रा ), वार्ता (अमर० ३।३।७५ बातचीत, जीविका, अर्थ० कृषि, पशुपालन तथा वाणिज्य-विषयक विद्या ), विष्टि (अमर० १।९।३ बलात्कार से नरक में ढकेलना, अर्थ० मजदूर वर्ग ), भक्त ( अमर० २।९।४८ भात, अर्थ० कर्मचारियों का भक्त ), भोग ( अमर० ३।३।२३ सुख, सर्पफणा इत्यादि, अर्थ० किसी वस्तु का स्वत्व निर्धारण हेतु उस पर किसका कब्जा है, यह जानना ), समुदाय ( अमर० २.५।४० समूह, अर्थ० जहाँ-जहाँ से आय की संभावना हो वहाँ-वहाँ से उसे भलीभाँति उगाहना ), सार्थ ( अमर० २।५।४१ भिन्न जातियों का समूह, अर्थ० व्यापारियों का संघ ), स्तम्भ (अमर० ३।३।१३५ खंभा, जड़ता, अर्थ० राज्यधन का गबन), सूचक ( अमर० ३।१।४७ चुगलखोर अर्थ० गुप्तरूप से समाचार लाने वाला ), सूद ( अमर० ३।३।९१, २।९।२८ व्यंजन, रसोइया, अर्थ० मांसपाचक ), इत्यादि।

कौटिल्य अर्थशास्त्र के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण शब्द अमरकोष में अप्राप्त हैं—

दौवारिक ( राजमहल का संरक्षक प्रधान अमात्य ), प्रशास्ता ( कंटक शोधन का अध्यक्ष ), समाहर्त्ता ( राज्य की आय को विभिन्न शासनाध्यक्षों के द्वारा एकत्र कराने वाला ), प्रदेष्टा ( मुख्य न्यायाधीश ), 'आत्मादिष्ट' 'पुरुषान्तर' आदि सन्धियाँ, मुद्रा ( राज्य के अन्दर आने या बाहर जाने वाले यात्रियों का पासपोर्ट ), द्वार ( किसी वस्तु पर निर्धारित चुङ्गी का पंचमाँश जो नगर के प्रधान द्वार पर प्रवेश के समय वसूल किया जाता था—( आयात शुल्क ), 'कापटिक' 'उदास्थित' 'गृहपातिक' 'तीक्ष्ण' 'रसद' प्रभृति गुप्तचर-उपाय चतुष्टय ( साम, दाम आदि ), परिवर्तक ( एक अनाज देकर बदले में दूसरा अनाज लेना ), शतघ्नी ( एक प्रकार की तोप ), तथा अन्य

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection.

आयुध, विभिन्न कवच शिरस्त्राण आदि आवरण, देशकाल, तथा यौत-मान ( माप-तौल में विस्तार का अभाव, उपगत, दत्त इत्यादि विभिन्न पुत्रों का भी उल्लेख नहीं हुआ है। निक्षेप ( दिखाकर या गिनकर रक्खी धरोहर ), मण्डल ( विजिगीषु मित्र, अमात्य जनपद दुर्ग कोषदंड व प्रकृति का संघ), तीन (मंत्र, प्रभु, उत्साह), शक्तियाँ तथा सिद्धिभय, तथा उपांशुदंड ( अधीनस्थ राजा को प्रतिकूल आचरण करने पर दिया जाने वाला दण्ड, छिपी कार्यवाहियाँ इत्यादि।

## अमरकोष तथा मनुस्मृति

'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्....इत्यादि परम्परा के आधार पर अमरकोष के द्वितीय काण्ड में जो मनुष्यवर्ग के बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रवर्ग में विभाजन हुआ है, वह मनुस्मृति के निम्नलिखित उल्लेख से साम्य रखता है—

सर्वस्यास्य तु सर्गस्य गुप्त्यर्थे स महाद्युतिः।
मुखबाहूरुपज्जानां पृथक्कर्माण्यकल्पयत् ॥ ( मनु० अ० १।८७ )

इनमें से सर्वश्रेष्ठ तथा क्रम में प्रथम ब्राह्मणों के कार्यों के विषय में आगे कहा गया है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ ( मनु० अ० १।८८ )

इसी तथ्य को अमरकोषकार ने ब्राह्मण के छह पर्याय परिगणित करके 'षट्कर्मा' शब्द से अभिव्यक्त किया है—

..................द्विजात्यग्रजन्मभूदेववाडवाः।
विप्रश्च ब्राह्मणोऽसौ षट्कर्मा यागादिभिर्युतः ॥ ( अमर० २।७।४ )

षट्कर्मा ब्राह्मण के कार्य इस प्रकार हैं—यज्ञ करना, अध्ययन करना, दान देना, यज्ञ कराना, पढ़ना और दान लेना।

इसी प्रकार वैश्य के कर्मों का मनु ने इस प्रकार निर्देश किया है—

पशूनां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च ॥ ( मनु० १।९० )

अमरकोषकार ने वणिग्वृत्ति को इस प्रकार स्पष्ट किया है—

'स्त्रियां कृषिः पाशुपाल्यं वाणिज्यं चेति वृत्तयः' ( अमर० २।९।२ )

और यह गीता १८।२४ के निम्नलिखित उल्लेख से पुष्ट ही होता है :—

'कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।'

शूद्रों के विषय में मनु ने एकमात्र कार्य अपने से भिन्न तीनों वर्णों की सेवा बताया है—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥ मनु० १।९१

परन्तु अमरकोष के द्वितीय काण्ड के अन्तिम तथा दशम शूद्रवर्ग में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है । शूद्रों के विभिन्न पर्याय परिगणित करके अमरकोषकार ने पशुओं का शिकार करना, लोहे, सोने, चाँदी आदि का काम करना, मदिरा आदि का कार्य करना इत्यादि कार्य शूद्रों के लिए बताए हैं ।

प्रत्येक गृहस्थ के द्वारा क्रियमाण पंच महायज्ञों का उल्लेख अमरकोषकार ने इन शब्दों में किया है :—

'पाठो होमश्चातिथीनां सपर्या तर्पणं बलिः ।
एते पञ्च महायज्ञाः ब्रह्मयज्ञादिनामकाः ।। अमर० २।७।१४

टीकाकार क्षीरस्वामी ने इनको स्पष्ट करते हुए मनु के द्वारा निर्दिष्ट उक्ति से इसे पुष्ट भी किया है—

स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः, होमो देवयज्ञः, नृयज्ञोऽतिथिपूजनं, तर्पणं श्राद्धाख्यं पितृयज्ञः, बलिर्भूतयज्ञः ।

यन्मनुः—स्वाध्यायो ब्रह्मयज्ञः स्यात् पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
होमो देवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥'
(क्षीरस्वामी अमर० २।७।१४ की टीका)

## अमरकोष में बुद्ध के पर्याय तथा बौद्ध-ग्रन्थ

अमरकोष के प्रथम काण्ड के प्रथम 'स्वर्गवर्ग' (१।१।१३-१४-१५) में बुद्ध के लिए १८ नाम तथा सप्तम बुद्ध के लिए सात नाम गणित हैं, जो कि मोगगलान थेर-विरचित 'अभिधानप्पदीपिका'[1] पालिशब्दकोष के षष्ठ सर्गकाण्ड में प्राप्त बुद्ध के निम्नलिखित ३२ नामों तथा शाक्यमुनि के सात नामों से पर्याप्त साम्य रखते हैं—

बुद्धो दसवलो सत्था सव्वञ्ञू दिपदुत्तमो ।
मुनिन्दो भगवा नाथो चक्खुमाङ्गीरसो मुनिः ॥ १ ॥
लोकनाथोऽनधिवरो महेसी (च) विनायको ।
समन्तचक्खु सुगतो भूरिपंञो (च) मारजि: ॥ २ ॥
नरसीहो नरवरो धम्मराज महामुनि ।
देवदेवो लोकगुरुधम्मसानि तथागतो ॥ ३ ॥
सयंभू सम्मासम्बुद्धो वरपंञो (च) नायको ।

1. मुनिजिन विजय द्वारा संपादित तथा गुजरात पुरातत्त्व मंदिर ग्रन्थावली अहमदाबाद से वि० संवत् १९८० में प्रकाशित ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

शाक्यमुनि ७—जिनो सक्को (तु) सिद्धत्थो सुद्धोदनि (च) गोतमो ॥ ४ ॥
सक्थसांहो (तथा) सक्थमुनि (चा) उदिच्चबन्धु (च) ॥ ५ ॥

अश्वघोष के ग्रन्थों से बुद्ध के नामों तथा अमरकोष में वर्णित नामों में साम्य स्पष्ट करना असंगत न होगा। अश्वघोष के ग्रन्थ 'सौन्दरनन्द'[1] में आए बुद्ध के नामों तथा अमरकोष के उल्लेख में पर्याप्त साम्य है। यहाँ कुल निम्नलिखित १३ नाम प्रतिपादित हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| मुनि | तथागत | ( ३–२०, ४-२४ ) |
| अर्हत् | ( बुद्ध ) | ( ४–२६, १८–६१ ) |
| उग्रतम | ( गौतम ) | ( ८–५ ) |
| गौतम | ( बुद्ध ) | ( ४–१६, १०–५८ ) |
| दशबल | | ( ४–४६ ) |
| बोधिसत्त्व | | ( २।४८ ) |
| भगवान् | ( बुद्ध ) | ( ४–३०, ५–८ ) |
| विनायक | ( बुद्ध ) | ( ३–२६ ५–५०, १३–३ तथा १७-७० ) |
| शास्ता | ( बुद्ध ) | ( ७–१ ) |
| श्रीघन | ( बुद्ध ) | ( १८–४९ ) |
| संबुद्ध | ( बुद्ध ) | ( १३–२ ) |
| सुगत | ( बुद्ध ) | ( ३–२१,४ ) |
| सर्वार्थसिद्ध | ( सिद्धार्थ ) | ( २–६३ ) |

इसी प्रकार बुद्धचरित[2] में भी द्वितीय भाग १५वें सर्ग के तीसरे श्लोक में मुनि, अर्हत् तथा बोधिसत्त्व तीन नाम परिगणित हैं। शाक्येश्वर, शाक्यराज भी बुद्ध के पर्यायों में यहाँ परिगणित हैं। अमरकोष में दोनों ही ग्रन्थों के सभी पर्याय नहीं ग्रहण किए गए हैं।

बुद्धचरित में ही पठित स्पर्द्धा ( १।५ ), बोधिसत्त्व ( १।१६ ), निर्वेदन ( १।२५ ), शाक्येश्वर ( १।५४ ), वाष्प ( १।६८ ), शाक्यराज ( १।६३ ), नरपति ( १।६४ ), पौत्र ( २।४७ ), गौरव ( ३।२४ ), निवर्तन ( ३।४६ ), प्रणेता ( रथ-

१. सूर्यनारायण चौधरी द्वारा संस्कृत भवन प्रकाशन, बिहार से सन् १९५९ में प्रकाशित।
२. अश्वघोष 'बुद्धचरित' किटेल द्वारा संपादित तथा ई० बी० कॉवेल द्वारा प्रकाशित, आक्सफोर्ड, १८९३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नियन्ता ३।५९ ) तथा संक्षोभ ( ३।५९ ) आदि प्रमुख शब्द अमरकोष में नहीं मिलते। सौन्दरनन्द के भी विनय ( १।५३ ) जैसे महत्त्वपूर्ण प्रचलित शब्दों का अमरकोष में न पाया जाना आश्चर्य का ही विषय है।

## निष्कर्ष

अमरकोष के शब्द-संग्रह में बड़ी विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं। उदाहरण के लिए मनुष्यवर्ग में हमें पुरुषों तथा स्त्रियों के पर्याय, विभिन्न चरित्र तथा स्वभाव की स्त्रियों, विवाह, पुत्र, जीवन की विधाएे, पवित्रता, संन्यास, विभिन्न प्रकार के कानूनी और गैरकानूनी पुत्र, खंजन, जीवन की दशाएँ, शैशव, युवावस्था, वृद्धावस्था इत्यादि, शारीरिक दोष, रोग, मनुष्य शरीर संरचना, केश, उन्हें रंगना, स्नानादि, सुगंधित लेपादि के प्रयोग, वस्त्राभूषण, बिस्तर का सामान इत्यादि के उल्लेख मिलते हैं। इनके संकलन में कोषकार ने किन प्राचीन कोषों का आश्रय लिया, कहा नहीं जा सकता, क्योंकि पूर्ववर्ती प्रायः सभी कोष अनुपलब्ध हैं। इस वर्ग में अमरसिंह ने प्रचलित सभी शब्दों का समावेश किया, इसमें कोई भी संशय नहीं कर सकता है। 'वैश्यवर्ग' में कृषि प्रभृति विभिन्न व्यवसायों के अनन्तर पाकशास्त्र तथा पाकशाला से सम्बन्धित विभिन्न शब्दों का संग्रह मिलता है। चुल्लिः ( चूल्हा ), अंगारशकटी ( अंगीठी ), अलिंजर ( कुंडा ), पिठरः ( पतीली ), पिष्टपचनम् ( तवा ), कुतूः ( कुप्पा ), कुतुपः ( कुप्पी ), दर्विः ( कलछुल ), दारुहस्तका, ( चमचा ) तथा कन्दुः ( मदिरा बनाने के बर्तन ) तक का उल्लेख हुआ है। परन्तु रसोईघर में सामान्य प्रयोग में आने वाले बरतनों—चकला-बेलन, कड़ाही, संडसी, चिमटा तथा चक्की, मार्जनी इत्यादि का उल्लेख नहीं हुआ है। मनुष्यों के लिए अनिवार्य खेल-कूद, व्यायामादि से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख भी यहाँ न होकर प्रारम्भ के पुरवर्ग में हुआ है। वैश्यवर्ग के अन्तर्गत कहीं भी 'दुकान' तथा 'तराजू' का उल्लेख नहीं मिलता है। 'ब्रह्मवर्ग' में यज्ञस्थली, यज्ञकर्ता तथा सम्बद्ध विषयों का विस्तृत उल्लेख हुआ है, परन्तु यज्ञ में प्रयुक्त विभिन्न उपकरणों का उल्लेख नहीं हुआ है।

अमरकोष जैसे एक समृद्ध कोष में 'प्रमाण', 'अनुमान', 'व्याप्ति', 'पक्ष', 'पक्षधर्म', 'द्व्यणुक', 'त्र्यणुक', 'आरण्यक' तथा 'ब्राह्मण' जैसे शब्दों के परिगणन की अपेक्षा की जाती है। परन्तु इनका सर्वथा अभाव है। क्या ये शब्द तथा आगे वर्णित कुछ अन्य शब्द अमरकोष के समय तक प्रचलन में नहीं थे ? ऐसे ही कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं— वडवा ( एक ब्राह्मणी स्त्री ), कौलटिनेय ( भिखारी स्त्री का पुत्र ), सौभागिनेय (सुभगा का पुत्र ), दद्रुण ( एक प्रकार के चर्मरोग से पीड़ित ), वातकी ( गठिया रोग से पीड़ित ), अतिसारकी ( अतिसार रोग का रोगी )। इन शब्दों के मूल व्युत्पत्ति-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मूलक शब्दों का उल्लेख नहीं है। यह सामान्य बीमारियाँ हैं जो कि अमरसिंह के समय में भी अवश्य रही होंगी। तब अमरसिंह ने इनका उल्लेख क्यों नहीं किया? क्या यह अमरसिंह की असावधानी थी या अमरकोष के संस्करणों के निर्माता की भूल थी, कहा नहीं जा सकता। वडवा, कुलटा तथा सुभगा शब्दों को तो सामान्य प्रयोग के बाहर कहा जा सकता है, परन्तु अन्य के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता है। 'परिवेत्ता' ( ज्येष्ठ भ्राता के अविवाहित रहते विवाहित अनुज ) व 'परिवित्ति' ( अमर० २।७।५६ ऐसे भ्राता का अनुज ) आदि प्रत्येक समय में पाये जाने वाले सम्बन्धों के लिए अमरकोष में प्राप्त शब्द आज क्यों लुप्त हो गए हैं? कहा नहीं जा सकता। इस सम्बन्ध में इसके पूर्व के अध्याय अमरकोष की शब्द-सामग्री तथा उसका विस्तार-क्षेत्र शीर्षक के अन्तर्गत भी यत्र-तत्र अमरकोष के शब्दों के हानि का निरूपण किया गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पञ्चम अध्याय

# अर्थद्योतन की विधाएँ

मोनियर विलियम्स महोदय ने अपने कोष[1] की भूमिका में लिखा है कि शब्दों के अर्थ बताने की पद्धति और उनके क्रमविन्यास और सजावट से कोषकार की वास्तविक मौलिकता का पता चल सकता है। शब्दों के क्रमविन्यास तथा कोष के कलेवर की सजावट का उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ पर अर्थ को स्पष्ट करने की पद्धतियों पर विचार किया जा सकता है।

## पर्याय-शैली

संस्कृत के कोष मुख्यरूपेण पर्यायवाची, नानार्थ तथा लिंगविधायक होते हैं।[2] अर्थद्योतन में अमरकोषकार ने इन तीनों पद्धतियों का आश्रय लिया है।

शब्द अर्थबोधन का माध्यम है।[3] प्रत्यक्ष, अनुमित, आप्तोपलब्ध तथा कल्पित प्रमुख चार अर्थों में से कोष में प्रत्यक्ष का वाचक अर्थ ही दिए जाते हैं। प्राचीन संस्कृत कोषों में शब्दों के साक्षात् संकेतित अर्थ[4] जिस सामान्य शैली में प्रस्तुत किए जाते थे, वह पर्यायशैली ही है। पतंजलि के अनुसार शब्दों के उच्चारणमात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाती है,[5] अतः दूसरे शब्दों के द्वारा इसका बोध कराने की आवश्यकता नहीं। परन्तु कोषों के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त लागू नहीं होता। कोषों में तो अर्थतत्त्व का स्पष्टीकरण दूसरे शब्दों में ही होता है। इसीलिए अर्थ उन शब्दों को भी माना गया है, जो मूल शब्द के साथ एक कोष में संलग्न रहते हैं।[6]

---

१. संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी—मोनियर विलियम्स, आक्सफोर्ड, १९५९।

२. महामहोपाध्याय एच० पी० शास्त्री डिस० कैट० ऑफ संस्कृत मैन्युस्क्रिप्ट वॉल्यूम ६, १९३१ में एशियाटिक सोसायटी बंगाल से प्रकाशित, अध्याय १९ 'लेक्सिकोग्राफी'।

३. 'लोके अर्थांशस्यैव प्राधान्यम्' वाक्यपदीय २।१३२ 'अर्थो हि प्रधानं तद्गुणभूतः शब्दः। —दुर्गाचार्य, निरुक्त २।१

४. 'साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स वाचकः'—काव्यप्रकाश।

५. 'शब्देनोच्चारितेनार्थो गम्यते'। उच्चार्यमाणः शब्दः सम्प्रत्यायको भवति, न सम्प्रतीयमानः। —महाभाष्य १।१।६८–६९

६. द्रष्टव्य—बॉडेन एंड मिर्जा—'दि ग्रोथ ऑफ मीनिंग', पृ० १८३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरकोष में प्रधानरूप से यही पर्यायशैली अपनायी गई है। तृतीय काण्ड के विशेष्यनिघ्न, संकीर्ण तथा लिंगादिसंग्रहवर्ग को छोड़कर पूर्ण कोष इसी शैली पर आधृत है। नानार्थवर्ग की अनेकार्थ शैली का तो पृथक्तः उल्लेख किया ही जायेगा। यहाँ के पर्याय दो, चार, दस से लेकर २७ तथा ३९ तक की संख्या में पहुँचते हैं। अमरपूर्व तथा बाद के प्राचीन अनेक कोषों में हमें पर्यायों को छन्दगत विभाजन के आधार पर रखने की प्रवृत्ति दीख पड़ती है। सर्वानन्द ने अपनी अमरकोष की टीका[1] में एक स्थल पर प्राचीन कोष नाममाला का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

'इति पादेन नामकथनेन नाममालायाम्'

अनुमान किया जा सकता है कि इस प्राचीन लुप्तकोष में पर्यायविभाजन पादगत रहा होगा। इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर[2] किसी प्राचीन कोषकार महेन्द्र का उल्लेख सर्वानन्द ने इस प्रकार किया है :—

'इति द्विपर्यायवर्गे महेन्द्रः पठति।'

इससे स्पष्ट होता है कि एक, द्वि, त्रि, चतुः इत्यादि वर्गों में पर्यायों को प्रस्तुत करने की प्राचीन परिपाटी रही होगी। पुरुषोत्तमदेव की हारावली तथा अनेकार्थसंग्रह में पूर्ण श्लोक, श्लोकार्ध तथा श्लोक के एक चरण में पर्यायसंकलन का विभाजन हुआ है। ऐसा ही विभाजन शाश्वतकृत 'अनेकार्थसमुच्चय' में भी हुआ है, परंतु अमरकोष के पर्याय तथा नानार्थों के विभाजन में ऐसा कोई आधार नहीं मिलता। हो सकता है, इसका कारण अमरकोष की इन कोषों से अपेक्षाकृत अधिक विशालता ही हो। स्वर्गवर्ग के प्रारम्भ में ही स्वर्ग के पर्याय :—

स्वरव्ययं स्वर्गनाकत्रिदिवत्रिदशालयाः।
सुरलोको द्योदिवौ द्वे स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम्॥ (१।१।१)

परिगणित हैं। परन्तु स्वर्ग, नाक तथा द्युलोक की स्थितिभेद का कोई उल्लेख नहीं है। स्वर्ग को 'सुरलोक' कहा गया है और साथ ही व्योमवर्ग में—

नभोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम्।
वियद्विष्णुपदं वा तु पुंस्याकाशविहायसी॥ (१।२।१-२)

आकाश को 'सुरवर्त्म' तथा 'विष्णुपद' भी कहा है। स्वर्ग और आकाश का भेद कुछ अस्पष्ट-सा है। किस शब्द को कहाँ प्रयुक्त किया जाय, यह कोषकार ने अध्येता पर छोड़ दिया गया है।[3]

---

१. अमरकोष पर सर्वानन्द की टीका, पृ० २२।

२. अमरकोष पर सर्वानन्द की टीका, पृ० ८४।

३. "कोष स्थानापन्न संकेतों की एक सूची होता है। यह बताता है 'इन-इन परिस्थितियों में एक शब्द दूसरे का स्थानापन्न हो सकता है।'.........................

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## पर्याय तथा व्याख्या-शैली

यह तो सर्वमान्य ही है कि शब्दों के अर्थ का पूर्वसंस्कार अध्येता के मस्तिष्क में रहता ही है। कोष उनको एक स्थल पर एकत्र करके अध्येता को स्थल के प्रयोग के अनुसार चयन का अवसर देते हैं। पर्यायों से अर्थद्योतन की अनेक कठिनाइयों[1] के होते हुए भी व्याख्या-शैली से पर्यायशैली को ही प्राथमिकता विद्वानों ने दी है।[2]

अमरकोष में विशेष वाक्यों से यत्र-तत्र ऐसी कठिनाइयों को दूर भी किया गया है। उदाहरणार्थ, कालवर्ग के अन्तर्गत रात्रि के पर्याय परिगणित करके फिर व्याख्या-शैली में शब्द-भेद स्पष्ट किया गया है—

तमिस्रा तामसी रात्रिर्ज्योत्स्नी चन्द्रिकयान्विता। (अमर० १।४।५)
सा दृष्टेन्दुः सिनीवाली सा नष्टेन्दुकला कुहूः॥ (अमर० १।४।९)

धीवर्ग में बुद्धि के पर्याय परिगणित करके विशेष व्याख्या शब्दों से उनको स्पष्ट किया गया है :—

धीर्धारणवती मेधा संकल्पः कर्ममानसम्। (अमर० १।५।२)
मोक्षे धीर्ज्ञानमन्यत्र विज्ञानं शिल्पशास्त्रयोः। (अमर० १।५।६)

इसी प्रकार शब्दादिवर्ग में हूति तथा संहूति में भेद स्थापित किया गया है :—

हूतिराकारणाह्वानं संहूतिर्बहुभिः कृता। (अमर० १।६।८)

वारिवर्ग में गाढ़, क्षीण तथा सर्वप्रसरणशील अन्धकार में शब्द-भेद स्पष्ट हो जाता है :-

ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसं क्षीणेऽवतमसं तमः, विष्वक् संतमसं
(अमर० १।८।३-४)

अमरकोष में सर्वत्र पर्याय शब्द प्रथमा विभक्ति में तथा अर्थ स्पष्टीकरण के लिए शब्द प्रायः सप्तमी में प्रयुक्त हुए हैं। मनुष्यवर्ग में उदाहरणार्थ धवः आदि पति के पर्याय देकर—

अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलकः। (२।६।३६)

जार आदि पुत्रों का परिगणन है। ये शब्द प्रथमा विभक्ति में हैं। यही नहीं, व्याख्या-शैली में जहाँ एक शब्द भी समझाया गया है, यही पद्धति अपनायी गई है, यथा :—

उर्वरा सर्वसस्याढ्या स्यादूषः क्षारमृत्तिका। (अमर० २।१।४)
दरी तु कंदरो वा स्त्री देवखातबिले गुहा॥

---

इस प्रकार कोष संकेतों के संदर्भों में होने वाले अतिक्रमण को सूचित करता है।"
दि मीनिंग ऑफ मीनिंग—ऑग्डेन एंड रिचर्ड्स, पृ० २०७।

१. (अ) द्रष्टव्य—'वर्ड्स एंड देयर यूज'—स्टीफेन उल्मा : अध्याय २, पृ० ४६।
(ब) वेब्स्टर्स डिक्शनरी ऑफ सिनॉनिम्स—भूमिका पृ० १०।

२. (स) लैंग्वेज—एल—ब्लूमफ़ील्ड, अध्याय ९, पृ० १४५।
द्रष्टव्य—वेब्स्टर्स डिक्शनरी ऑफ सिनॉनिम्स, भूमिका पृ० १०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गह्वरम् ............... (अमर० २।३।६)

अमरकोष में शब्दों की व्युत्पत्ति का उल्लेख नहीं है। ध्वनि के स्वल्प-भेद से भी अर्थ-भेद स्पष्ट किया गया है। उदाहरणार्थ :—

सुराज्ञि देशे राजन्वान् स्यात्ततोऽन्यत्र राजवान्। (अमर० २।१।१३)
गोष्ठं गोस्थानकं तत्तु गौष्ठीनं भूतपूर्वकम्। (अमर० २।१।१३)

में क्रमशः राजन्वान् तथा गोष्ठ, गौष्ठीन में अर्थभेद स्पष्ट किया गया है। कहीं-कहीं पारिभाषिक शब्दों को व्यक्त करने के लिए पहले उनकी व्याख्या देकर शब्द साथ-साथ प्रस्तुत किए जाते हैं। यथा—

देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः।
स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम्॥ (अमर० २।१।१२)

कभी-कभी ये पृथक्तः भी रखे गये हैं, यथा—

स्थानीयं निगमोऽन्यत्तु यन्मूलनगरात्पुरम्।
तच्छाखानगरं............. ............... ॥ (अमर० २।२।२)

एक-एक शब्द को पृथक्-पृथक् स्पष्ट करने की शैली भी अमरकोष में अधिक मिलती है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

हर्म्यादि धनिनां वासः प्रासादो देवभूभुजाम्। (अमर० २।२।९)

शब्दादि वर्ग में पशु-पक्षि आदि जन्य विभिन्न स्वरों का उल्लेख हुआ है :—

अथ मर्मरः स्वनिते वस्त्रपर्णानां, भूषणानां तु शिञ्जितम्
..........................................
कोलाहल : कलकलस्तिरश्चां वाशितं रुतम्॥ (अमर० १।६।२५)

इसी प्रकार—

वृन्दभेदाः, समैर्वर्गः, संघसार्थौ तु जन्तुभिः।
सजातीयैः कुलं, यूथं तिरश्चां पुन्नपुंसकम्॥
पशूनां समजोऽन्येषां समाजोऽथ सधर्मिणाम्।
स्यान्निकायः, पुंजराशी तूत्करः कूटमस्त्रियाम्॥
कापोतशौकमायूरतैत्तिरादीनि तद्गणे। ( अमर० २।५।४२–४३ )
आरामः स्यादुपवनं कृत्रिमं वनमेव यत्।
अमात्यगणिकागेहोपवने वृक्षवाटिका॥
पुमानाक्रीड उद्यानं राज्ञः साधारणं वनम्।
स्यादेतदेव प्रमदवनमन्तःपुरोचितम्। ( अमर० २।४।३ )

केश के छह पर्याय परिगणित करके निम्न भेद प्रदर्शित किए गए हैं :—

तद्वृन्दे कैशिकं कैश्यमलकाश्चूर्णकुन्तलाः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ते ललाटे भ्रमरकाः, काकपक्षः शिखण्डकः ॥
कवरी केशवेशोऽथ धम्मिल्लः संयताः कचाः ।
शिखा चूडा केशपाशी, व्रतिनस्तु सटा जटा ॥
वेणि-प्रवेणी, शीर्षण्यशिरस्यौ विशदे कचे ।
पाशः पक्षश्च हस्तश्च कलापार्थाः कचात्परे ॥ (अमर० २।६।९८)

अन्तिम पंक्ति में पाश आदि शब्दों को किसी स्थितिविशेष में विशिष्ट अर्थ में प्रयोग बताया गया है। किन्हीं स्थलों में ऐसा भी दिखायी देता है कि जिस शब्द के द्वारा किसी अन्य शब्द को स्पष्ट किया गया है, स्वयं वह शब्द व्याख्या-सापेक्ष्य है और कोषकार ने उसकी व्याख्या नहीं दी है, जैसे—

चर्या त्वीर्यापथस्थितिः । (अमर० २।७।३५)

परन्तु मूल ईर्या (योगमार्ग) का अमरकोष में कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता। मनुष्यवर्ग के प्रारम्भ में जो ११ पर्याय मनुष्य के परिगणित हैं, वे मानवमात्र के हैं या पुरुष के, यह स्पष्ट नहीं होता। टीकाकारों ने इसे विभिन्न प्रकार से प्रस्तुत किया है। कुछ ने इन ११ में से दोनों के पर्याय पृथक् विभाजित कर दिए हैं तो कुछ टीकाकार इन सबको केवल मनुष्य का पर्याय मानते हैं।

रूप-भेद के कारण शब्दों में जो अर्थ-भेद होता है, उसको भी अमरकोषकार ने अनेक स्थलों पर स्पष्ट किया है—

वनौषधिवर्ग में आया है—

'ओषध्यो जातिमात्रे स्युः अजातौ सर्वमौषधम् (अमर० २।४।१३५)

महेश्वर अपनी टीका में लिखते हैं—

फलपाकान्तानां व्रीह्यादीनां जातावेव ओषध्यः स्युः। यदा तु ओषधेः रोगहारित्वमात्रं प्रतीयते न त्वन्यत् तदा औषधशब्दप्रयोगः। पृ० ८२।

इसी प्रकार 'ऐणेय' तथा 'ऐण' का भेद भी स्पष्ट किया गया है—

ऐणेयमेण्याश्चर्माद्यमेणस्यैणमुभे त्रिषु । (अमर० २।५।८)

महेश्वर ने इसको इस प्रकार और भी स्पष्ट किया है—

"एण्या हरिण्याश्चर्माद्य मुऐणेयमित्युच्यते। एणस्य तु चर्माद्यम् ऐणमित्युच्यते। उभे ऐणेयम् ऐणं च त्रिषु स्पष्टम्।"

वनौषधिवर्ग में यथावसर फलधर ऋतु में भी फलरहित तथा सफल वृक्षों के लिए सभेद शब्द परिगणित हैं—

...... स्यादबन्ध्यः फलेग्रहिः ।
बन्ध्यो फलोऽवकेशी च फलवान् फलिनः फली । (अमर० २।४।६-७)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सिंहादिवर्ग में राजहंस, मल्लिकाक्ष तथा धार्तराष्ट्रादि हंसों का भेद-कथन उनके लक्षण बताते हुए किया गया है :—

हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्रांगा मानसौकसः।
राजहंसास्तु ते चञ्चु चरणैर्लोहितैः सिताः॥
मलिनैर्मल्लिकाक्षास्ते धार्तराष्ट्राः सितेतरैः। (अमर० २।५।२४)

मनुष्यवर्ग में स्त्री सामान्य के ११ पर्याय परिगणित करके १२ विशेष स्त्रीभेद कहे गए हैं। अनन्तर विभिन्न स्वभाव वाली स्त्रियों का उल्लेख स्पष्ट किया गया है :-

| | |
|---|---|
| कोपनशीला | — कोपना सैव भामिनी |
| गुणैरुत्कृष्टा | — वरारोहा मत्तकाशिन्युत्तमा वरवर्णिनी |
| महिषी (पटरानी) | कृताभिषेका महिषी योगिन्योऽन्या नृपस्त्रियः |
| भोगिनी (अन्य रानियाँ) | |
| परिणीता, कुटुम्बिनी | — पत्नी पाणिगृहीती च द्वितीया सहधर्मिणी भार्या जायाऽथ पुंभूम्नि दाराः स्यात्तु कुटुम्बिनी |
| पतिपुत्रादिमती, पतिव्रता | — पुरन्ध्री सुचरित्रा तु सती साध्वी पतिव्रता |
| दिधिषूः (द्विरूढा) | — पुनर्भूर्दिधिषूरूढा द्विस्तस्या दिधिषुः पतिः |
| दिधिषुः (उसका पति) | -- स तु द्विजोऽग्रेदिधिषुः सैव यस्य कुटुम्बिनी |
| अग्रेदिधिषूः (उसका ब्राह्मण पति) | (अमर०२।६।५-१८) |

इसी क्रम में आगे विभिन्न प्रकार की स्त्रियों से उत्पन्न अम्बष्ठ, कानीन इत्यादि पुत्रों तथा विभिन्न सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख हुआ है।

'वेदिः परिष्कृता भूमिः' (अमर० २।७।१८)

ब्रह्मवर्ग के इस उद्धरण में किसी भी परिष्कृत भूमि को 'वेदी' कहकर अपूर्ण परिभाषा का दोष दिया जा सकता है, परन्तु यदि उचित परिप्रेक्ष्य का ध्यान रक्खा जाय तो ब्रह्मवर्ग में होने तथा यागादि से सम्बद्ध होने से यह व्याख्या पूर्ण ही प्रतीत होगी। क्षत्रियवर्ग० में (अमर० २।८।८२) शस्त्र तथा अस्त्र को एक ही कोटि में रक्खा गया है, कोई भेद न होना त्रुटिपूर्ण है। इसी प्रकार कुछ अन्य उल्लेखनीय उदाहरण ये हैं :—

छात्रान्तेवासिनौ शिष्ये······ सतीर्थ्यास्त्वेकगुरवः (अमर० २।७।११)
हव्यकव्ये दैवपित्र्ये अन्ने (अमर० २।७।२४)
अमृतं विघसो यज्ञशेषभोजनशेषयोः ······ (अमर० २।७।२८)
पितृदाने निवापः स्याच्छ्राद्धं तत्कर्म शास्त्रतः (अमर० २।७।३१)
शरीरसाधनापेक्षं नित्यं यत्कर्म तद्यमः
नियमस्तु स यत्कर्माऽनित्यमागन्तुसाधनम् (अमर० २।७।४९)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

माषादयः शमीधान्ये शूकधान्ये यवादयः। ( अमर० २।९।१५ )

अर्थात् माष इत्यादि शमी ( फली ) वाले तथा यव इत्यादि शूक ( ठूंठ वाले ) धान्य कहलाते हैं।

क्षत्रियवर्ग में 'यात्रा' सामान्य के छह पर्याय परिगणित करके—'यत्सेनयाभिगमनमरौ तदभिषेणनम्'––( अमर० २।८।९५ ) आक्रमण शब्द का बोध किया गया है। क्षत्रियवर्ग के ही प्रारम्भ में राजा के ७ पर्याय परिगणित करके—राजातुप्रणता""""राज्ञः स सम्राड्""""( अमर० २।८।३ ) में राजा के ७० पर्याय परिगणित करके अधीश्वर, चक्रवर्ती, मण्डलेश्वर तथा सम्राट् का भेद-कथन हुआ है। अनन्तर—

"""" अथ राजकम्

राजन्यकं च नृपतिक्षत्रियाणां गणे क्रमात्। ( अमर० २।८।४ )

में क्रमशः राजकम् ( नृपसमूह ) तथा राजन्यकम् ( क्षत्रियसमूह ) का भेद स्पष्ट किया गया है।

इसी प्रकार वैश्यवर्ग ( अमर० २।९–५९–६२ ) में वैल तथा सांड़ में भी भेद प्रदर्शित किया गया है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि अमरकोषकार को जहाँ शब्द स्पष्ट द्योतन करने की आवश्यकता हुई या शब्दों के सूक्ष्म भेद स्पष्ट करने की आवश्यकता प्रतीत हुई अथवा शब्दों का अर्थ व्याख्या-सापेक्ष जान पड़ा, वहाँ उसने पर्याप्त स्पष्ट व्याख्याएँ दे दी हैं। इन व्याख्यात स्थलों से हम यह भी जान पाते हैं कि किन शब्दों के अर्थ के विषय में अस्पष्टता आ गई थी। कहीं-कहीं तो ये व्याख्याएँ अति विस्तृत भी हो जाती हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

एकेभैकरथा त्र्यश्वा पत्तिः पंचपदातिका।
पत्त्यङ्गैस्त्रिगुणैः सर्वैः क्रमादाख्या यथोत्तरम्॥
सेनामुखं गुल्मगणौ वाहिनी पूतना चमूः।
अनीकिनी दशानीकिन्योऽक्षौहिणी"""" ॥ ( अमर० २।८।८०-८१ )

उपाध्यायोऽध्यापकोऽथ स्यान्निषेकादिकृद्गुरुः।
मन्त्रव्याख्याकृदाचार्य आदेष्टा त्वध्वरे व्रती॥
यष्टा च यजमानश्च स सोमवति दीक्षितः।
इज्याशीलो यायजूको यज्वा तु विधिनेष्टवान्॥
स गीर्पतीष्ट्या स्थपतिः सोमपीती तु सोमपाः।
सर्ववेदाः स येनेष्टो यागः सर्वस्वदक्षिणः॥

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनूचानः प्रवचने सांगेऽधीती गुरोस्तु यः ।
लब्धानुज्ञः समावृत्तः····· · ··········· ॥ (अमर० २।७।७-१०)
यो गार्हपत्यादानीय दक्षिणाग्निः प्रणीयते ।
तस्मिन्नानाय्यः························· ॥ (अमर० २।७।२१)
षट् तु त्रिष्वर्घ्यमर्घार्थे पाद्यं पादाय वारिणि ।
क्रमादातिथ्यातिथेये अतिथ्यर्थेऽत्र साधुनि ॥
(अमर० २।७।३३)

## अनेकार्थ शैली

सर्वत्र अर्थ स्पष्ट द्योतित होता है। अमरकोष का संकीर्णवर्ग तथा अव्ययवर्ग भी पर्यायशैली पर आधृत है। कोषों में अर्थद्योतन का दूसरा प्रमुख प्रकार 'अनेकार्थ' प्रस्तुत करना है। डा० बाबूराम सक्सेना ने एकार्थता तथा अनेकार्थता का विश्लेषण करते हुए एक स्थल[1] पर कहा है :—

"नए भाव या विचार या तो अन्य जनों के सम्पर्क से किसी व्यक्ति के मन में आते हैं या परिस्थिति में नवीनता के कारण स्वयं उपस्थित हो जाते हैं। परिस्थिति की नवीनता में पूर्व संचित सामग्री के आधार पर या तो नए शब्द की सृष्टि हो जाती है या पुराने शब्दों में का ही कोई शब्द नए भाव को बतलाने के लिए काम में ले लिया जाता है।"

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि शब्द अपने नवीन अर्थ को धारण करने पर पुराने अर्थ को नहीं छोड़ता और ऐसी दशा में कभी-कभी तीन-चार अर्थ एक ही समय में चलते रहते हैं। स्थल के अनुसार कभी यह शब्द एक सीमित अर्थ में प्रयुक्त होता है तो कभी विस्तृत अर्थ में, कभी कलात्मक रूप में तो कभी वाचक रूप में। संस्कृत में कुछ अनेकार्थी शब्द तो ऐसे हैं कि इस बात का विश्लेषण अब असंभव-सा ही है कि इनके इतने अधिक अर्थों में प्रयोग का प्रचलन कैसे हुआ।

वाक्यपदीय के उल्लेखानुसार अनेकार्थ शब्दों के अर्थों का निर्णय इन साधनों से होता है—

संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, प्रयोजन, कारण, चिह्नविशेष, अन्य शब्दों का सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देश, काल, लिंगविशेष, स्वर आदि।

अमरकोष के तृतीय काण्ड के तृतीय वर्ग में अनेकार्थ संगृहीत हैं। इनका विभाजन पदान्त-व्यंजन के अनुसार वर्गों में किया गया है। इनमें से अनेक शब्द पूर्वकाण्डों में

१. अर्थविज्ञान, अध्याय ७, पृ० १३१–१३१।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

भी गए हैं। इनके प्रयोग पूर्व पर्यायों में भी मिल जाते हैं, परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जो केवल यहीं परिगणित हैं। मूल शब्द प्रथमा विभक्ति में है तथा उसके अर्थ सप्तमी में दिए गए हैं, यथा—

'आकाशे त्रिदिवे नाको लोकस्तु भुवने जने । (अमर० ३।३।२)

अर्थात् 'नाक' शब्द आकाश और त्रिदेव अर्थ में तथा लोक शब्द विश्व तथा जन अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी वर्ग के अन्त में अनेकार्थ अव्ययों का भी संग्रह मिलता है।

अमरकोष की यह अनेकार्थ से अर्थद्योतन की शैली प्राचीन संस्कृत कोषों में भी पायी जाती है। भानुजिदीक्षित ने अमरकोष की अपनी सुधाख्य व्याख्या टीका में 'उत्पलिनी' कोष का एक उद्धरण प्रस्तुत किया है—

'पुष्पे वंशे गुणं चैव रजोऽयं रजसा सह ।'

उत्पलिनी का यह उद्धरण एक शब्द के विभिन्न अर्थों का बोध उस शब्द के वैकल्पिक रूप ( रजः, रजस् ) के साथ कराता है।

## लिंग के अनुसार अर्थद्योतन की शैली

संस्कृत भाषा में लिंगभेद से भी अर्थ-भेद होता है। संस्कृत के प्राचीन कोषों के यत्र-तत्र उद्धरणों से विदित होता है कि प्राचीन कोषकारों ने इस प्रकार के अर्थभेद पर ध्यान दिया था। उदाहरण के लिए व्याडिकोष का एक उद्धरण मिलता है—

कुशा वल्गा कुशी माला कुशो दर्भः कुशं जलम् ।

इसमें स्पष्टतः लिंगभेद से अर्थभेद बताया गया है। अमरकोष में यद्यपि इस प्रकार लिंगभेद से अर्थभेद प्रस्तुत करने वाले शब्दों का एक स्थल पर संग्रह नहीं है, तथापि अनेक स्थलों पर किसी पशु आदि के पुरुषवाचक रूप के साथ-साथ उसके स्त्रीवाचक रूप की गणना भी अमरकोषकार ने कर दी है। जैसे—

भेकः भेकी (अमर० १।१०।२४) कमठः कमठी इत्यादि ।

( अमर० १।१०।२१ )

अमरकोष का तृतीय काण्ड का अन्तिम वर्ग लिंगादिसंग्रहवर्ग ही एकमात्र ऐसा वर्ग है जो अर्थद्योतन की दृष्टि से संकलित नहीं है। इस वर्ग में केवल एक लिंग के अन्तर्गत आने वाले शब्दों की गणनामात्र है। इस वर्ग के संग्रह का उद्देश्य तो स्पष्ट ही लिंगानुशासन है जो कि अमरकोष का एक प्रमुख उद्देश्य है। परन्तु इसमें परिगणित यदि सभी शब्द अमरकोष में अन्यत्र पर्यायवाचियों के क्रम में आकर अर्थ को स्पष्ट करते दिखाई देते तो कोषकार के लिए यहाँ भिन्न लिंगों के प्रसंग में उनका परिगणन-मात्र किसी हद तक उचित कहा जा सकता था, परन्तु इस लिंगादिसंग्रहवर्ग में अनेक

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ऐसे शब्द हैं जो इस कोष में अन्यत्र पर्यायवाचियों में नहीं आए हैं। अमरकोष के द्वारा इन शब्दों के अर्थ पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता। ऐसे शब्द निम्नलिखित हैं—

दाण्डपाता ( स्त्री० अमर० ३।५।६ ), श्यैनंपाता तैलंपाता ( स्त्री० अमर० ३।५।६)

मृणाली ( स्त्री० अमर० ३।५।७ )

लंका, टीका, पंजिका ( अमर० ३।५।७ )

( स्त्री लिंग ) सिध्रका सारिका हिक्का प्राचिका उल्का पिपीलिका ( अमर० ३।५।८ )

तिन्दुकी भंगि सुरंगा सूचि वितण्डा काकिणी चूर्णि शाणी द्रुणी ( अमर० ३।५।९ )

दरत्

कन्था आसन्दी राजसभा झल्लरी चर्चरी पारी होरा लट्वा, सिध्मला ( अमर० ३।५।१० )

लिक्षा गण्डूषा गृध्रसी चमसी मसी ( अमर० ३।५।१० )

वटकः अनुवाकः कुडंगकः ( अमर० ३।५।१७ )

न्युंखः समुद्गः विटः पट्टः धटः खटः ( अमर० ३।५।१७ )

कोट्टः अरघट्टः इट्टः गोण्डः ( अमर० ३।५।१८ )

( पुंल्लिग ) गडुः करण्डः लगुडः वरण्डः किणः घुणः ( अमर० ३।५।१८ )

दृतिः सीमन्तः रोमन्थः उद्गीथः बुद्बुदः ( अमर० ३।५।१६ )

कासमर्दः अर्बुदः स्तूपः केदरः ( अमर० ३।५।१९-२० )

पूरः क्षुरप्रः गोलः हिंगुलः पुद्गलः ( अमर० ३।५।२० )

वेतालः मल्लः पुरोडाशः पट्टिशः ( अमर० ३।५।२१ )

रभसः कटाहः ( अमर० ३।५।२१ )

( नपुंसकलिंग )

अम्बु, लेपनम्, उक्थम्, तोटकम्, गृहस्थूणम्, मर्मन्, योजनम्, राजसूयम्, वाजपेयम्, गद्यम्, पद्यम्, माणिक्यम्, भाष्यम्, चीरम्, चीवरम्, लोकायतन्, विदलम्, स्थालम्।

( पुन्नपुंसर्कालग )

अर्धर्चः, कण्टकम्, मोदकम्, तण्डकः, शाटकः, पातकम्, उद्योगः, चरकम्, शीधु, कुट्टिम, शतमानम्, अर्मम्, शम्बलम्, कवियम्, प्रग्रीवम्, पात्रीवम्, यूषम्, चमसः, चिक्कसः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( स्त्रीपुंल्लिग )

स्वातिः, झाटलिः, मनुः, सृपाटी, यष्टिः, शाटी, कटी ।

( स्त्रीनपुंसक लिंग )

मैत्र्यम् मैत्री । मैथुनिका, मैथुनिकम् । त्रिखट्वम्, त्रिखट्वी । त्रितक्षम्, त्रितक्षी ।

( स्त्रीलिंग ) पात्री, पुटी, पाटी, पेटी ।

इन शब्दों के सम्बन्ध में यह शंका उठ सकती है कि ऐसे शब्द सम्भवतः अमरकोषकार ने अपने कोष में नहीं दिए थे, और यह वर्ग अमरकोष में कालान्तर में जुड़ गया । इस बात की पुष्टि इससे भी हो जाती है कि इसी लिंगादिसंग्रहवर्ग में ऐसे शब्द भी परिगणित हैं, जो कि पूर्व के पर्यायों में भी गिनाये जा चुके हैं । अतः एक ही वर्ग के अन्तर्गत इन दो प्रकार के शब्दों की स्थिति संगत नहीं प्रतीत होती और उपर्युक्त शंका का समाधान केवल अमरकोष के पाठालोचन से ही सम्भव है ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

षष्ठ अध्याय

# विभिन्न भाषाओं से गृहीत शब्द

किसी भी भाषा को उसकी शब्दावली तथा व्याकरणिक संरचना के आधार पर मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया जा सकता है --(१) भाषा के अन्तर्भूत तत्त्व; (२) गृहीत तत्त्व[१]। पहले प्रकार में वे तत्त्व हैं, जो उस भाषा की ज्ञात प्रारम्भिक स्थिति में विद्यमान थे तथा दूसरे प्रकार में वे तत्त्व आते हैं, जिन्हें कालान्तर में किसी अन्य भाषा से लेकर उस भाषा में सम्मिलित कर लिया जाता है। गृहीत तत्त्वों को भी ध्वनि-तत्त्व तथा शब्द-तत्त्व, इन दो विभागों में विभाजित किया जा सकता है। पहले प्रकार में गृहीत तत्त्व दो प्रकार से प्रभावशाली सिद्ध हो सकते हैं—

१. वे मूलभाषा की ध्वनि-संरचना को प्रभावित कर सकते हैं। ग्रीक भाषा से अंग्रेजी में गृहीत आक्सीजन, हाइड्रोजन तथा टेलीफोन जैसे शब्द इसी वर्ग के अन्तर्गत आते हैं।
२. वे मूलभाषा के अन्तर्गत नये ध्वनि-तत्त्वों को निवेशित करने में सहायक हो सकते हैं।

'गृहीत' शब्द-तत्त्वों को मूल भाषा में अनूदित[२] करके पुनः प्रस्तुत किया जा सकता है। उदाहरणार्थ, उपर्युक्त ग्रीक शब्दों को जर्मन भाषा में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया—आक्सीजन (सानेरस्टॉफ), हाइड्रोजन (वासरस्टॉफ) तथा टेलीफोन (फर्नेस्प्रेचर)। प्रस्तुत प्रसंग में गृहीत ध्वनि-तत्त्व के द्वितीय प्रकार का ही केवल अध्ययन करना है।

आर्यों के भारत में रहने पर उन्होंने आरम्भ में अल्पसंख्यक होने पर भी यहाँ की द्रविड़ आदि दक्षिण भारतीय बहुसंख्यक जातियों को प्रभावित किया। विजेता की भाषा आरोपण विजित पर होना स्वाभाविक ही है और हुआ भी यही। परन्तु आर्यों ने भी अपनी भाषा को अधिक समृद्ध करने के लिए आर्येतर भाषा से कुछ तत्त्व लिए होंगे और उन्हें अपनी भाषा में इस प्रकार मिश्रित किया कि उनके अनार्य-मूल होने को भी

१. 'हिस्टॉरिकल लिंग्विस्टिक्स', एन इंट्रोडक्शन—विन्फ्रेड पी० लेहमान, प्रकाशित १९६८, पृ० २१२।
२. वही, पृ० २१३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कालान्तर में विवाद का विषय बना दिया गया।[१] प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के संस्कृत रूप में आज भी उन लिए गए आर्येतर भाषाओं के शब्दों के उदाहरण देखे जा सकते हैं।

## द्रविड़ भाषाओं से गृहीत शब्द

इन आर्येतर भाषाओं में प्रमुख है—द्रविड़ भाषा-परिवार। इसमें तमिल, तेलुगु, मलयालम तथा कन्नड़ ने साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त किया है। इन प्रमुख द्रविड़ भाषाओं के अतिरिक्त भी भारत के विभिन्न भागों में कुछ असाहित्यिक भाषाएँ बोली जाती थीं।[२] आर्यों के भारत में प्रसार के साथ ही उनमें से कई लुप्त हो गईं और जो अपने अस्तित्व की रक्षा कर सकीं, वे ही संस्कृत में प्राप्त बाहरी तत्त्वों को प्रकाश में लाने में समर्थ हो सकी हैं।

संस्कृत में द्रविड़ शब्दों का एक बड़ा भाग सुरक्षित है, जैसे अंग्रेजी में ब्रिटिश शब्दों का। परन्तु द्रविड़ तथा संस्कृत में कोई भी समानता प्राप्त होने पर संस्कृत को ही मूल मान लिया जाता है। इसलिए कुछ शुद्ध प्रान्तोय शब्द भी द्रविड़ लेखकों के द्वारा संस्कृत में प्रयुक्त होने के कारण संस्कृत में ही समाविष्ट मान लिए गए। राबर्ट काल्डवेल[३] ने निम्नलिखित छह दशाएँ निर्धारित की हैं, जिनमें किसी शब्द को द्रविड़-मूलक कहा जा सकता है—

(१) जब कोई शब्द संस्कृत में मूल व्युत्पत्ति के बिना अकेला हो और द्रविड़ भाषाओं में उसके सम्बद्ध रूप प्राप्त हों।

(२) जब संस्कृत में उस शब्द के अन्य पर्याय भी हों और द्रविड़ भाषाओं में केवल एक वही रूप सुरक्षित हो।

(३) जब संस्कृत से मिलती-जुलती किसी भी भारोपीय भाषाओं में वह शब्द न पाया जाय और द्रविड़ बोलियों में सुरक्षित हो।

(४) जब संस्कृत कोषकार द्वारा उस शब्द की दी गई व्युत्पत्ति कल्पनापूर्ण हो और द्रविड़ कोषकार उसकी व्युत्पत्ति प्रान्तीय द्रविड़ क्रियारूप पर आधृत सिद्ध करे।

(५) जब संस्कृत में उस शब्द का रूप फलात्मक हो और द्रविड़ भाषाओं में भौतिक। तथा—

(६) जब तमिल या तेलुगु कोषकार संस्कृत को सभी भाषाओं की जननी तथा देवभाषा

---

१. लैंग्वेज—एल-ब्लूमफील्ड, पृ० ४६८।

२. दि संस्कृत लैंग्वेज—टी-बरो, अध्याय ८, पृ० ३७५।

३. द्रष्टव्य—ए कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ दि द्रविडियन लैंग्वेज—ट्रुबनर एण्ड कं० लंदन से १८७५ में प्रकाशित—भूमिका।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का अत्यधिक ऊँचा स्थान न देकर द्रविड़ शब्द को शुद्ध द्रविड़ · मूल वाला ही प्रमाणित करे।

इनमें से एक, कई या सब नियम शब्दों की मौलिकता को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होंगे।

यह अब स्वीकार किया गया है कि कुछ विषयों में संस्कृत द्रविड़ भाषाओं की ऋणी है। प्रो० वेनफे ने कहा है[1]:—

''संस्कृत बहुत प्राचीन और अत्यन्त व्यापक भाषा है। बहुत काल बाद तक यह जनसाधारण की भाषा के रूप में प्रयुक्त होती रही है। इसका सभ्यता और धर्म के माध्यम के रूप में प्रयोग होता रहा है और इस रूप में इसका फैलाव दूर-दूर के क्षेत्रों तक रहा है—ऐसे क्षेत्रों में जहाँ न केवल बहुत-सी बोलियाँ जो संस्कृत से ही विकसित हुई हैं, प्रयुक्त रही हैं, वरन् जहाँ अन्य बहुत सी जनप्रचलित बोलियाँ जो संस्कृत से मूलतः भिन्न हैं, भी प्रयोग में आती रही हैं। इन परिस्थितियों का परिणाम यह हुआ है कि न केवल वे रूप जो कि प्राकृत और उससे सम्बन्धित बोलियों में प्रविष्ट हो चुके हैं, संस्कृत द्वारा कालान्तर में गृहीत कर लिए गए, वरन् वे शब्द भी जो मूलतः संस्कृत से भिन्न हैं, उसके शब्द-भण्डार में सम्मिलित हो गए हैं। इन विदेशी शब्दों को पृथक् करना तभी सम्भव हो सकेगा, जब ऐसी बोलियों का जिनका सम्बन्ध संस्कृत से बिलकुल नहीं है, सही ज्ञान प्राप्त कर लिया जाय।''

एक प्रमुख द्रविड़ भाषा के विद्वान् डा० गुण्डर्ट का अभिमत है :[2]—

''यह तो पहले से ही आशा की जा सकती थी कि द्रविड़ शब्दों की बहुत बड़ी संख्या ने संस्कृत में स्थान पा लिया होगा। यह कैसे सम्भव था कि आर्य सम्पूर्ण भारत में बिना आदिजातियों से बहुत कुछ ग्रहण किए हुए फैल जाते। इन आदिजातियों को उन्होंने सहस्रों वर्षों की अवधि में पराभूत किया था—कुछ को शान्तिपूर्ण तरीकों से और कुछ को बल प्रयोग द्वारा, परन्तु तब भी अब तक पूर्णतः पराजित नहीं कर पाए हैं। इसी प्रकार द्रविड़ भाषाओं के अध्ययन से यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि आर्य तत्त्व इन भाषाओं में इतनी अधिक गहराई से जुड़ गए हैं कि उनका मूलरूप अत्यन्त कठिनाई से ही पृथक् किया जा सकता है। इन तत्त्वों को प्रकाश में लाने के लिए दीर्घकालीन अध्यवसाय और सावधानी से तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता है। शोध के आरम्भ में ऐसा प्रतीत होगा कि गृहीत शब्दों को पहचान लेना आसान है तथापि शीघ्र

---

१. द्रष्टव्य—कम्प्लीट संस्कृत ग्रामर, पृ० ७३।

२. द्रष्टव्य—जर्नल ऑफ दि जर्मन ओरियंटल सोसायटी १८६९ में लेखक का एक लेख, शीर्षक ''द्रविडियन एलिमेन्ट्स इन संस्कृत''।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

ही यह प्रतीत होने लगता है कि आर्य तत्त्वों ने स्वयं को विभिन्न एवं विचित्र परिधानों में ऐसा छिपा लिया है कि शोधकर्ता भ्रान्त हो सकता है।

'ऐसा ही कुछ संस्कृत के सम्बन्ध में भी कहा जा सकता है। द्रविड़ शब्दों ने स्वयं को न केवल अत्यन्त प्रकृत्यनुकूल बना लिया है, वरन् स्वयं को समान ध्वन्यात्मक शब्दों की अनुरूपता में ऐसा परिवर्तित कर लिया है कि संस्कृत को पुनीत भाषा के रूप में वरीयता देने और उसके व्युत्पत्तिविषयक पक्ष पर बल देने के तीव्रोत्साह के कारण इन शब्दों को या तो मूल आर्य रूपों से व्युत्पन्न दिखाया जाता है या द्रविड़ रूपों को ही संस्कृत रूपों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। भारत में ऐसा भाषाविज्ञानी कठिनाई से मिलेगा, जो यह स्वीकार करने के लिए उद्यत हो कि संस्कृत में द्रविड़ तत्त्व विद्यमान हैं, जब कि हम बहुत से ऐसे व्यक्तियों से मिल सकते हैं ( कम-से-कम मलाबार में ) जो अत्यन्त साहस के साथ यह कहने को प्रस्तुत हैं कि द्रविड़ का सम्पूर्ण शब्द-भण्डार संस्कृत के भ्रष्टरूपों से गृहीत है। यहां तक कि अरब और योरोप के नाम भी वे इसी कोटि में रखने को प्रस्तुत हैं। जहाँ तक हम योरोप वालों का सम्बन्ध है, हम प्रकरण की इस प्रकृति पर बड़े सरल ढंग से विचार करते हैं। जहाँ विभिन्न भाषाओं को बोलने वाले एक-दूसरे के निरन्तर सम्पर्क में हैं, जब वे आपस में लड़ते-झगड़ते हैं और व्यापार करते हैं तथा अपने सुख-दुःख को साथ-साथ बाँटते हैं, वहाँ यह स्वाभाविक है कि वे बिना किसी समीक्षा के और विचार किए हुए एक-दूसरे से ग्रहण करते। ऐसा ही उन आरम्भिक दिनों में हुआ होगा, जब कि ये राष्ट्र एक-दूसरे के समक्ष अपनी आदि अवस्था में थे।

अतः यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ज्यों-ज्यों आर्य दक्षिण की ओर प्रविष्ट होते गए और नई-नई वस्तुओं और उनके द्रविड़ नामों से परिचित होते गए त्यों-त्यों सहज ही उन्होंने उन नामों को वस्तुओं सहित ग्रहण कर लिया होगा।

जहाँ तक ध्वनि-तत्त्व का सम्बन्ध है, संस्कृत की मूर्धन्य ध्वनियों के मूल में द्रविड़-परिवार का प्रभाव माना जाता है। ध्वनि-परिवर्तन की दिशा में 'र' का 'ल' के स्थान पर और 'र' का 'ल' होना भी द्रविड़ प्रभाव कहा जा सकता है। वैसे मूल आर्य भाषा में भी यह रहा होगा। द्रविड़ प्रभाव के कारण संस्कृत में विभिन्न प्रकृतियों के एकवचन तथा बहुवचन रूपों को बनाने में समान प्रत्यय प्रयुक्त होते हैं। इन प्रभावों का अध्ययन अमरकोष के निम्नलिखित शब्दों के उल्लेख से स्पष्टरूप से किया जा सकता है—

अगुरु (अमर० २।६।१२६-२७)—टी० बरो महोदय ने[1] 'सुगन्धिद्रव्य' इसका अर्थ बताते हुए कहा है कि तेलुगु, मलयालम में 'अकिल' तथा तुलु में 'अगिलु' रूप मिलता है।

---

१. दि संस्कृत लैंग्वेज—...

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अट्ट ( अमर० २।२।१२ )—अटारी। किटेल महोदय[1] ने इसे मूल 'अड' ( एक वस्तु के ऊपर दूसरी रखना ) से गृहीत बताया है। द्रविड़ रूप 'अट्ट' मिलता है।

अटवी ( अमर० २।४।१ )—वन, जंगल। संस्कृत-पण्डितों ने इसे 'अट्' धातु ( भ्रमण करने के अर्थ में ) से व्युत्पन्न माना है, अर्थात् जहाँ भ्रमण किया जाय। वन में पशु तथा मनुष्य भ्रमण करते हैं। परन्तु सभी द्रविड़ भाषाओं में 'अड्' मूल सुरक्षित है, जिसका अर्थ है–'घनापन, निकटता।' तमिल के शब्द 'अडर' का अर्थ है घना, मोटा और वन में वृक्षों की स्थिति भी ऐसी ही होती है। साथ ही 'वी' परसर्ग भी द्रविड़ है। तमिल में 'केल' सुनना क्रिया से 'केल्वी' सुनना संज्ञा बनती है। अतः काल्डवेल[2] महोदय ने कहा है—'इसमें थोड़ा भी सन्देह हो सकता है कि मूल संस्कृत से नहीं, वरन् 'अटवी' ( तमिल और तेलुगु' अडवी ) शब्द उस क्रियामूल से व्युत्पन्न हुआ।'

अणिः ( अमर० २।८।५७ )—रथ के चक्र की कील, 'आणि न रथ्यं अमृताधितस्थुः'—ऋग्वेद। संस्कृत में यह शब्द 'अण्' धातु ( ध्वनि करने के अर्थ में ) से व्युत्पन्न माना जाता है। परन्तु तमिल में 'आणि' ( पिन ) मूल से यह अधिक निकट है। तमिल में दो वस्तुओं को फँसाकर रखने के अर्थ में इसी तरह के अन्य शब्द भी मिलते हैं। उदाहरणार्थ—'अणुकु' ( स्पर्श करना ), 'अणे' ( आलिंगन करना, बाँधना ), 'अणि' ( आभूषण इत्यादि पहनना, संज्ञा या क्रिया रूप )।

अनल ( अमर० १।१।५४ )—अग्नि। द्रविड़ भाषाओं में इसके रूप इस प्रकार सुरक्षित हैं—तमिल 'अनल' ( गर्मी ), मलयालम' 'अनल' ( अग्नि, गर्मी ) तथा कन्नड़ 'अनलु' ( गर्मी )।

अम्बा ( अमर० १।१०।१४ )—पिता-माता। तमिल 'अम्मा', अम्बाल ( देवपत्नी ) रूप मिलते हैं। इसके कई सम्बद्ध रूप द्रविड़ में प्राप्त होने के कारण काल्डवेल ने इसे भी द्रविड़ माना है।

अर्क ( अमर० १।३।२९, ३।३।४ )—स्फटिक। तमिल —'एरुक्कु', मलयालम-–'एरिक्कु', कन्नड़-–'एर्क', एक्के', यावक, तुलु —एक्कमाले, एक्कमे आदि द्रविड़ रूप मिलते हैं।

अलस ( अमर० २।१०।१८ )—आलसी, थकित। तमिल—'अलकु' ( थकित होना ), 'अलकल' ( आलस्य ), 'अलैकु' ( आलसी होना ), 'अलेयल' ( शक्तिहीन ),

---

१. द्रष्टव्य—'इंडियन एण्टीक्वेरी' ( अगस्त, १८७२ ) में लेखक का लेख 'दि द्रविडियन एलीमेंट्स इन संस्कृत डिक्शनरीज।'

२. ए कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ दि द्रविडियन लैंग्वेज, लंदन १८७५।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मलयालम अलयुकु ( थकित होना ), 'अलसल' ( आलस्य ), कन्नड़—'अलसु' ( थकित होना ) इत्यादि द्रविड़ रूप मिलते हैं ।

आलि ( अमर० २।१।१४, २।४।४, २।६।१२ )—सखी । तेलुगु 'आलि' ( पत्नी ), आलु--एक स्त्रीवाची प्रत्यय । गोंड भाषा में 'आलि' शब्द का अर्थ पत्नी है ।

उलप ( अमर० २।४।६ )--झाड़ी, एक प्रकार की घास, लता । तमिल में 'उलवे' शब्द के भी हरी डाल, पेड़ की शाखा तथा विभिन्न झाड़ियों का अर्थ लिया जाता है ।

उलूखल ( अमर० २।६।२५ )—ओखली । तमिल 'उलक्कै' ( ओखली में बेलनाकार पीटने वाला यंत्र ), मलयालम 'उलक्क', कन्नड़—'ओलके', तेलुगु—'वोकली' ( लकड़ी का एक बड़ा पीटने वाला यन्त्र ) आदि रूप द्रविड़ में सुरक्षित हैं ।

एड, एडक ( अमर० २।६।४८, २।६।७६ )—भेड़, जंगली बकरी । डा० गुण्डर्ट ने इसकी व्युत्पत्ति द्रविड़ मूल 'अड़ु' ( कूदना ) से मानी है । तमिल--'याट्टु', 'आट्टु' ( बकरी, भेड़ ), मलयालम--'आट्टु', कन्नड़—'आडु' ( बकरी ), तुलु 'ऐड़ु' तेलुगु—'ऐट' ( बकरी का बच्चा ), गोंड--'येट' ( बकरी ) तथा ब्रहुइ 'हेट' में इसके रूप सुरक्षित हैं ।

कंक ( अमर० २।५।१६ )--सफेद चील । तमिल, मलयालम, कन्नड़--'कोक्कु' ( चील पक्षी ), 'तुंलु' 'कोरंगु', तेलुगु--'कोंगु', कुवि, 'कोंगी' इत्यादि रूप मिलते हैं ।

कटु, कटुक ( अमर० १।५।६, २.४।८५, ३।३।३५ )--कड़वा, तेज, क्षारयुक्त। तमिल--'कडुमै' ( तेज, भयंकर ) मलयालम--'कट्टु' ( अत्यधिक भयानक ), 'कटुक्क' ( कठिन बन जाना, तेज होना ), 'कटेट्टु' ( भयंकर, बड़ा ) इत्यादि रूप मिलते हैं । संस्कृत में इसे 'जाना' अर्थ वाले 'कट्' मूल से व्युत्पन्न माना जाता है । डा० वुह्लर ने इसकी व्युत्पत्ति काटने के अर्थ वाली 'कृत्' धातु से की है । उनके अनुसार 'कर्तु' के लिए 'कटु' शब्द आया है । काल्डवेल ने इसे द्रविड़ मूल वाला बताया है--'कटु' शब्द संस्कृत में बहुत पहले से है और इसे द्रविड़ भाषाओं से गृहीत कहना संगत नहीं प्रतीत होता, परन्तु मेरे अनुसार इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं किया जा सकता कि इसका मूल द्रविड़ ही है । 'यही नहीं, उनके अनुसार, संस्कृत की अपेक्षा इस मूल वाले अधिक शब्द तमिल में ही उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ-तमिल--'कडु' ( तेज होना ) मूल से कई अन्य शब्द जैसे 'कडुप्पु' ( उत्तेजित होना, जल्दी करना ), 'कडि' ( दाँत से काटना, टुकड़े करना ), 'कडु-कडु ( मुँह चिढ़ाना, क्रोधित दीख पड़ना ) 'काडु, कडन, कडर' ( जंगल ) काडन —( वनवासी ) इत्यादि । इसके अतिरिक्त संस्कृत कटुक शब्द तमिल—'कडुगु' ( सरसों ) से व्युत्पन्न जान पड़ता है ।

कठिन ( अमर० ३।१।७६ )—कठोर, दृढ़ । तमिल—'कट्टि' ( कठोर बनाई गई ),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कन्नड़—कडुगु' ( कठोर होना ), 'गट्टि' (दृढ़ता, कठोरता ), तुलु—'गट्टि ( कठोर, दृढ़ ), तेलुगु--'कट्टिडि' ( कठोर हृदय )—विशेषण ), गट्टि ( कठोर दृढ़ ) इत्यादि रूप उपलब्ध हैं।

करवाल ( अमर० २।८।८९ )—तलवार। द्रविड़ में 'कै-वाल' ( हाथ की तलवार ) रूप मिलता है। 'वाल' ( तलवार ) सम्भवतः मुड़े हुए के अर्थ में 'वल' मूल से है, यह डा० गुण्डर्ट का अभिमत है।

करीर ( अमर० २।४।७७, ३।३।१७४ )--बांस का तना, कन्नड़ 'करिले' ( बांस का मूल ), तमिल—'कमिले', केन्द्रीय पर्जी—'कर्री, उत्तरी कुरुख् में 'खर्रा' तथा ब्रहुइ में ''खरिंग' ( खिलना अर्थ में ) आदि द्रविड़ रूप मिलते हैं।

कला ( अमर० १।३।१५, १।४।११, ३।३।१९८ )— ललित आदि प्रयोगात्मक कलाएँ। इसकी अनुमानित व्युत्पत्ति 'कल्' ( ध्वनि करना, परिगणन करना ) से है। तमिल में इसके लिए 'कलेइ' शब्द आया है। जो प्रत्येक कला और विज्ञान के लिए प्रयुक्त होता है। काल्डवेल के अनुसार--''में सोचता हूँ कि हम इस बात पर सन्देह नहीं कर सकते कि तमिल—'कलइ' या संस्कृत कला शब्द आदि द्रविड़ मूल 'कल' ( सीखना ) से व्युत्पन्न है। इसी से व्युत्पन्न एक अन्य शब्द 'कल्वी' ( ज्ञान, विद्या ) भी है।'' उनके अनुसार संस्कृत अर्थ इस अर्थ से इतना सम्बन्धित है कि एक प्रकार से उच्चरित दोनों शब्द भूल से समान मान लिए गए हैं।

कलुष ( अमंर १।४।२३, १।१०।१४ )—तमिल--'कोलुर' ( कलुषित होना ), कलुरि ( दूषित जल ), 'कलविकु' ( विचलित होना ), कुरुख्—'खलखना' ( परेशान होना, पानी को मटमैला करना ) आदि रूप द्रष्टव्य हैं।

काक ( अमर० २।५।२० )--कौआ। तमिल—'कोक्कइ', मलयालम--'काक्को', कन्नड़--'काकें', पर्जी—'काकल', 'कुर्ख—'खाखा', माल्टो--'काक' तथा ब्रहुइ—'ख-खो' आदि रूप मिलते हैं।

कानन ( अमर० २।४।१ )—वन। तमिल--'कानन' ( लकड़ी से युक्त घाटी ), 'कानल'—समुद्र के किनारे वन या घाटी, मलयालम—'कावु'( बाग की झाड़ी ), 'कानल' ( शुष्क वन ), कन्नड़—'का' ( वन ) इत्यादि रूप सुरक्षित हैं।

कावेरी ( अमर० १।१०।३५ )—नदी विशेष। सम्भावित मूल 'कव' ( चित्रित करने के अर्थ में ) मिलता है। जो इस नदी के मटमैले पानी से सम्बन्धित माना जा सकता है। काल्डवेल ने इसका मूल द्रविड़ में खोजने की सम्भावना की है—'मेरे अनुसार कावेरी ( नदी विशेष ) शब्द के मूल की द्रविड़ 'कावि' ( लाल कपिश वर्ण ) या 'का' ( 'कावु'--दरार तथा 'एरु'--नदी, तेलुगु या 'एरी'--पानी की एक चादर, तमिल ) में सम्भावना की जा सकती है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कुट (अमर० २।९।३२)—घड़ा। तमिल–मलयालम—'कुडम्', कन्नड़—'कौड', 'कोट', 'कोर्म' रूप प्राप्त होते हैं।

कुटी (अमर० २।२।४, ३।५।३८)—गृह। सम्बन्धित शब्द 'कुटीर' (आवास, झोपड़ी) तथा कुटुम्ब कहे जा सकते हैं। काल्डवेल के अनुसार यह 'कुट्' (कुटिल, टेढ़ा होना) मूल से लिया गया माना जा सकता है। तमिल—'कूड' (साथ में) तथा मूल—'कूडु' का अर्थ है—एक साथ होना, एकत्र होना। 'कुडि' का अर्थ है—'घर'। इसी का एक अन्य रूप है 'कूड' (करीब आना, सम्बन्धित होना)। तमिल में इससे सम्बन्धित 'कुडिल्' तथा 'कुडिशै' शब्द भी झोपड़ी के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, जिसका स्थानीय रूप 'कुच्चई' भी है। तेलुगु, तुलु तथा कन्नड़ में 'गुडि', 'गुडिसे' का अर्थ है—'मन्दिर'। कन्नड़ में 'गुडिसलु' का अर्थ है 'झोपड़ी'। हिन्दुस्तानी में भी घर को 'गुटि' कहते हैं।

कुटिल (अमर० ३।१।७१) टेढ़ा, जिह्म, वक्र। तमिल—'कोट्टु' (नपुंसक—पंक्ति) 'कोडु' (वक्रगति से चलना), 'कुट' (वक्र, अनृजु दशा में), 'कुडवु' (वक्र), मलयालम 'कोट्टु' तथा कन्नड़ 'कडु' (जिह्म) आदि के आधार पर इसे द्रविड़ से लिया गया माना जा सकता है।

कुठार (अमर० २।८।९२)—कुल्हाड़ी। किटेल ने इसे द्रविड़ 'कडि' (काटना) से गृहीत माना है।

कुण्डल (अमर० २।६।१०३)—कर्णाभूषण, चक्रबद्ध रस्सी। कन्नड़—'गुण्ड', 'गुण्ड्' (गोलाकार), तुलु—'गुण्डु' (चक्राकार वस्तु), 'गुण्डल' (कर्णाभूषण), तेलुगु-'गुण्ड्रन' (चक्राकृति), 'गुण्ड्रुनि' (गोल) इत्यादि उदाहरणों के आधार पर टी० बरो ने इसे द्रविड़ मूल का कहा है।

कुद्दाल (अमर० २।४।२२)—मृत्तिका खनन में प्रयुक्त एक प्रकार का यन्त्र। फावड़ा या कुल्हाड़ी। कन्नड़ 'गुद्दली' (एक प्रकार की कुल्हाड़ी), तुलु—'गुद्दौली', तेलुगु—'गुद्दली', 'गुद्दलिरिसु' (खोदना), कोट—'कुदे' (कुल्हाड़ी), माल्टो—'कोदली', कन्नड़—'गुद्दु' का अर्थ है 'प्रहार करना' आदि।

कुन्तल (अमर० २।६।६५)—सिर के बाल, अलकें। तमिल, मलयालम—'कुन्दल', कन्नड़—'कूदल' आदि इसके द्रविड़ मूल को द्योतित करते हैं।

कुवलय (अमर० १।१०।३७)—कमल। तमिल—'कुवलइ', कन्नड़—'कोमले', 'कोमल', 'कोल' आदि रूप मिलते हैं।

कूप (अमर० १।१०।२६)—कुआँ। तमिल—'कणर', मलयालम—'कुम्पु', तुलु—'कूवे' 'कुवे' आदि इसके द्रविड़ रूप मिलते हैं।

कूल (अमर० १।१०।७)—तट, किनारा। यह शब्द सम्भावित मूल 'कूल' से लिया

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गया है, जिसका अर्थ है—'सीमित'। इसके रूप तमिल, मलयालम, 'कुलम्', तेलुगु—'कोलनु' ताल के अर्थ में प्राप्त होते हैं। तमिल 'कुलम्' ( ताल ), 'कुलि' ( स्नान करना ) मूल से लिया गया है। 'कुलु' मूल का अर्थ है—'शीतल होना' और 'कुलुमै'—शीतलपन, ठण्डापन का अर्थ स्पष्ट करता है। काल्डवेल ने इसे शुद्ध द्रविड़मूलक शब्द कहा है।

केयूर (अमर० २।६।१०७)—बाहुमूलाभूषण, अंगद। द्रविड़ 'कै' (बाहु) तथा 'उर' (प्रयोग में लाया गया ) से मिलकर बना यह शब्द उपर्युक्त अर्थ द्योतित करता है।

कोकिल ( अमर० २।५।१९ )—कोयल पक्षी। द्रविड़ 'कुयिल'। इस सम्बन्ध में डा० गुण्डर्ट का मत उल्लेखनीय है—"द्रविड़ शब्द सामान्यरूप से संस्कृत का भ्रष्टरूप माना गया है। सम्भवतः कोई भी शब्द दूसरे से गृहीत नहीं है। दोनों भाषाओं के शब्द ही अनुकरणात्मक हैं। द्रविड़ मूल 'कु' ( चिल्लाना ) अपने रचना-तत्त्व 'इल' ( स्थान ) के साथ इस शब्द का निर्माण करता है।

कोटर ( अमर० २।४।१३ )—वृक्षस्थित गह्वर, प्रान्तर। कन्नड़—'गोटरु', 'गोड्डु', 'गोडगु' ( खाली स्थान, छिद्र ), 'कोट्ट', 'गोट्ट' ( सछिद्र बांस ) आदि रूप इसके द्रविड़ मूल का अनुमान करने में सहायक सिद्ध होते हैं।

कोट्ट ( अमर० ३।५।१८ )—किला। इसका अनुमान मूल 'कुट्' ( वक्र होना ) है। द्रविड़ बोलियों में इसके समान शब्द ही किले के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ—तेलुगु में 'कोट्टु', कन्नड़ में 'कोटे' तथा तमिल में 'कोट्टेइ'। काल्ड-वेल ने इसके संस्कृतमूलक होने का खण्डन करते हुए सुन्दर ढंग से द्रविड़मूलक होना पुष्ट किया है। उनके अनुसार—'क्योंकि द्रविड़ में किले के लिए अति प्राचीन शब्द 'अरण' मिलता है, जिसका मूल निश्चित रूप से द्रविड़ ही है, यह अनुमान लगाया जा सकता है कि 'कोट्टेइ' शब्द संस्कृत से तमिल में गृहीत होगा। परन्तु संस्कृत ने इसे कहाँ से पाया ? सम्भवतः द्रविड़ से ही, क्योंकि तमिल, मलयालम 'कोडु' ( पंक्ति, रेखाचित्र, चारों ओर से घेरना ) शब्द जो कि कभी-कभी मलयालम में 'चारों ओर से परिवेष्टित नगर', 'किलेबन्दी' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यही 'कोट्टेइ' शब्द का सहज आधार है।........'कोडु' शब्द जब विशेषण रूप में प्रयुक्त होता है तो वह 'कोट्टु' हो जाता है।"

कोण ( अमर० १।७।६, २।८।९३ )—कोना। तमिल 'कोण' ( जिह्मता, कोना ) 'कोणु' ( चक्र होना, जिह्म होना ), मलयालम 'कारण' ( कोना ), 'कोणुक' ( मुड़ना क्रिया ), कन्नड़—'क्रोण', 'कोणे', तुलु 'कोणे' 'तेलुगु—'कोन' ( कोना ) इत्यादि रूप द्रविड़ बोलियों में सुरक्षित हैं।

कोरक ( अमर० २।४।१६ )—कलिका। ( तमिल—'कुरे' ( कल्ला, नवीन विकास ),

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'कोइ', 'कोइ' ( नयी कली, विकास ), गोण्डी—'कोर्सना' ( विकसित होना ), कुर्ख—'खोर्ना' ( विकसित होना, नव पल्लव ), 'खोर' ( नवीन पल्लव, अंकुर ) इत्यादि रूप द्रष्टव्य हैं ।

खट्वा ( २।६।१३८ )—पलंग । अनुमानित मूल 'खट्ट' ( छिपाना, आश्रय देना ) है । यह शब्द तमिल, मलयालम—'कट्टिल' ( पलंग ) तथा 'कट्टु' ( बांधना ) से बना है ।

खल ( अमर० ३।१।४७ )—दुष्ट, धोखेबाज, चोर । तमिल--'कल्' ( चोरी करना ), कलवाणि ( चोर ), कलवू ( चोरी, वंचना ), कन्नड़--'कल्ल' ( चोर ), तेलुगु--'कल्ल' ( वंदना ), 'कल्लरि' ( दुष्ट ) इत्यादि रूप द्रविड़ बोलियों में सुरक्षित मिलते हैं ।

गण्ड ( अमर० २।६।९०, २।८।३७, ३।५।१२ )—पिण्ड, अतिरिक्त पदार्थ । कन्नड़—'गड्डे ( पिण्ड, आकारहीन असुन्दर जड़ ) तथा 'गण्टे', 'गड्डे', 'गेण्डे' रूप मिलते हैं । इसी मूल से संस्कृत शब्द 'गडु' ( अमर० ३।५।१८ ), जिसका अर्थ अतिरिक्त पिण्ड ( उदाहरणार्थ—'गजगण्डस्थित अतिरिक्त मांसपिण्ड' ) है, समझा जा सकता है ।

गुड ( अमर० ३।३।४२ )—चक्र, गोला । तेलुगु--'गुडुसु' ( गोला ), 'गुड्डु' ( आँख का तारा, 'गोड्ड' ( गोलाकार पत्थर ), कन्नड़—'गुडसु' ( कोई भी गोलाकार वस्तु ), 'गुड्डु' ( अक्षितारक ) इत्यादि रूप प्रर्याप्त प्रचलित मिलते हैं ।

घुण ( अमर० ३।५।१८ )—लकड़ी का कीड़ा । टी० बरो के अनुसार कन्नड़ में इसका रूप 'गौण्णे–पुरु' सुरक्षित है ।

घोटक ( अमर० २।८।४४ )—घोड़ा । तेलुगु--'गुर्रम' तथा तमिल—'कुदिरे' इसके आधार माने जा सकते हैं । सम्भवतः 'कुदि' ( कूदना अर्थ में ) से ही इस शब्द की निष्पत्ति हुई । भारतीय आर्य भाषा में अन्य भाषाओं के शव्दों को ग्रहण करने की प्रवृत्ति का उल्लेख करते हुए टी० बरो ने भी इस शव्द का उल्लेख किया है । उनके अनुसार--'घोड़े के अर्थ में आया 'घोटक' शव्द बाद को संस्कृत में अश्व के साथ प्रयुक्त होने लगा और इसने प्रारम्भ के 'अश्व' शव्द को बाद की भारतीय आर्य भाषा से निष्कासित कर दिया ।'

चम्पक ( अमर० २।४।६३ )– चम्पा पुष्प । डा० गुण्डर्ट ने द्रविड़ मूल वाले शव्दों की सूची में इसको भी सम्मिलित किया है । इसी प्रकार 'जम्बु' ( अमर० २।४।१९, जामुन के अर्थ में ) को भी उन्होंने द्रविड़ 'शेम्बु' ( रक्तवर्ण ) से बना हुआ माना है ।

चतुर ( अमर० २।१०।१९ )—तमिल—'चतुर' ( योग्यता, बुद्धिमत्ता ), तुलु—'चदुपु'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( बुद्धिकौशल ), कन्नड़—'चदुरु' ( बुद्धिमानी, कुशलता ), तेलुगु—'चदुवु' ( सीखना ) तथा 'चदुरु' ( बुद्धिमत्ता ) इत्यादि रूप सुरक्षित मिलते हैं।

चन्दन ( अमर० २।६।१३१ )—सुगन्धियुक्त वृक्षविशेष। तमिल—'चन्दनतूल', बोलचाल में 'चण्तु' ( चन्दनपिष्ट ), मलयालम—'चण्तु', कन्नड़—'स्वादु' ( एक सुगन्धयुक्त पदार्थ ), तेलुगु—'चादु' ( पेषण करना ), प्रमुख रूप प्राप्त हैं।

चिक्कण ( अमर० २।९।४६ )—स्निग्ध, चिकना। तमिल, मलयालम—शिक्कु ( फंस जाना, उलझना ) कन्नड़—'सिक्कु' ( निगलने योग्य होना, चिकना होना ) तथा 'जिगाटु' ( चिपकन से युक्त रहना ) इत्यादि रूप द्रष्टव्य हैं।

चूडा ( अमर० २।५।३१, २।६।९७ )—शिखा, केशपाश। तमिल—'चूड' ( मस्तक पर ग्रहण करना, केशपाश, शिखा ), मलयालम—'चूटुक' ( मस्तक पर धारण करना ), 'चूट्टु'( कंघा ), कन्नड़—'सूडु' इत्यादि रूप प्रचलित हैं।

तलिन ( अमर० ३।३।१२७ )—अल्प, विरल, छोटा, नम्र, पतला। कन्नड़, तेलुगु—'तेल्लगे' ( सुन्दर होना, पतलापन ) तथा 'तेल्लने' ( कोमल, पतला ) इत्यादि रूप सुरक्षित हैं।

तामरस ( अमर० १।१०।४० )—कमल। तमिल—'तामरे', मलयालम—'तामर', कन्नड़—'तामरे', 'तावरे', तेलुगु—'तामर' रूप द्रविड़ में उपलब्ध हैं।

ताल ( अमर० २।४।१६८ )—वृक्षविशेष। कन्नड़—'तार', तेलुगु—'ताडु' रूप द्रविड़ मूल वाले हैं।

तुवर ( अमर० १।५।९ )—कषाय। तमिल—'तुवर' ( कषायित होना, कषायित स्थिति ), 'तुवरप्पु' ( कषाय स्वाद ), कन्नड़—'तुवर' 'तोवर' 'तोगरि', 'तोगरु' ( कषाय ) रूप द्रष्टव्य हैं।

तूल ( अमर० २।९।१०६ ) कपास, रूई। तमिल, मलयालम में 'तूवल' ( पंख ) आदि रूप मिलते हैं।

दण्ड ( अमर० ३।३।४२ )—छड़ी, डंठल। तमिल—'तण्टु' ( डण्ठल ), कन्नड़—'दण्टु ( डण्ठल ), 'दण्ड' ( छड़ी ), तेलुगु—'दण्टु' ( डण्ठल ) इत्यादि रूप सुरक्षित हैं।

नक्र ( अमर० १।१०।२१ )—मगर ( जलजन्तु विशेष )। कन्नड़—'नगर' तथा तेलुगु 'नेगडु' में इसका रूप सुरक्षित है।

नाना ( अमर० ३।३।२४८, ३।४।३ )—अनेक, विभिन्न प्रकार के। इस शब्द का आधारभूत कोई संस्कृतमूल निश्चित नहीं किया जा सकता। बॉप ने इसके 'यह वह' आदि 'निर्देश शब्दों' से निःसृत होने का अनुमान किया है। इसका मूल

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

द्रविड़—'नालु' ( साहित्यिक तमिल में 'नानगु' ) 'चार' अर्थ में माना जा सकता है, क्योंकि यह संख्या द्रविड़ भाषाओं में दस संख्या की भांति 'अनेक या विभिन्न' को द्योतित करती है। भेद यही है कि चार के योग में 'अनेक' अर्थ सीमित होता है और दस के योग में असीमित। उदाहरणार्थ, एक तमिलभाषी व्यक्ति के मुख से निःसृत वाक्य 'नान नालु पेरकिट्टे इ विषयत्तै केट्टेन्।' ( मैंने यह बात चार व्यक्तियों के मुख से सुनी ) का अर्थ होगा—"कई विभिन्न या अनेक व्यक्तियों से सुनी"। इसी प्रकार एक अन्य वाक्य 'पुन्तुपेर नाम शेयवेरडम् शेयकिरदुपोल' ( हमें वैसा ही करना चाहिए, जैसा दस व्यक्ति करते हैं ) का तात्पर्य होगा "जैसा सारा संसार करता है।" काल्डवेल ने इस शब्द का मूल द्रविड़ भाषा में सिद्ध करते हुए स्पष्ट किया है— "संख्यावाची विशेषण शब्द 'नाला' ( नालु-चार, से ) तमिल में प्रायः 'अनेक' के अर्थ में प्रयुक्त होता है, यद्यपि इसका उचित प्रयोग 'चार' के लिए होना चाहिए। तमिल कोषों में संस्कृत कोषों के 'नानाविध' ( विभिन्न प्रकार ) को 'नालाविदम्' के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यहां यह बात ध्यान देने की है कि तमिलभाषी 'नाला' शब्द को संस्कृत 'नाना' से ही भ्रष्ट मानते हैं, क्योंकि द्रविड़ में इसका अर्थ 'चार' से है। तमिल के इस शब्द के प्रयोग को ध्यान में न रखते हुए तमिल, कन्नड़ तथा तेलुगु कोषों में 'नाना' शब्द को संस्कृत ही माना है।

नीर ( अमर० १।१०।४ )—जल। सम्भवतः यह शब्द मार्ग-प्रदर्शन करने के अर्थ में प्रयुक्त हुई 'नी' धातु से निष्पन्न हुआ जान पड़ता है। 'नीर' तथा 'नार' शब्द समानार्थी होते हुए भी 'नार' अपेक्षाकृत प्राचीन शब्द है। द्रविड़ 'नीर' का आधार तमिल, मलयालम 'नीरु' है, जिसका अर्थ है 'समतल होना'।

इसका एक दूसरा रूप तमिल 'नेर' ( ऋजु ) है। संस्कृत में 'अप्' तथा 'उदक' ( जल ) की अपेक्षा 'नीर' शब्द बहुत ही कम प्रयुक्त होता है। 'जल' शब्द स्वयं संस्कृत में संस्कृत पूर्व की उत्तर की बोलियों से लिया गया है। काल्डवेल का मत है—'नीर' शब्द को द्रविड़मूलक कहने में सन्देह नहीं है। 'नीर' या 'नीरु' द्रविड़ शब्द ही द्रविड़ बोलियों में जल के अर्थ में मुख्यतः प्रयुक्त होता है, अतः इसको संस्कृत से गृहीत नहीं कहा जाता। तेलुगु में 'नीरु' ( एकवचन ) के स्थान पर अधिकतर 'निल्लु' ( बहुवचन 'निरुलु' का संक्षिप्त रूप ) प्रयुक्त होता है। मलयालम में जल के लिए एक अन्य शब्द 'वेल्लन' आया है जिसका अर्थ है—'बाढ़' और 'अधिकता'। तमिल में 'वेल्लम्' ( प्रवाह ) शब्द उस जल के लिए प्रयुक्त होता है, जिससे धान के खेत भरे जाते हैं और वहीं से सम्भवतः मलयालम में जल के लिए इसका प्रयोग हुआ। मलयालम में 'नीर' शब्द तो प्रयुक्त होता ही है। 'तमिल' में प्रयुक्त विशेषण 'तण्' ( शीतल ) 'नीर' ( जल ) के साथ 'तण्णीर' रूप में ऐसे युक्त हुआ है कि संज्ञा 'नीर'

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

प्रायः लुप्त-सा होकर रह गया है। तमिल मूल 'नी' से बना 'नीन्दु' ( तैरना धातु एवं संज्ञा रूप ) नीर से पर्याप्त सम्बद्ध जान पड़ता है। यदि इसे स्वीकार किया जाय तो लैटिन 'नो' तथा संस्कृत 'नौ' ( नौका ) को भी इसी से सम्बन्धित कहा जा सकता है। 'नीर' शब्द के एक अन्य पर्याय 'तोय' को भी द्रविड़-मूल वाला बताया गया है।

पटोल ( अमर० २।४।१५५ )—परवल। तमिल 'पुटल' 'पुटले', मलयालम 'पुट्टल', 'पिट्टल' तथा कन्नड़ 'पोट्ल' में इसके रूप सुरक्षित मिलते हैं।

पण ( अमर० २।१०।३८ )—क्रिया रूप में टी० बरो ने इसका अर्थ दिया है—'मोल-भाव करना', 'तय करना'। संज्ञा रूप में अर्थ है—'समझौता'। तमिल में 'पुणै' ( बांधना, बंधन, शपथ, सुरक्षा इत्यादि अर्थ में ), 'पिणै' ( संज्ञा—धरोहर तथा क्रिया—बांधना ) तथा कन्नड़ में 'पोणे' ( बंधन, सुरक्षा ) रूप मिलते हैं। संस्कृत में अमरकोष में आए इसके अर्थ 'जुए में दांव लगाना, कीमत, मजदूरी' इत्यादि द्रविड़ के 'समझौता' अर्थ के समान ही है।

पण्ड ( अमर० २।६।३९ )—नपुंसक व्यक्ति। तमिल 'पेणु' 'पेण्डु' ( स्त्री ) तथा 'पेडि'—नपुंसक व्यक्ति, 'पेट्टे केलि'—मादा मुर्गी इत्यादि रूप सुरक्षित मिलते हैं। कन्नड़—'तेण' 'पेण्ड' ( स्त्री ), तेलुगु 'पेण्टि' ( मादा ) 'पेडि' ( नपुंसक व्यक्ति ) इत्यादि द्रविड़मूलक रूप प्राप्त होते हैं। अतः यह शब्द द्रविड़ से गृहीत लगता है।

पण्डित ( अमर० २।७।५ )—चतुर, ज्ञानवान्, परिपक्व। तेलुगु 'पण्डु' ( परिपक्व होना ) 'पण्डु' ( बुद्धिमता, चतुराई ) इत्यादि रूप द्रष्टव्य हैं।

पत्तन ( अमर० २।२।१ ) शहर, नगर या गाँव। इसका अनुमानित मूल 'पत्' (घेरना) है। काल्डवेल मानते हैं कि द्रविड़ भाषाओं में 'पत्तनम्' शब्द सम्भवतः संस्कृत से ग्रहण किया होगा, परन्तु 'कोइ' ( किला ) शब्द के समान ही यह शब्द भी किसी दक्षिण भारतीय 'वर्नाकुलर' से ही संस्कृत में आया होगा, ऐसी सम्भावना की जा सकती है। काल्डवेल ने 'पत्तन' शब्द को 'पत्ति' ( जानवरों का बाड़ा, एक छोटा ग्राम ) से सम्बन्धित बताया है। यह शब्द दक्षिण के कई नगरों और ग्रामों के लिए प्रयुक्त शब्दों के साथ द्रष्टव्य है। उदाहरण के लिए 'कोविलपत्ति' देखें। कन्नड़ में इसके लिए शब्द है 'हत्ति'। 'पत्ति' का मूल सम्भवतः 'पोड्डु' है, जिसका अर्थ है 'निवास करना, स्थिर होना'। काल्डवेल के अनुसार संस्कृत में 'पुरदे' शब्द के साथ ही 'पत्ति' शब्द गृहीत हुआ होगा और फिर इससे 'पत्त और तब 'पत्तन' शब्द बने होंगे।

पालि ( अमर० ३।३।१९८ )—रेखा, पंक्ति। कन्नड़ 'पारि' ( पंक्ति, रेखा, नियतता,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नियम ), मलयालम—'पालि' ( रेखा या पंक्ति ), तेलुगु 'पाङ्गि' ( युक्तता, नियतता ) रूप द्रविड़ बोलियों में सुरक्षित मिलते हैं ।

पिण्ड ( अमर० ३।५।१८ )—कन्नड़ पेट्ट पेट्टे पेण्टे हेण्टे हेण्ड ( मृत्पिण्ड ), तेलुगु 'पेड्ड', 'पेल्ल', 'पिण्डलि' ( समूह, ढेर ), कन्नड़-तेलुगु 'पिण्डु' ( एक साथ दबाना ) आदि रूप मिलते हैं ।

पुंख ( अमर० ३।५।१७ )—बाण का पंखवाला भाग । तमिल—'पुरुकु' ( बाणाग्र ), कन्नड़ 'पिलुकु, पिल्कु' ( बाण का पंख वाला भाग ) इत्यादि रूप द्रष्टव्य हैं ।

पुत्र ( अमर० २।६।२७, २।६।३७ )—यह शब्द सम्भवतः द्रविड़मूल 'पुद्' ( नवीन ) से लिया गया है ।

पुन्नाग ( अमर० २।४।२५ )—वृक्षविशेष, नागकेसर, जिसके फूल पीतवर्ण के होते हैं । गुण्डर्ट के अनुसार द्रविड़ 'पोन' ( स्वर्ग ) ही सम्भवतः इसका आधार रहा होगा । तमिल 'पुण्णे', मलयालम—'पुन्न' तथा कन्नड़—'पोन्ने, पुन्निके' 'तेलुगु—'पोन्न' इसके समान शब्द मिलते हैं ।

पेट ( अमर० पेटक २।१०।२९ )—डलिया, टोकरी । इसका द्रविड़ मूल 'पेट्टि' (सन्दूक या टोकरी ) माना जा सकता है । तेलुगु 'पेट्' ( स्थान देना ) 'पिड' ( रखना, पकड़ना, समा जाना ) इत्यादि रूप मिलते हैं ।

फल ( अमर० ३।३।२०१ )—यह शब्द डा० गुण्डर्ट के अनुसार द्रविड़मूल 'पर्' ( पुराना, वृद्ध हो जाना ) से बना है । तेलुगु 'पण्डु' इसी मूल पर आधृत है । द्रविड़ 'परम्' और 'पलम्' ( पका फल ) समानार्थी हैं ।

बल ( अमर० ३।३।१९६ )—शक्ति । तमिल 'वल' ( शक्तिशाली ) 'वलम्' ( शक्ति ) मलयालम 'वल' ( शक्तिशाली ), कन्नड़ 'बल' ( शक्तिशाली ) 'बलुने, बलुतु' ( शक्ति ) तथा तेलुगु 'वलि, वलुद' में इसके रूप सुरक्षित हैं ।

बक ( अमर० २।५।२२ )—सारस । तमिल—'वक्का', 'वनिका' ( श्वेत सारस ) तथा तेलुगु—'वक्कु' ( सारस ) से टी० बरो नें प्रस्तुत शब्द को गृहीत बताया है ।

बिल ( अमर० १।८।१ )—रन्ध्र, गुहा । तमिल 'विलवु' ( दरार, छिद्र ), 'विल' 'विल्लु' ( दरार आ जाना, टुकड़े हो जाना ), मलयालम 'विल्लु' ( फट पड़ना, दरार आ जाना ) 'विल्लल' ( खाली गृह ), 'विल्लु' ( दरार, छिद्र ) रूपों का टी० बरो ने उल्लेख किया है ।

बिल्व ( अमर० २।४।३२ )—बेल, फलविशेष । तमिल—'विला' ( कैथा, कपित्थ ) 'विलवु', मलयालम 'विला' कन्नड़—'बेलवल' तथा तेलुगु 'वेलाग' में इसके रूप देखे जा सकते हैं ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मयूर ( अमर० २।५।३० )—मोर। तमिल 'मन्ने' 'मयिल' तथा मलयालम 'मयिल' में टी० वरो ने इसका मूल बताया है।

मर्कट ( अमर० २।५।३)--बानर। इस शब्द को डा० गुण्डर्ट ने द्रविड़ मूल 'मरो' 'मर' ( वृक्ष ) से सम्बन्धित बताया है।

मल्लिका ( अमर० २।४।६९ )—पुष्पविशेष। तमिल 'मुल्लइ', मलयालम 'मुल्ल' कन्नड़ 'मोल्ले' तथा 'तेलुगु' 'मोल्ल' में इसके रूप मिलते हैं।

मसी (अमर० ३।५।१०)--स्याही। तमिल 'मइ' (कृष्णता, स्याही) 'कण्णमइ' (काजल) तथा कन्नड़ 'मसि' ( धूल, अस्वच्छता, स्याही ) में इसका मूल सुरक्षित है।

महिला ( अमर० २।६।२ )--नारी। तमिल—'मकल' ( पुत्री, नारी, पत्नी ) तथा मलयालम 'मकल' ( पुत्री ) रूप सम्बन्धित हैं।

माला ( अमर० २।६।१३५ )--कण्ठहार। तमिल—'माला', मलयालम, तेलुगु—'माला' कन्नड़-- माले' में इसके मूल सुरक्षित हैं। तमिल में 'मलर' ( पुष्प ) तथा 'मालै' ( कण्ठहार की भाँति धारण करना ) भी सम्बद्ध रूप हैं।

मीन ( अमर० १।१०।१७ )—मत्स्य। इस शब्द का अनुमानित संस्कृत मूल 'मी' ( मिनाति ) चोट करने के अर्थ की क्रिया में हैं। इसके लिए द्रविड़ शब्द है—'मीन' जो कि प्रायः इसकी सभी बोलियों में सुरक्षित है—तमिल 'मीन', कन्नड़ 'मीन' तथा तेलुगु 'मीनु'

संस्कृत की अपेक्षा इस शब्द का अनुमानित द्रविड़ मूल ही अधिक सुन्दर है। इसे 'मीन' ( प्रकाशित होना, चमकना ) से सिद्ध बताया जाता है। इसीलिए सम्भवतः रुक-रुक कर चमकने वाले जुगुनू को यहाँ 'मिन-मिनि' कहते हैं। 'मिन' मूल से ही बना एक संज्ञा शब्द 'मीन' का अर्थ है--'तारा' जो कि केवल तमिल काव्य में ही प्रयुक्त होता है। काल्डवेल का अनुमान है कि यह अधिक सम्भावना सापेक्ष्य है कि संस्कृत बोलने वाले लोगों ने इसे अपनी भाषा में गृहीत किया तथा उसी एक वस्तु को बताने वाले शब्दों के अन्तर्गत स्थान दिया। मालाबार आदि समुद्री तटों के रहने वालों ने अपने दैनिक उपभोग तथा व्यापार की इस वस्तु को उत्तर-पश्चिमी ओर से आया हुई जाति से ग्रहण किया और भाषा में प्रयोग में लाए, यह जरा कम संगत जान पड़ता है।

मुकुट ( अमर० २।६।१०२ )--शिरोभूषण, किरीट। तमिल, मलयालम 'मुकट्टु' ( शीर्षभाग, मस्तक ), तमिल 'मुञ्चि' ( शिर का आभूषण ), मलयालम 'मुकल ( ऊर्ध्व, छत ) तथा कन्नड़, तेलुगु 'मोगड़ु' ( छत का ऊपरी भाग ) आदि रूप द्रष्टव्य हैं।

मुकुल ( अमर० २।४।१६ ,—अर्ध विकसित कली। तमिल, मलयालम--'मुकिल' ( विकसित होना, कली ), तमिल- 'मुकै' ( कली ), तमिल—'मोक्कुल',

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( कली ), कन्नड़—'मुगुल' ( कली, विकसित होना ) तथा 'मोग्गु', 'मोग्गे' ( कली ) प्रभृति रूप सुरक्षित मिलते हैं। किटेल महोदय ने इसे 'मुग' ( पुष्प की भाँति बन्द होना ) से लिया बताया है।

मुक्ता ( अमर० २।९।९३ )—मोती। प्राकृत 'मुत्ता', तमिल 'मुत्तु' 'मुत्तम्' तथा मलयालम, कन्नड़ में 'मुत्तु' रूप मिलते हैं। डा० गुण्डर्ट ने संस्कृत तथा तमिल दोनों शब्दों को 'मुद्' से व्युत्पन्न माना है। तमिल 'मुदल' ( प्रथम ) के आदि का 'मु' या 'मि' 'प्रथम' का द्योतक हैं। इस प्रकार 'मुक्ता' रत्नों में 'प्रथम' ( श्रेष्ठ ) के अर्थ में प्रयुक्त हुआ।

मुरज ( अमर० १।७।५ )--वाद्यविशेष, नगाड़ा, ढोल। तमिल 'मुरशु' ( नगाड़ा, ध्वनि ), 'मुरल' ( भ्रमर की ध्वनि ), कन्नड़ 'मोरे' ( झंकृत होना ), 'तेलुगु मोरग्रु' ( ध्वनि होना या ध्वनि करना ) रूप सुरक्षित हैं।

लाला ( अमर० २।६।६७ )--लार। मलयालम 'नोले', 'नोल' तथा कन्नड़ 'लोले रूप मिलते हैं।

रात्रि ( अमर० १।४।४ )—रात। द्रविड़ मूल 'इर' ( अन्धकार होना, 'इर-उल'-- अन्धकार ) से द्रविड़ में 'इरा', 'इरुं' तथा तेलुगु में 'रे' आदि रूप मिलते हैं।

रूप ( अमर० १।५।७ )--यह संस्कृत शब्द तमिल में 'उरुवम्, उरुवु' मिलता है, जो कि डा० गुण्डर्ट ने तद्भव माना है। यह संस्कृत 'रूप' को निश्चिततः द्रविड़ 'उरुप्पु' से गृहीत मानते हैं। 'उरुवु' संस्कृत 'रूप' का तद्भव हो सकता है।

वलक्ष ( अमर० १।५।१३ )--श्वेत। इसका अनुमानित मूल 'वल' ( जाना ) है। 'यह शब्द काल्डवेल के अनुसार द्रविड़ 'वेल' ( श्वेत ) से गृहीत माना जा सकता है। इससे सम्बन्धित द्रविड़ शब्द इस प्रकार मिलते हैं—'वेलि' ( अन्तरिक्ष, स्वच्छ वायु ) 'वेल्लि' ( रजत ) तथा 'वेलिच्चम्' ( प्रकाश ) इत्यादि।

वलय ( अमर० २।६।१०७ )—कड़ा आदि हस्तभूषण। तमिल 'वलै', कन्नड़—'वेले' ( कड़ा ), 'वलसु' ( गोला बनाना, गोलाकार होना ) आदि रूप मिलते हैं। काल्डवेल के अनुसार 'द्रविड़ भाषाओं ने यद्यपि वैसे ही या कुछ परिवर्तनों के साथ संस्कृत संज्ञा शब्दों को ग्रहण किया है, परन्तु फिर भी वह क्रियापद जिनसे वे संज्ञापद बने हैं, द्रविड़ भाषाओं से ही संस्कृत ने ग्रहण किए।' इसका आधारभूत द्रविड़मूल 'वलेइ' ( मुड़ना, झुकना, टेढ़ा होना या घेरा बनाना ) है। संस्कृत मूल की अपेक्षा इसके प्रयोग अधिक दीखते हैं। संज्ञा के रूप में, जैसे, तमिल में 'येलि-वलइ' ( चूहे का बिल ) मिलता है। संस्कृत 'वलयम्' के प्रयोग की अपेक्षा अपने इसी मूल 'वलेइ' से बना शब्द 'वलैयल' ( हस्तभूषण ) ही अधिक प्रयोग में आता है। अतएव काल्डवेल का यह निष्कर्ष कि द्रविड़ क्रिया रूप संस्कृत से

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

निश्चिततः गृहीत नहीं है, वरन् संस्कृत क्रिया रूप सम्भवतः द्रविड़ से गृहीत हो सकता है, संगत प्रतीत होता है।

वल्ली ( अमर० २।४।६ )—लता। तमिल, मलयालम 'वल्लि', कन्नड़ 'वल्ली' तथा तेलुगु 'वल्लि' रूप सुरक्षित मिलते हैं।

शठ ( अमर० ३।१।४६ )—धूर्त, खल। कन्नड़ 'कोट्ट', 'सोट्ट' ( धूर्तता, दुष्टता ), 'सटि', सेटे, सेडे' ( धूर्त, दुष्ट हो जाना ) तथा तेलुगु 'कोट्ट' ( धूर्तता, कुटिलता ) रूप मिलते हैं।

शव ( अमर० २।८।११८ )—मृत देह। यह शब्द संस्कृत मूल 'शव' ( जाना ) से गृहीत कहा जाता है। संस्कृत 'शी' ( सायति—नष्ट होना ) तथा 'शा' इससे सम्बन्धित हैं। परन्तु द्रविड़ क्रिया रूप 'शा' ( मृत्यु को प्राप्त होना ) संस्कृत मूल से कहीं अधिक संगत है। उदाहरण के लिए तमिल 'शा' ( मरना ) 'कावु' ( मृत्यु ), कन्नड़ 'सा' ( मरना ), 'सावु' ( मृत्यु, मृत देह ) तथा तेलुगु 'काक्कु' ( मरना ), 'कावु' ( मृत्यु ) इत्यादि रूप मिलते हैं।

शूर्प ( अमर० २।९।२६ )—सूप। कन्नड़ 'तूरु' ( फटकना) 'तूरुविके' ( फटकने की क्रिया, धान्य में से तुषादि अलग हटाने की क्रिया ), तेलुगु 'तूरपिड़ि' ( फटकने की क्रिया ), 'तूरेपेत्तु' ( फटकना ) आदि रूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जिसको इस शब्द के मूल में रक्खा जा सकता है।

सायम् ( अमर० १।४।३ )—सन्ध्या। अनुमानित मूल 'सो' ( नष्ट करना, समाप्त करना ) से यह शब्द गृहीत है। काल्डवेल ने इसे शुद्ध द्रविड़ मूल से गृहीत माना है। उनके अनुसार तमिल, मलयालम के 'साय' ( झुकना ) ही इस शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ का आधार है, क्योंकि सायंकाल में सूर्य पश्चिम की ओर झुकता-सा प्रतीत होता है।

हिन्ताल ( अमरकोष २।४।१६९ )—वृक्षविशेष। तमिल 'ईन्तु' 'ईत्कु', मलयालम 'ईत्त', 'ईत्तल', कन्नड़ 'ईकल', ईकिल' तथा तेलुगु 'ईदु' 'ईदादु' रूप सुरक्षित मिलते हैं।

## आस्त्रिक भाषा से गृहीत शब्द

भारतीय आर्य भाषा संस्कृत पर प्रभाव रखने वाला दूसरा भाषा-परिवार है—'आस्त्रिक' भाषा-परिवार। इसके बोलने वालों को आस्त्रिक कहा जा सकता है। आर्य उन्हें 'निषाद' नाम से जानते थे। ये दक्षिणदेशीय या दक्षिण एशियाई उपजातियाँ सारे उत्तरी भारत में पंजाब तक तथा मध्य भारत में फैल गयीं और दक्षिण भारत में भी प्रविष्ट हो गईं। ये आस्त्रिक जन पहले द्रविड़ों के सम्पर्क में आए और अनन्तर आर्यों के। इनकी भाषाओं में मुख्य हैं—कोल तथा मुण्डा। भारतीय आर्य भाषा

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पर इनके प्रभाव के विषय में टी० बरो ने कहा है[१]-- "पूर्व भारत में विभिन्न कारणों से महत्त्वपूर्ण भाषा-परिवार प्राप्त होता हैं। इनमें मुण्डा या कोलारी भाषाएँ यद्यपि साहित्यिक भाषाएँ नहीं बन सकीं हैं, तथापि इनका वैज्ञानिक महत्त्व दो प्रकार से हैं—प्रथम, इनसे भारतीय आर्य भाषाएँ प्रभावित थीं और द्वितीय, पूर्व के भारत के मोन्-खमेर तथा अन्य भाषाओं के सम्पर्क में यह रहीं। मुण्डा परिवार के अन्तर्गत 'सवर' गदब तथा दो अन्य बोलियाँ एक विशेष वर्ग बनाती हैं।"

आर्य भाषा पर इनके प्रभाव का उल्लेख करते हुए डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट किए हैं[२]—

"भारत की आस्त्रिकभाषी उपजातियाँ, दक्षिण एशियाई के विभाग कोल, खासी तथा मोन्-खमेर आदि, एकाधिक समूहों से आई प्रतीत होती हैं। वे संस्कृति के प्रस्तर युग में थीं और सम्भवतः भारत में आने के पश्चात् उन्होंने ताँबे और लोहे का उपयोग करना सीखा। उन्होंने एक आदिम प्रकार की कृषि प्रणाली विकसित की। उन्होंने ही पहाड़ों के ऊपर की समतल भूमि पर तथा मैदानों में चावल की खेती का प्रारम्भ किया। उनकी भाषा से आए हुए नामों से सूचित होता है कि उन्होंने ही नारियल (नारिकेल), केला ( कदली ), पान ( ताम्बूल ), सुपारी ( गुवाक ) संभवतः हल्दी ( हरिद्रा ), अदरख ( शृंगवेर ) तथा कुछ शाकों— बैंगन ( पातिगण ) और लौकी अथवा काशीफल ( अलाबु )—की खेती का आरम्भ और विकास किया।"

इस प्रकार दक्षिणदेशीय बोलियों में, भारत में आर्य भाषा के रूपान्तर की एक पृष्ठभूमि बन गई। आर्य ध्वनितत्त्व, वाक्य-विन्यास तथा मुहावरों पर तो सूक्ष्म किन्तु गहरा दक्षिणदेशीय प्रभाव पड़ा ही, इसके अतिरिक्त ऊपर उल्लिखित सभी ऐहिक संस्कृति-विषयक बातों में भी आर्य दक्षिणदेशियों ( या निषादों ) के ऋणी थे, इस बात के प्रमाण मौजूद हैं।

अमरकोष में आए कतिपय 'आस्त्रिक' ( या आस्त्रो एशियाई ) शब्दों का उल्लेख करना समीचीन ही होगा।

अंगना ( अमर० २।६।३ ) नारी। 'अङ्' उपसर्ग के साथ यह शब्द खमेर 'कन', 'मोन्' 'क्ना' इत्यादि रूपों में तथा 'अ' उपसर्ग के साथ बहनर 'अकन' रूप में और 'स्न' उपसर्ग के साथ निकोबार में 'स्नकाना' रूप में सुरक्षित मिलता है।

१. 'दि संस्कृत लैंग्वेज—' नॉन आर्यन इन्फ्लुएन्स आन 'संस्कृत', अध्याय ८, पृ० ३७५।
२. भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी, राजकमल प्रकाशन, बम्बई, १९५४ 'भारतीय आर्य की अनार्य पृष्ठभूमि का तथा भारतीय आर्य भाषा का प्राचीन इतिहास' खण्ड १, अध्याय २, पृ० ३८।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अलाबू ( अमर० २।४।१५६ ) लौकी या कद्दू। मलय 'लवु', 'लबो' खमर 'त्वो' तथा कटक 'लवु' इत्यादि रूप उद्धृत किए जाते हैं।

उन्दुरु ( अमर० २।५।१२ )—मूषिक। 'उन' उपसर्ग के साथ यह शब्द है। खमेर में 'कान्दौर, सवर', 'गुन्नुर' तथा 'ओन्द्री' रूप प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

कदली ( अमर० २।४।११३, २।५।९ )—केला। सकइ 'तेलुइ', 'केलुइ', 'निकोबर 'तलुइ', खमेर—'तुततलोइ', पलऔंग—'विलोअइ' तथा सवर 'किन-तेन' में इसके आस्त्रिक रूप सुरक्षित पाए गए हैं।

जम्बाल ( अमर० १।१०।९ )—कीचड़। टी० बरो ने सन्तल 'जोबो' आदि ( कूड़ा, काई ) खरिया जोभि ( काईयुक्त भूमि ), जम्बिल ( भींगी हुई भूमि ), हो 'जोवे' ( कीचड़ ) तथा सवर में 'जोभा' रूप आस्त्रिक मूल के बताए हैं।

मरीच ( अमर० २।९।३६ )—मिर्च। शबर 'मरिद-चा' रूप इसके आस्त्रिक होने का आधार टी० बरो ने बताया है। उनके अनुसार 'मिद' रूप में 'र' का पूर्ण आगम होने पर मरिद ऐसा रूप मिला। मूल 'मिद्' को हम तमिल 'मिलकु' ( मिर्च ) में सुरक्षित पाते हैं।

मातंग ( अमर० ३।३।२१ )—हस्ति। टी० बरो ने इस शब्द को भी आस्त्रो एशियाई तथा भारत के बाहर से गृहीत बताया है। इसको वह मलय देश का बताते हैं।

लवंग ( अमर० २।६।१२५ )—लौंग। टी० बरो ने इसे भी भारत के बाहर से आया प्रमाणित किया है—लवंग की लता तथा यह शब्द उनके अनुसार इण्डोनेशिया से आयातित जान पड़ता है।

लांगूल ( अमर० २।८।५० )—हल। पलऔंग 'नंगल', भिन्न उपसर्ग के साथ खमेर 'अङ्कल' तथा मलय में 'तेंगल' रूप मिलते हैं। टी० बरो ने इस शब्द को इस प्रकार स्पष्ट किया है कि मुण्डा भाषाओं के उत्तरी वर्ग का मुख्य लक्षण 'क' का 'ह' में परिवर्तित होना इस शब्द के संस्कृत शब्द 'हल' में बदल जाने को उचित ठहराता है।

सर्षप ( अमर० २।९।१७ )—सरसों। प्राकृत 'सासव', मलय सेसवि' इत्यादि, प्राचीन तमिल 'अइयवी' रूप दृष्टान्त हैं। टी० बरो ने इसे आस्त्रो एशियाटिक से एक स्वतंत्र गृहीत शब्द कहा है।

इसके अतिरिक्त अमरकोष में दोला ( अमर० २।८।५३ ), डिम्बः ( अमर० २।९।४० ), सारंग ( अमर० २।५।१७ ) तथा कुरंग ( अमर० २।१।८ ) इत्यादि शब्द भी 'आस्त्रोएशियाई' शब्दों से गृहीत हैं।

## प्राकृतों से आगत शब्द

संस्कृत जब बोलचाल की भाषा नहीं भी रही तब भी यह शिष्ट-समुदाय के विचार-विनिमय की भाषा के रूप में बनी रही और इसने एक जीवित भाषा के स्वभाव के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अनुरूप समकालीन प्राकृतों से भी आवश्यकता पड़ने पर शब्द लिए। स्वयं प्राकृत में ये शब्द मूलतः संस्कृत से आये होंगे, परन्तु वर्ण-परिवर्तन से प्राकृत में इनका जो रूप बना, वह लोक में अधिक प्रचलित होने के कारण संस्कृत में अपने मूल रूप के साथ-साथ इस परिवर्तित प्राकृत रूप में भी ग्रहण किया गया। इसके अतिरिक्त कुछ शब्दों में यह भी हुआ है कि संस्कृत ने अपने मूलरूप को छोड़कर केवल प्राकृत वाला रूप ही ग्रहण कर लिया है। अमरकोष में ऐसे शब्दों के उदाहरण निम्नलिखित हैं--

अच्छ–भल्ल—'ऋक्षाच्छभल्लभल्लूकाः' ( अमर० १।१०।१४ ) इसका मूल संस्कृत रूप है ऋक्ष-भद्र। 'ऋक्ष' के साथ 'भद्र' शब्द का प्रयोग अमंगल परिहार के हेतु किया गया होगा। संस्कृत 'ऋक्ष' में 'ऋ' के स्थान में 'अ' तथा 'क्ष' के स्थान में 'छ' होकरप्राकृत में 'अच्छ' बना तथा संस्कृत 'भद्र' में पहले 'र' के स्थान में ल' तथा तत्पश्चात् 'द्ल्' का समीकरण होकर 'भल्ल' रूप बना। इस प्रकार संस्कृत से बना यह प्राकृत रूप संस्कृत में पुनः गृहीत हुआ।

अत्तिका—'अत्तिका भगिनी ज्येष्ठा' (अमर० २।६।२९ )। इस शब्द के स्वरूप से प्रतीत होता है कि यह प्राकृत से संस्कृत में गृहीत हुआ है। प्राकृत में माता के लिए 'अत्ता' शब्द का प्रयोग हुआ है जिसका संस्कृत रूप 'आप्ता' अर्थात् पूज्या हो सकता है। ज्येष्ठ भगिनी भी मातातुल्य होती है, इसलिए संभवतः 'अत्ता' शब्द में ही 'इका' प्रत्यय जोड़कर संस्कृत में ग्रहण कर लिया।

आवुत्त—'भगिनीपतिरावुत्तः' ( अमर० १।७।१२ )। इस शब्द का प्रयोग भी प्राकृत में इसी अर्थ में मिलता है और इसके वर्ण-विन्यास से यह प्राकृत का ही शब्द प्रतीत होता है। जिसकी व्युत्पत्ति सम्भवतः संस्कृत 'आवृत्त' अर्थात् 'स्नेह सम्बन्ध से भली प्रकार से घिरा हुआ' रहा होगा।

कच्छप--'कूर्मे कमठकच्छपौ' ( अमर० १।१०।२१ ), इस अर्थ में प्राचीन संस्कृत शब्द 'कश्यप' है जो आवेस्ता के 'कस्यपो' शब्द से तुलनीय है। सम्भवतः इसका बोलचाल की भाषा में कोई कत्स्यप* रूप भी रहा होगा, जिसका प्राकृत में कच्छप रूप बना जो संस्कृत में भी गृहीत हुआ। प्राकृत में 'त्य' का 'च्छ' में परिवर्तन हुआ है। जैसे, मस्त्य—मच्छ।

क्षुल्लक—'स्तोकाल्पक्षुल्लकाः' ( अमर० ३।१।६१ )। 'विहीनोऽपसदो जाल्मः क्षुल्लकश्चेतरश्च सः' ( अमर० २।१०।१६ )। क्षुल्लक का मूल संस्कृत रूप होगा 'क्षुद्रक'। जैसे प्राकृत में भद्रक से 'भल्ल' बना वैसे ही क्षुद्र से 'क्षुल्ल' बना और इसमें स्वार्थ में 'क' प्रत्यय लगाकर संस्कृत में इसे हीनार्थकवाचक शब्द के रूप में ग्रहण कर लिया।

खेला—'क्रीड़ा खेला च कूर्दनम्' ( अमर० १।७।३३ )। खेलने के अर्थ में संस्कृत में 'खेट' शब्द का अनुमान किया जा सकता है जो संस्कृत के 'आखेट' शब्द में विद्य-

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

मान है। इस शब्द में 'ट' का 'ड' तथा तत्पश्चात् 'ल' में परिवर्तन होकर प्राकृत रूप 'खेल' बना होगा, जिसका कीड़ा के सादृश्य पर 'खेला' रूप बनाकर संस्कृत में ग्रहण किया।

इसी प्रकार के अनेक शब्द घट्ट, कुट्टनी, तोटक, देहली, दोहद, धम्मिल्ल इत्यादि प्राकृत से संस्कृत में गृहीत प्रतीत होते हैं।

## ईरानीसे गृहीत शब्द

ईरान का भारतवर्ष के साथ अति प्राचीन काल से ही घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इसके फलस्वरूप संस्कृत से ईरानी में तथा ईरानी से संस्कृत में शब्द लिए जाते रहे हैं। अमरकोष में ईरानी से गृहीत निम्नलिखित शब्द द्रष्टव्य हैं—

आयतन—'चैत्यमायतनं तुल्ये' (अमर० २।२।७—चैत्य के अर्थ में आयतन शब्द की व्युत्पत्ति स्वयं संस्कृत से स्पष्ट नहीं होती। प्राचीन फारसी अभिलेखों में पूजागृह के अर्थ में 'आयदन' शब्द आया है। प्राचीन फारसी में 'संस्कृत' 'ज' के स्थान में 'द' मिलता है। इस प्रकार प्राचीन फारसी का 'आयदन'—संस्कृत 'आयजन' जिसका अर्थ होगा 'यजन करने का स्थान'। अतः 'आयतन' शब्द संस्कृत में ईरानी से आगत प्रतीत होता है। संस्कृत ने ईरानी के 'द' के स्थान पर 'त' परिवर्तन करके इस शब्द को ग्रहण किया। चैत्य के साथ इस शब्द की स्थिति कुछ ऐसा आभास देती है कि बौद्ध भिक्षुओं के साथ यह शब्द ईरानी में आया होगा।

कर्ष—'ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री' (अमर० २।९।८६)—सोलह माशे के परिमाण को द्योतित करने वाला यह शब्द प्राचीन ईरानी 'कर्श' का संस्कृत रूप है।[1]

कार्षापण—'कार्षापणः कार्षिकः स्यात्' (अमर० २।९।८८)—कर्ष के तौल के सिक्के के लिए कार्षापण और कार्षिक शब्द भी प्राचीन ईरानी शब्द 'कर्श' से बने हैं।

गंजा—'गंजा तु मदिरागृहम् (अमर० २।२।८)—प्राचीन फारसी में गंजा शब्द खजाने अथवा मदिरा के खजाने अर्थात् मदिरागृह के अर्थ में मिलता है और वहीं से यह संस्कृत में लिया गया।[2]

चषक—'चषकोऽस्त्री पानपात्रम्' (अमर० २।१०।४३)—यह शब्द मूलतः आर्मनीय भाषा का है, जहाँ इसका रूप 'चशक' है। वहाँ से सम्भवतः ईरानी के माध्यम से यह शब्द संस्कृत में लिया गया होगा।[3]

मिहिर—सूर्य के पर्यायवाचियों में अमरकोष में मिहिर शब्द पठित है। इसके साथ ही यहाँ पर मित्र शब्द भी विद्यमान है। वस्तुतः प्राचीन ईरानी में संस्कृत मित्र शब्द

---

१. द्रष्टव्य, जैकसन जे० ए० ओ० एस० २०, ५४ एफ०।

२. कैमेरान, पर्सेपोलिस ट्रेजरी टैब्लेट्स, शिकागो १९४८, पृ० ४२।

३. ए कन्साइज एटीमोलोजिकल संस्कृत डिक्शनरी—मैनफ्रेड मेहोकर, पृ० ३८०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का 'मिथ्र' रूप मिलता है जो प्राचीन फारसी और पहलवी में ध्वनि परिवर्तन द्वारा 'मिह्' अथवा 'मिह्र' रूप में स्थित हुआ। इस रूप में उच्चारण सौकर्य के लिए बीच में 'इ' शब्द का सन्निवेश कर संस्कृत ने 'मिहिर' शब्द ग्रहण किया।

## ग्रीक भाषा से गृहीत शब्द

इसके अतिरिक्त ग्रीक भाषा के भी कुछ शब्द संस्कृत में आए हैं जो अमरकोष में केवल दो ही मिलते हैं:--

क्रमेलक--'उष्ट्रे क्रमेलकमयमहांगाः' (अमर० २।९।७५)--यह शब्द मूलतः हिन्दू भाषा में 'गामाल्' के रूप में विद्यमान था, जहाँ से यह ग्रीक भाषा में कमेलोस के रूप में गृहीत हुआ और तब यह संस्कृत में क्रमेलक के रूप में आया।[1]

दीनार--सिक्के का वाचक यह शब्द मूलतः लैटिन के देनारूस शब्द का संस्कृत रूप है, जो ग्रीक और ईरानी से होता हुआ संस्कृत में आया।[2]

इनके अतिरिक्त विदेशों से आगत वस्तुओं के नामों के रूप में उस देश का नाम भी संस्कृत में आ गया है। ऐसे शब्दों में से अमरकोष में दो शब्द द्रष्टव्य हैं--चीनः और तुरुष्कः। चीनः शब्द हरिण के एक प्रकार का नाम है जो सम्भवतः चीन में प्राप्त होने के कारण उस देश के नाम से अभिहित हुआ। इसी प्रकार एक प्रकार की सुगन्ध के लिए तुरुष्क शब्द अमरकोष में मिलता है। यह सुगन्धित पदार्थ भी तुर्की से प्राप्त होने के कारण इस नाम से अभिहित किया गया होगा।

१. वही, पृ० २७७।

२. द्रष्टव्य, ए कन्साइज एटीमॉलोजिकल संस्कृत डिक्शनरी, मैनफ्रेड मेहोफर, पृ० ४६।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## सप्तम अध्याय

# ध्वनि-परिवर्तन

संसार की सभी वस्तुओं के समान, भाषा भी समय की गति के साथ परिवर्तित होती है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण भारतवर्ष में भारतीय आर्य भाषा प्रस्तुत करती है, जिसका इतिहास ईसापूर्व दो हजार वर्ष से लेकर आज तक अविच्छिन्न रूप से विद्यमान है।

भाषा में परिवर्तन की गति पर विचार करने पर विदित होता है कि भाषा के विश्लेषण की सुविधा के लिए उसकी जितनी भी इकाइयाँ निर्धारित कर ली जायँ, उन सभी के काल-क्रम में परिवर्तन होता रहा है। इस प्रकार भाषा की ध्वनियों में, रूप-प्रक्रिया में, शब्द-राशि में, वाक्यविन्यास में और शब्दों के अर्थ में परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है।

संस्कृत भाषा का रूप भी अपने इतिहास के सुदीर्घ काल में किसी-न-किसी रूप में परिवर्तित होता रहा है। वैदिक तथा लौकिक भाषा में तो परिवर्तन स्पष्ट लक्षित होता ही है, परन्तु स्वयं लौकिक संस्कृत भी समय के साथ कुछ-न-कुछ बदलती रही है। इसके शब्दों के वर्ण-विन्यास में, शब्द-राशि में, शब्दों के अर्थ में, लिंग आदि व्याकरणात्मक धाराओं में परिवर्तन अभिलक्षित होता है। अमरकोष में संकलित शब्द-राशि के माध्यम से संस्कृत भाषा में घटित हुए जिस प्रकार के परिवर्तनों पर प्रकाश पड़ सकता है, उन पर हमें विचार करना है। इस दिशा में सबसे पहले इस अध्याय में ध्वनि-परिवर्तन पर विचार किया जा रहा है।

जहाँ तक ध्वनि-ग्रामों का सम्बन्ध है, वैदिक तथा लौकिक संस्कृत में परिवर्तन कम हैं। वैदिक 'अ' उच्चारण में विवृत था जो संस्कृत में संवृत हो गया और इसके फलस्वरूप वैदिक सन्ध्यक्षर 'अइ', 'अउ' लौकिक भाषा में 'ए', 'ओ' हो गये, जिन्हें समानाक्षर कहना ही उचित होगा। इनके अतिरिक्त और कोई विशेष परिवर्तन स्वरों या व्यंजनों में अभिलक्षित नहीं होता, सिवाय इसके कि इनके उच्चारण स्थानों में कुछ भेद हो गया हो।

वैदिक भाषा में स्वरों में विवृति सह्य थी, अर्थात् एक स्वर दूसरे के तत्काल बाद आ सकता था, जैसे कि 'प्रउग', 'तितउ' इत्यादि में। लौकिक संस्कृत में यह विवृति सह्य नहीं है। ऐसी स्थिति में स्वरों में सन्धि हो जाती है। परन्तु अमरकोष में विवृति

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

का एक उदाहरण सुरक्षित है। 'िततउ' (चालनी िततउः पुमान्' अमर० २-९-२६) शब्द में, जो वैदिक काल से चला आता शब्द है।[१]

वैदिक भाषा के समय से ही अनेक विभाषाओं की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। इन विभाषाओं में कुछ ध्वनि-परिवर्तन अभिलक्षित होते हैं। इन परिवर्तनों के कारण अनेक शब्दों के वर्णात्मक भेद से दो या इससे भी अधिक रूप विभाषाओं में आ गये होंगे। परिनिष्ठित भाषा, यद्यपि अनेक विभाषाओं में से किसी एक विभाषा पर आधृत होती है, परन्तु अन्य विभाषाओं से भी वह शब्द-रूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार परिनिष्ठित भाषा में अनेक शब्दों में वर्णात्मक द्विरूपता लक्षित होती है।

## शब्दों की वर्णात्मक द्विरूपता

अमरकोष में अनेक ऐसे शब्द विद्यमान हैं, जिनके वर्ण-विन्यास में द्विरूपता लक्षित होती है। भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से इनका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

द्विरूपात्मक शब्दों में अधिकांश ऐसे हैं, जिनके वर्ण-विन्यास में एक रूप में ह्रस्व-स्वर है तो दूसरे में दीर्घ। ऐसे उदाहरण निम्नलिखित हैं—

**(१) 'अ' ~ 'आ'**

अमावस्या-अमावास्या, अवग्रह-अवग्राह, उच्छ्रय-उच्छ्राय, उपयम-उपयाम, कर्मकर-कर्मकार, क्वण-क्वाण, निक्वण-निक्वाण, निपठ-निपाठ, निनद-निनाद, निस्वन-निस्वान, प्रग्रह-प्रग्राह, प्रघण-प्रघाण, प्रतिग्रह-प्रतिग्राह, शश्वत्-शाश्वत्, संग्रह-संग्राह, संयम-संयाम, समुदय-समुदाय, स्थविर-स्थाविर, शैवल-शैवाल।

**(२) 'इ' ~ 'ई'**

गाण्डिव-गाण्डीव, गिरिश-गिरीश, परिभव-परीभव, विविध-वीविध।

**(३) 'उ' ~ 'ऊ'**

दिधिषु-दिधिषू, पुरुष-पूरुष, प्रत्युष-प्रत्यूष।

**(४) 'ए' ~ 'ऐ'**

शेवल-शैवल।

इनमें से कुछ शब्द ऐसे हैं, जिनमें शब्द के दोनों रूपों में अर्थभेद भी है। ये शब्द हैं—

**कर्मकर-कर्मकार**—'भरण्यभुक्कर्मकरः कर्मकारस्तु तत्क्रियः' (अमर० ३।१।१६)। मजदूरी पर काम करने वालों को 'कर्मकार' कहते हैं।

**प्रतिग्रह-प्रतिग्राह**—'सैन्यपृष्ठे प्रतिग्रहः' (अमर० २।८।७९) तथा 'प्रतिग्राहः

---

१. 'सक्तुमिव **िततउना** पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत'

—ऋग्वेदसंहिता १०.७१.२

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

पतद्ग्रहः' ( अमर० २।६।१३९ )। सेना के पृष्ठभाग को 'प्रतिग्रह' और पीकदान को 'प्रतिग्राह' संज्ञा दी गयी है।

**शश्वत्-शाश्वत**--'पुनः सहार्थयोः शश्वत्' (अमर० ३।३।२४४), 'मुहुः पुनः पुनः शश्वत्' ( अमर० ३।४।१ ), 'अभीक्ष्णं शश्वदनारते' ( अमर० ३।४।४१ ) तथा 'शाश्वतस्तु ध्रुवो नित्यसदातनसनातनाः' ( अमर० ३।१।७२ )। 'पुनः, मुहुः, अनारत के अर्थ में शश्वत् तथा ध्रुव, नित्य के अर्थ में शाश्वत का प्रयोग गृहीत है।

**संग्रह-संग्राह**--'समाहृतिस्तु संग्रहः' ( अमर० १।६।६ ), तथा 'फलकोऽस्त्री फलं चर्म सग्राहो मुष्टिरस्ययः' ( अमर० २।८।९० )। एकत्रीकरण के अर्थ में संग्रह तथा 'ढाल की मूठ' के अर्थ में संग्राह' रूप ग्रहण किया गया है।

अर्थ-भेद के कारण इन शब्दों की व्युत्पत्ति भी भिन्न है। उदाहरणार्थ, 'करोतीति करः, कर्मस्य करः इति कर्मकरः' तथा 'कर्म करोतीति कर्मकारः'। पाणिनि की प्रक्रिया के अनुसार 'कृ धातु' में कर्त्ता के अर्थ में 'अच्' प्रत्यय द्वारा 'करः' पद निष्पन्न होता है।[1] दूसरी ओर कर्ममात्र के उपपद होने पर धातु से अण् प्रत्यय होता है।[2] अतः 'कर्म करोतीति' इस व्युत्पत्ति में 'कृ धातु से 'अण्' प्रत्यय करने पर तथा णित् प्रत्यय होने के कारण धातु के अन्त्य अच् की वृद्धि होने पर 'कर्मकारः' रूप वनता है।

इनके अतिरिक्त अन्य शब्द एक ही अर्थ में पठित हैं और पाणिनि के अनुसार इनमें स्वर-वृद्धि निपातित है। उदाहरणार्थ, 'अमावस्या' और 'अमावास्या' शब्द द्रष्टव्य हैं। 'सह वसतोऽस्मिन्काले सूर्याचन्द्रमसाविति अमावास्या' अर्थात् 'सह' के अर्थ में 'अमा' अव्यय के साथ वस् धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय होकर 'अमावास्या' रूप बनता है। परन्तु 'ण्यत्' प्रत्यय का विधान करने के साथ-साथ पाणिनि ने विकल्प से स्वर-वृद्धि का अभाव भी निपातित किया है[3], जिससे 'अमावस्या' रूप भी निष्पन्न होता है।

एक ही शब्द में ह्रस्व-दीर्घ के भेद से द्विरूपता के उदाहरण प्राचीन भारतीय आर्य-भाषा के प्राचीनतम निदर्शन ऋग्वेदसंहिता में भी मिल जाते हैं। जैसे--'सहस्रशीर्षा-पुरुषः'[4] परन्तु 'अतो ज्यायांश्च पूरुषः'।[5] इसी प्रकार कहीं-कहीं हमें भाषा के प्राचीन-तर रूप में जहाँ दीर्घ-स्वर मिलता है, उसके विपरीत परवर्ती भाषा में ह्रस्व-स्वर वाला रूप ही स्थिर हो गया है, जैसे—तैत्तिरीयारण्यक के सप्तम अध्याय के आरम्भ में 'शीक्षां व्याख्यास्यामः' वाक्य है, जिसमें दीर्घ 'ई' वाला रूप 'शीक्षा' है जो बाद में

---

१. नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः' --अष्टाध्यायी। ( ३।१।१३४ )
२. कर्मण्यण्' —अष्टाध्यायी। ( ३।२।१ )
३. 'अमावस्यदन्यतरस्याम्' – अष्टाध्यायी। ( ३।१।१२२ )
४. ऋग्वेदसंहिता १०.९०.१।
५. १०.९०.३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'शिक्षा' के रूप में भाषा में प्रतिष्ठित हुआ। इसी प्रकार ऋग्वेदसंहिता में ही 'सौम्य'[1] तथा 'सोम्य'[2] दोनों रूप मिल जाते हैं।

इससे विदित होता है कि ह्रस्व-दीर्घ स्वर-व्यत्यय की प्रवृत्ति भाषा में आरम्भ से ही रही है और इसके कारण द्विरूप शब्द भाषा में सदा से विद्यमान रहे हैं। अनुमान किया जा सकता है कि यह प्रवृत्ति विभाषीय रही होगी। किसी विभाषा में ह्रस्व-स्वर वाला रूप रहा होगा और किसी अन्य विभाषा में दीर्घ वाला रूप। परिनिष्ठित भाषा ने अधिकांशतः इन दोनों ही रूपों को ग्रहण कर लिया तथा कहीं-कहीं, जैसे 'शिक्षा' शब्द के प्रसंग में, केवल एक ही रूप परिनिष्ठित भाषा में प्रतिष्ठा पा सका। अतः अमरकोष में विद्यमान ह्रस्व-दीर्घ-स्वर के व्यत्यय से बने द्विरूप शब्दों की स्थिति परिनिष्ठित भाषा संस्कृत की इसी प्रवृत्ति की ओर इंगित करती दिखायी देती है।

सन्ध्यक्षर 'ए', 'ऐ', 'ओ', 'औ' के प्रसंग में तो परवर्ती काल में दीर्घरूप 'ऐ' 'औ' के स्थान में सर्वत्र 'ए', 'ओ' का प्रयोग प्रतिष्ठित हो गया, जैसा मध्यकालीन भारतीय आर्य-भाषा में दिखायी देता है। उदाहरणार्थ, संस्कृत ऐरावत पालि में एरावत तथा संस्कृत औषधि पालि में ओसधि के रूप में ही मिलते हैं। ह्रस्व-दीर्घ स्वरों के प्रति स्वयं संस्कृत की इस ढुलमुल प्रवृत्ति ने मध्यभारतीय आर्य भाषा की दीर्घ सन्ध्यक्षरों के स्थान में ह्रस्व सन्ध्यक्षरों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति को प्रेरणा और बल प्रदान किया होगा।

ह्रस्व-दीर्घ स्वरों के व्यत्यय से उत्पन्न द्विरूपता के अतिरिक्त अन्य ध्वन्यात्मक कारणों से भी अमरकोष में अनेक शब्दों में वर्णात्मक द्विरूपता प्राप्त होती है, जिन्हें नीचे वर्गीकृत किया जा रहा है--

**( १ ) व्यंजन-विपर्यस्त द्विरूप**

शब्द में एक व्यंजन के स्थान पर दूसरा व्यंजन प्रयोग कर शब्द के दो रूप अमरकोष में निम्नलिखित व्यंजन-विपर्याय से प्राप्त हुए हैं—

( अ ) **द्—ज्**--इसका एक उदाहरण अमरकोष में 'दम्पती-जम्पती' शब्द हैं 'दम्पती जम्पती जायापती भार्यापती च तौ' ( अमर० २।६।३८ )। इनमें से 'दम्पती' शब्द सम्भवतः 'दमपती' में 'म' के 'अ' का लोप कर बना होगा। ऋग्वेदसंहिता में 'दम' शब्द 'गृह' के अर्थ में प्रयुक्त मिलता है, जैसे—'राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे' ( १. १. ८ )। परन्तु 'जम्पती' शब्द में 'द्' के स्थान में 'ज्' कैसे हो गया, यह एक समस्या है। परवर्ती भाषा में भी 'द्' का 'ज्' तभी हुआ है जब 'द्' के बाद 'य्' हो, जैसे संस्कृत 'अद्य' के स्थान

१. ऋग्वेदसहिता ८.५९.४।
२. ,, ८.५९.१।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

में पालि में 'अज्ज' हो गया। यहाँ ऐसा नहीं है और न ही 'जम' जैसा शब्द ही 'भार्या या गृह' के अर्थ में मिलता है, जिससे इस शब्द की 'दम्पती' के समान व्युत्पत्ति हुई हो। अतः यह ध्वनि-परिवर्तन भाषा की स्वाभाविक प्रवृत्ति को द्योतित नहीं करता, अपितु प्रतीत होता है कि इस परिवर्तन का कारण सादृश्य रहा होगा। 'जनि', 'स्त्री', 'जाया' 'पत्नी', 'जामि' 'सम्बन्धी' जैसे शब्दों में आदि 'ज' के सादृश्य से 'जम्पती' शब्द बनने का अनुमान किया जा सकता है।

**(आ) क् ~ ग्**—इस वर्ण-विपर्यास के द्वारा शब्द की द्विरूपता का अमरकोष में एक उदाहरण है 'कन्दुक' – 'गेन्दुक' — 'गेन्दुकः कन्दुकः' – '( अमर० २।६। १३८)। क् का ग् में परिवर्तन अर्थात् सघोषीकरण मध्यभारतीय आर्यभाषा के ध्वनि-परिवर्तन की प्रवृत्तियों में से एक है, जैसे—संस्कृत 'शाकल' का पालि में 'सागल' रूप द्रष्टव्य है। इसी प्रकार पद के आद्यक्षर में विद्यमान 'अ' का 'ए' में परिवर्तन भी पालि के अनेक शब्दों में मिलता है, जैसे—संस्कृत 'फल्गु' का पालि-रूप फेग्गु' या 'संस्कृत शय्या' का पालि-रूप 'सेय्या'। अतः प्रतीत होता है कि संस्कृत कन्दकु का मध्यभारतीय आर्यभाषा में 'गेन्दुक' रूप बना और' इस रूप को भी बाद में संस्कृत ने आत्मसात् कर लिया, जैसा कि उसने प्राकृत से अनेक शब्दों को ग्रहण कर लिया।

**( इ ) द् ~ ल्**—अमरकोष में उदूखल-उलूखल' इन दो रूपों में यह वर्ण-परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है—'अयोऽग्रं मुसलोऽस्त्री स्यादुदूखलमुलूखलम्' ( अमर० २।९।२५ )। इस परिवर्तन का कारण समीकरण की प्रवृत्ति है, जिससे 'उदूखल के 'ल्' ने पूर्ववर्ती 'द्' को भी 'ल्' में परिवर्तित कर दिया।

**( ई ) ड् ~ ल्**—अमरकोष में इस विपर्यास के उदाहरण हैं—'इडा-इला' 'गोभूवाचस्त्विडा इला ( अमर० ३।३।४२ ) तथा 'ईडित'–ईलित' ( 'ईलित' शस्तंपणायितपनायितप्रणुतपणितपनितानि। अपि गीर्णवर्णिताभिष्टुतेडितानि स्तुतार्थानि ॥ ( अमर० ३।१।१०९-१० ) ऋग्वेदसंहिता में स्वरमध्यग ड का 'ळ' में परिवर्तन होता है[1] और इस प्रकार 'इडा' का 'इला' तथा 'ईडित' का 'ईलित' उच्चारण होता है। 'ल' तथा 'ळ' वर्णों में आकृति-साम्य सम्भवतः इस व्यंजन-व्यत्यय का कारण बना हो। वैसे ड्,ल् का परिवर्तन बाद के साहित्यशास्त्रियों ने भी स्वीकार किया है।

**( उ ) र् ~ ल्**—यह व्यंजन-विपर्यास तथा तज्जन्य शब्द की द्विरूपता अमरकोष में 'करभ' – 'कलभ' में मिलती है—'करभः' 'शिशुः' ( अमर० २।६।८१ )

---

१. द्रष्टव्य—ऋग्वेद प्रातिशाख्य १. ५२।
२. 'यमकादौ भवेदैक्यं डलोर्बवोर्लरोस्तथा – साहित्यदर्पण, १०।८


CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा 'कलभः करिशावकः' ( अमर० २।८।३५ ) । इन दोनों रूपों में यद्यपि कुछ अर्थ-भेद किया गया है, तथापि मूलतः 'शिशु' अर्थ दोनों रूपों में समानरूप से विद्यमान है । 'र्, ल्' का विपर्यास् प्राचीन भारतीय आर्यभाषा में बहुत पहले से होने लगा था, जिसके परिणामस्वरूप 'श्रीर' ( वैदिक ), 'श्रील' तथा 'श्लील' ( जैसे 'अश्लील' में ) जैसे विभिन्न रूप भाषा में चल पड़े थे ।

## २. पदमध्यग स्वर के लोप से उत्पन्न द्विरूपता

अमरकोष में इस प्रकार के उदाहरण हैं 'नूतन'—'नूत्न' (अमर० ३।१।७७-७८), 'प्रतन'—प्रत्न' (अमर० ३।१।७७) तथा 'पृथिवी-पृथ्वी' ( अमर० २।१।३ ) । ऋग्वेद-संहिता में भी विद्यमान है ।[1] इन शब्दों की यह द्विरूपता कारण भी विभाषीय रूप-भेद प्रतीत होता हैं । परिनिष्ठित भाषा ने दोनों विभाषीय रूपों को ग्रहण कर लिया ।

## ३. अनुनासिक-सन्निवेश-जन्य द्विरूपता

अमरकोष में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनमें शब्द के एक रूप में अनुनासिक-व्यंजन का सन्निवेश हुआ है तथा दूसरा रूप इस अनुनासिक व्यंजन से रहित है । ऐसे उदाहरण हैं —'गभीर'–'गम्भीर', 'तुरग'–'तुरंग', 'प्लवग'–'प्लवंग', 'भुजग'–'भुजंग', 'रात्रिचर'–'रात्रिंचर', 'विहग–'विहंग' ।

इनमें से 'गभीर'–'गम्भीर' यह द्विरूपता ऋग्वेदसंहिता में भी मिलती है, यथा–'न त्वा गभीरः पुरुहूत सिन्धुः' (३.३२.१६) तथा 'गम्भीर ऋष्वो असमष्टकाव्यः' (२.२१.४) ।

---

१. 'क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद् बिभर्ति नूतनः' ( १.१०५.४ ) 'पूर्वा उषसो न नूत्नाः' ( ७.१८.२० ), 'स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी' ( १.२२.१५ ) 'पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी' ( १.६५.३ ) ।

ऋग्वेदसंहिता के इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि शब्द में अनुनासिक सन्निवेश की प्रवृत्ति भारतीय आर्यभाषा में प्राचीनतम काल से रही है । पालि आदि मध्य भारतीय आर्यभाषाओं में भी इस प्रवृत्ति के उदाहरण मिल जाते हैं, जैसे संस्कृत 'मत्कुण' का पालिरूप 'मंकुण' तथा संस्कृत 'शर्वरी' का पालिरूप 'संवरी' है । सानुनासिक उच्चारण की यह प्रवृत्ति विभाषीय रही होगी, जिसके कारण परिनिष्ठित भाषा में शब्द के सानुनासिक तथा निरनुनासिक दोनों रूप गृहीत हुए ।

—: ० :—

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अष्टम अध्याय

# अर्थ-परिवर्तन

वाक्यपदीय का कथन है—

"एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक्स्थितौ ।"

अर्थात् शब्द और अर्थ एक ही आत्मा के दो भाग हैं और दोनों का अस्तित्व साथ-ही-साथ हैं, अलग-अलग नहीं । वाक् तथा अर्थ के इस सम्पृक्त सम्बन्ध के कारण कोष में जहाँ एक ओर शब्दों का अत्यधिक महत्त्व है, अर्थ को सुगम कराना भी उसका मुख्य उद्देश्य है ।

शब्द और अर्थ के नित्य तथा अनित्य सम्बन्ध आदि के विषय में जो भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों में मतभेद है, उस विवाद में न पड़कर अमरकोष के सम्बन्ध में तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इसमें पर्यायशैली ( एक शब्द के कई समानार्थक शब्द प्रस्तुत करना ), अनेकार्थशैली ( एक शब्द के कई अर्थ प्रस्तुत करना ), तथा व्याख्याशैली ( शब्द-विशेष को प्रस्तुत करके उसके अर्थ को स्पष्ट करना )—ये तीन शैलियाँ अर्थद्योतन के लिए प्रयुक्त की गई हैं ।

पतंजलि ने कहा है—"एकश्च शब्दो बहवश्चार्थाः ।" एक ही शब्द के कई अर्थ होने का कारण है अर्थ का निरन्तर परिवर्तन होते रहना । इस अर्थ-परिवर्तन के आधारभूत कई कारण हैं और यह भाषा के विकास के लिए अत्यन्तावश्यक भी हैं ।

भाषा के विकास के साथ ही नये भावों को व्यक्त करने के लिए नवीन शब्द प्रचलन में आते हैं या वही शब्द विकास के साथ नवीन विकसित अर्थ देते हैं ।[1] अनावश्यक कुछ शब्द भाषा में प्रयोग से बाहर भी हो जाते हैं । नये-नये प्रसंग आने पर प्रचलित शब्द अपना अर्थपरिवर्तन भी कर देते हैं । इन्हीं तीनों दशाओं के आधार पर ब्रील[2] महोदय ने अर्थ में परिवर्तन की तीन विधाएँ निर्धारित की हैं—अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच तथा अर्थादेश । ब्लूमफील्ड[3] महोदय ने इसके नौ भेद परिगणित किए हैं, वे इन मुख्य तीनों पर ही आधृत हैं ।

---

१. द्रष्टव्य-सीमेण्टिक्स—एम० ब्रील, श्रीमती एच० कुर्ट द्वारा अनूदित, लंदन १९००, पृ० १२१ ।
२. द्रष्टव्य—वही, पृ० ९९ ।
३. लैंग्वेज, पृ० ४२६–४२७ ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## अर्थ-विस्तार

जब कोई शब्द अपने मौलिक अर्थ से परिवर्तित होता हुआ नाना अर्थों में प्रयुक्त होता है तो इसे अर्थविकास कहते हैं। भर्तृहरि[1] ने अर्थविस्तार के दो आधार बतायें हैं—

"क्वचित् सान्निध्यमष्येषां प्रतिपत्तावकारणम्" तथा
"क्वचित् प्रधानमेवार्थो भवत्यन्यस्य लक्षणम्।"

अर्थात् कहीं पर अर्थ के सान्निध्य ज्ञान में कारण नहीं होता, अतः शब्द के अर्थ के एक अंश की अविवक्षा द्वारा शब्द के अर्थ का विस्तार किया जाता है और कहीं पर प्रधान अर्थ ही अन्य सम्बद्ध अर्थ का भी बोध कराता है। उन्होंने आगे बताया कि किसी समानता के आधार पर ही अर्थ का तदनुरूप प्रतिपादन ( विकास ) होता है—

"किंचित् सामान्यमाश्रित्य स्थिते तु प्रतिपादनम्।"

( वाक्य० काण्ड ३, पृ० ३९४)

पतंजलि ने महा० १.२.६८ में लिखा है :—

"विशेषस्याविवक्षितत्वात् सामान्यस्य च विवक्षितत्वात् सिद्धम्।"

अर्थात् विशेष की अविवक्षा तथा सामान्य अर्थ की विवक्षा होने पर अर्थ का विस्तार होता है।

## अर्थ-संकोच

शब्द की असीमित शक्ति को अपना आधार बनाते हुए कैयट[2] ने अर्थसंकोच के सम्बन्ध में लिखा है—

"सर्वार्थाभिधानशक्तियुक्तः शब्दो यदा विशिष्टेऽर्थे संव्यवहाराय नियम्यते, तदा तत्रैव प्रतीतिं जनयति, नान्यत्र।"

अर्थात् यद्यपि शब्द की अनन्त शक्ति सर्वार्थबोधक है, तथापि जब कोई शब्द विशिष्ट अर्थ में व्यवहार के लिए नियंत्रित कर दिया जाता है, तब वह उसी अर्थ का बोध कराता है, अन्य का नहीं।

सभ्यता के विकास के साथ-साथ अर्थवैशिष्ट्य आने से शब्दों के अर्थ में संकुचन की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है। इसीलिए ब्रील ने बताया कि राष्ट्र या जाति जितनी ही अधिक विकसित होगी उसकी भाषा में अर्थसंकोच के उदाहरण उतने ही अधिक मिलेंगे।[3] अर्थ-संकोच की अवस्था में किसी शब्द का प्रयोग सामान्य या विस्तृत अर्थ से हटकर विशिष्ट या सीमित अर्थ में होने लगता है।

---

१. वाक्यपदीय २, ३०६, ३२७
२. कैयट—महाभाष्यदीपिका १.२.२२
३. सीमेण्टिक्स, पृ० १०९.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## अर्थादेश

तीसरी मुख्य विधा है—अर्थादेश। जब कोई शब्द भावसाहचर्य के कारण प्रधान अर्थ के अतिरिक्त कोई गौण अर्थ भी देने लगता है तो कालान्तर में गौण अर्थ का ही प्रचलन शेष रह जाने के कारण उसे अर्थादेश कहते हैं। इस प्रकार एक अर्थ के लोप होने तथा नवीन अर्थ के आ जाने को अर्थादेश कहते हैं। ब्लूमफील्ड[1] ने लोक में प्रयोग के क्षेत्र में विस्तार होने को अर्थादेश का आधार बताया है। भर्तृहरि ने कहा है[2]—

"क्वचिद् गुणप्रधानत्वमर्थानामविवक्षितम्।" तथा
"यच्चानुपात्तं शब्देन तत् कस्मिंश्चित् प्रतीयते।"

अर्थात् इन दो परिस्थितियों में अर्थादेश होता है—

(१) शब्द का मुख्य अर्थ गौण हो जाय और गौण अर्थ मुख्यार्थ का स्थान ले ले।

(२) शब्द का वास्तविक अर्थ अविवक्षित हो जाय तथा एक नवीन ही अर्थ का उदय हो जाय।

इन तीनों विधाओं को डॉ० बाबूराम सक्सेना ने[3] बहुत ही सुन्दर और संक्षिप्त रूप में इस प्रकार स्पष्ट किया है—

"अर्थविस्तार का कारण किसी शब्द का एक से अनेक प्रसंगों में इस्तेमाल होना है, अर्थ-संकोच का कारण इसके ठीक उल्टा होता है। जब कोई शब्द कई प्रसंगों में आता हो और बाद को उनमें से कुछ में उसका प्रयोग बन्द हो जाय तो अर्थ-संकोच होना स्वाभाविक है। अर्थादेश ऐसी परिस्थिति में होता है, जिसमें प्रचलित प्रयोगों का बहिष्कार हो और नये प्रसंग में इस्तेमाल किया जाय। इस तरह अर्थादेश में अर्थ-संकोच और अर्थविस्तार मूल रूप में उपस्थित है।"

अब अर्थपरिवर्तन की इन तीनों विधाओं के आधार पर अमरकोष में परिगणित शब्दों का अध्ययन करना समीचीन ही होगा।

**अक्षत (अमर० २।९।४७)**—पूर्ण चावल। मूलतः इस शब्द का अर्थ हुआ 'बिना क्षतिग्रस्त हुए' 'त्वमनङ्गः कथमक्षता रतिः' (कुमारसंभव ४।९) चावल कूटने पर ही टूटता है, अतः कूटकर साफ किए हुए चावलों में से पूर्ण (अक्षत) दाने के लिए यह शब्द बाद में प्रयुक्त हुआ 'साक्षतपात्रहस्ता' (रघुवंश २।२१) यह शब्द केवल बहुवचन में प्रयुक्त होता है। विशेषण से संज्ञा में परिवर्तित होने का यह अर्थ-संकोच का उदाहरण है।

---

१. लैंग्वेज—अध्याय २४ ६, पृ० ४३५।

२. वाक्यपदीय २, ३०६, ३२७।

३. डॉ० बाबूराम सक्सेना—अर्थविज्ञान, अध्याय ६, पृ० १००-१०१, प्रकाशित पटना विश्वविद्यालय की ग्रन्थमाला, १९५१।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

**अनिशम्** ( अमर० १।१।६५ )—स्पष्टीकरण हेतु शब्द को इस प्रकार भंग किया जा सकता है—'नास्ति निशा यस्मिन् तत्'—ऐसा कार्य जिसमें रात्रि व्यवधान न हो। वास्तव में निशा का मुख्यार्थ 'रात्रि' यहाँ नहीं गृहीत हुआ है। रात्रि का सम्बन्ध विश्राम से है और इसी कारण प्रस्तुत प्रसंग में उसका गौण अर्थ 'विश्राम या क्रिया की समाप्ति' है। अतः 'अनिश' का अर्थ हैं—अनवरत। 'अनिशमपि मकरकेतुर्मनसो रुजमावहन्नभिमतो मे' ( शाकुन्तलम् ३।३ )।

**अनीकम्** ( अमर० २।८।७८ )—सेना। इसका मूल अर्थ पार्श्व भाग या किसी शस्त्र का तेज किनारा है। प्रयाण के समय सेना एक पंक्ति में किसी शस्त्र के तेज किनारे ( धार ) के समान प्रतीत होती है। लौकिक संस्कृत में इस शब्द का अर्थ केवल समूह या सेना ही आया है। 'दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकम् प्रतिकूलम्' ( रसगंगाधर ३.१/२ ) यह अर्थादेश का उदाहरण है।

**प्रतिकूलम्** ( अमर० ३।१।८४ )—मूल अर्थ 'किनारे के विपरीत', गौण अर्थ है, विपरीत। विपरीत धारा में तैरने आदि की क्रिया में 'प्रतिकूल' तथा समान धारा में 'अनुकूल' स्थिति रहती है। जल की धारा से ही सम्बद्ध एक अन्य शब्द है, 'प्रतीप' ( विपरीत )। इसका मूल अर्थ है 'प्रतिगता आपोऽत्र' अर्थात् जल की धारा जहाँ विपरीत दिशा में हो। इस अर्थ का संकुचन 'विपरीत, विरुद्ध या विपक्ष' में हो गया है। 'तत्प्रतीपपवनादिवैकृतम्' ( रघु० ११।६२ ) 'भर्तुर्विप्रकृतापि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः' ( शाकु० ४।१८ )।

**अवरोधः** ( अमर० २।२।१२ )—अन्तःपुर। इसका मूल अर्थ है, 'सीमित होना'। अन्तःपुर या रनिवास में यह अर्थ इसलिए विकसित हुआ कि प्रजा से भिन्न और प्रभु होने के कारण राजाओं के महलों में रानियों को सामान्यजन से दूर सीमित क्षेत्र में ही रक्खा जाता था। 'नित्ये विनीतेऽवरोधदक्षैः' ( मृच्छ० १।१।३ )। 'रुध्' धातु इस बात की ओर भी संकेत करती है कि अन्तःपुर में कड़ा पहरा भी लगा रहता था। कालान्तर में इसी से निष्पन्न 'अवरुद्ध' शब्द का 'गुप्त' अर्थ में परिवर्तन हो गया—'अवरुद्धोऽचरत् पार्थो वर्षाणि त्रिदशानि च।' ( महाभारत )

**उपगूहनम्** ( अमर० ३।२।३० )—प्रधान अर्थ 'छिपाना' गौण अर्थ आलिंगन में विकसित हुआ, क्योंकि गाढ़ आलिंगन में एक व्यक्ति दूसरे में छिपा-सा प्रतीत होता है। 'स्मरमुकुंदादयुपगूहनं पुनः' ( भागवत १।५।१९ )।

**उपांशुः** ( अमर० २।८।२३ )—एकान्त। मूल अर्थ 'उपगता अंशवोऽत्र' अर्थात् जहाँ सूर्य की किरणें जाकर प्रवेश न पा सकें, ऐसा स्थान है। यह स्थान गुप्त और एकान्त होगा। 'परिचेतुमुपांशु धारणां कुशपूतं प्रवयास्तु विष्टरम्'। (रघु० ८।१८)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

**अनुक्रोशः** ( अमर० १।७।१८ )—प्रधान अर्थ है चीत्कार करना जो कि गौण अर्थ

'दय।' में परिवर्तित हो गया है। प्रधान अर्थ का विकास पहले 'दया के कारण चीत्कार करना' में परिवर्तित हुआ और फिर 'दया' अर्थ में संकुचित हो गया। 'भगवन्कामदेव न ते मय्यनुक्रोशः' ( शाकु० ३. ) किसी व्यक्ति को विपत्ति में देखकर दया के कारण हमारे मुख से चीत्कार निकल पड़ती है। संस्कृत 'अनु' तथा 'क्रोश' का समानार्थी शब्द अंग्रेजी में सिम (साथ-साथ) तथा पैंथी ( दया ) उसी रूप में सुरक्षित हैं।

**कितवः (अमर० २।४।७७; २।१०।४३)**—इस शब्द का मूल अर्थ है 'किं तव ?' एक जुआरी दूसरे से यही प्रश्न करता है कि तुम्हारे पास कितना धन है अतः 'कितव' शब्द जुआरी के अर्थ में प्रयुक्त होने लगा, जैसा कि अमरकोष में मिलता है। बाद में जुआरी के दुष्ट होने के कारण इस शब्द के मुख्यार्थ का बाध होकर गौण अर्थ 'धूर्त' 'वंचक' ही प्रधान अर्थ हो गया। 'धूर्त' यथा—

'अस्थिररागः कितवो मानी चपलो विदूषकस्त्वमसि।
मम सख्याः पतसि करे पश्यामि यथा ऋजुर्भवसि। आर्यासप्तशती' ॥३३॥

'खल', यथा——यदाश्रौषं वाससां तत्र राशिं समाक्षिपत्, कितवो मन्दबुद्धिः। ( महाभारत १।१।१५६ ) कितव से ही 'कैतव' शब्द 'वंचना' के अर्थ में आया, क्योंकि वंचक एक सज्जन के रूप में विश्वास प्राप्त करके वंचना करता है, अतः 'कैतव' का अर्थ-विकास 'कपट' में हुआ। 'हृदये वससीति मत्प्रियं यदवोचस्तदवैमि कैतवम्' ( कुमार० ४।९ )।

**कुशलः ( अमर० ३।१।४ )**—'कुशानि लातीति' व्युत्पत्ति से कुश घास को काटने में दक्ष व्यक्ति को पहले कुशल कहते थे, क्योंकि कुश के तेज होने के कारण उसको काटने में विशेष सावधानी और चतुरता की आवश्यकता है। अतः इसका अर्थ 'चतुर' 'दक्ष' में विकसित हो गया।

समुद्रयानकुशला देशकालार्थदर्शिनः।
स्थापयन्ति तु यां वृद्धिं सा तत्राधिगमं प्रति ॥ ( मनु० ८।१५७ )

'कुशाग्र' शब्द भी बुद्धि के योग में विचक्षण, तीव्र अर्थ में इसी विकसित अर्थ के कारण प्रयुक्त होता है। कुश का अग्रभाग असिधारा के समान ही इतना तेज होता है कि असावधानता से क्षत कर देता है।

**कृपणः ( अमर० ३।१।४८ )**——'कृप्यते कृपाविषयी क्रियते इति कृपणः' व्युत्पत्ति से पहले इस शब्द का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से था, जिस पर दया की जाय। जैसे—— 'कृपणाः फलहेतवः'—गीता २.४९। 'दुहिता कृपणं परम्'—मनु० ४-१८५। अनन्तर अर्थपरिवर्तन अकाल, कदर्य, क्षुद्र में हुआ—'दाता लघुरपि सेव्यो भवति न कृपणो महानपि समृद्धया ( पंचतंत्र २।७५ )। कालान्तर में इसका अर्थ 'दीन',

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

'दरिद्र' हो गया। प्राचीन समय में और अब भी दीन व्यक्ति ही दया का पात्र होता है। इस प्रकार एक विशेषण शब्द एक संज्ञा शब्द में परिवर्तित हो गया।

'आदितः कृशवृत्तिर्यः कृपणो न स राघव।

महात्मा व्यसनं प्राप्तो दीनः कृपण उच्यते।' ( रामायण ४।२१।१९ )

**क्षणः ( अमर० १।४।११;।१।७।३८ )**--का मूल अर्थ है 'एक निश्चित समय' ( --तीस कला ) और गौण अर्थ है 'विश्राम का समय'। यह अर्थविकास किस प्रकार हुआ, निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। अनुमान किया जा सकता है कि विश्राम या आराम के क्षण भी किसी एक व्यक्ति के अपने लिए सुरक्षित क्षण होते हैं। इसी से अर्थ 'उत्सव' में विकसित हुआ और साहित्य में स्वतन्त्रता से प्रयुक्त होता है—

'तेन हि अयं सुगृहीतः क्षणः' ( अभिज्ञान० अंक २, पृ० ४६ )

—एम० आर० काले का संस्करण

विदूषकः—'गृहीतक्षणोऽस्मि' ( मालविका० पृ० ३६ )

--एम० आर० काले का संस्करण।

'गृहीतक्षणः' का अर्थ है 'मुझे कार्य करने का अवसर ( समय ) मिल गया है।' मराठी 'सण' इसी अर्थ ( --अवसर ) में प्रयुक्त होता है।

'क्षणं क्षणोत्क्षिप्तगजेन्द्रकृत्तिना स्फुटोपमं भूतिसितेन शम्भुना' ( माघकृत शिशुपाल० १।४ )। यहाँ पर भी द्वितीय क्षण का तात्पर्य महेश्वर के ताण्डवनृत्य या लास्य के उत्सव के क्षण से है। प्रथम क्षण में तो प्रधान अर्थ सुरक्षित ही है।

**जुगुप्सा ( अमर० १।६।१३ )**--गुप् धातु से इसका मूल शाब्दिक अर्थ था गायों का संवर्धन करना। कालान्तर में यह केवल 'पालना' अर्थ में सीमित हुआ। फिर संवर्धन और पालन में संरक्षण की भावना आवश्यक होने से इसका अर्थ 'संरक्षण करना' हो गया। संरक्षण में वस्तु को दूसरे लोगों से अलग और गुप्त रक्खा जाता है। अतः अर्थ-विकास और आगे बढ़ा और गुप्त वस्तु के घृणित होने के कारण जुगुप्सा का अर्थ भी घृणा, निन्दा हो गया। 'दोषक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा' ( साहित्यदर्पण ३।१७६ )।

**उदारः ( अमर० ३।१।८ )**--'उद्गत आरात्' से व्युत्पन्न यह शब्द 'आरी ( कशा ) की आवश्यकता न चाहने वाले सीधे और अपने स्वामी वाहक के इंगित को समझने वाले चतुर घोड़े या बैल का अर्थ रखता था। अर्थ-विकास से सरल व्यक्ति ( अमरकोष ) के लिए भी यह शब्द प्रयुक्त हुआ तथा चतुर अश्व या बलीवर्द के समान याचक की भंगिमा से ही आशय समझकर उचित दान आदि देने वाले उदार व्यक्ति के अर्थ में विकसित हुआ। 'उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्वात्मैव मे मतम्' । ( गीता० ७।१८ ) । इसमें शब्द का प्रधान अर्थ पूर्णतया परिवर्तित हो गया है और यह निरुद्ध लक्षणा का उदाहरण है । अर्थादेश का यह एक सुन्दर उदाहरण है ।

**तिरस्क्रिया ( अमर० १।७।२२ )**--अनादर । इसी से बना शब्द तिरस्कृत पहले गुप्त या 'अन्तर्हित' अर्थ में प्रयुक्त होता था । जैसे 'तरुतिरस्कृत' अर्थात् वृक्ष की आड़ में छिपना । आगे इसका विकास 'विजयी होना', 'उन्नत होना' में हुआ । विजित व्यक्ति सदा अपने को अवगत, दुःखी अनुभव करता है । अतः तिरस्कृत का अर्थ अनादर हुआ ।

**तपस्विन् ( अमर० २।७।४२ )**--प्रधान अर्थ ऐसे व्यक्ति से था जो तप और ज्ञान का अभ्यास करता है । 'तपस्विसामान्यमवेक्षणीया' ( रघु० १४।६७ ) ऐसे व्यक्ति का इस लोक से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । वह यहाँ रहकर भी नहीं रहता और समाज के अन्य सदस्यों का उसके पोषण का दायित्व हो जाता है । अतः इसका अर्थ बाद के साहित्य में असहाय हो गया—'सा तपस्विनी निर्वृत्ता भवतु' । ( शाकु० ४ ) ।

**दक्षिणः ( अमर० ३।१।८ )**--शाब्दिक अर्थ है कुशल, चतुर । ( सक्रिय होना, चतुर होना ) मूल से यह शब्द बना है । दाहिना हस्त दक्षिण कहलाता है, क्योंकि वह अधिक क्रियाशील है । क्रियाशील और चतुर गुण के कारण ही इसका तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से लिया जाने लगा जो अधिक चतुर और सक्रिय दूसरे की सहायता करने में हो, क्योंकि ऐसा व्यक्ति अवश्य उदार-हृदय और दयालु होगा, इसलिए दक्षिण शब्द का तात्पर्य उदार, सरल व्यक्ति से होने लगा । उदाहरणार्थ—

'सदाक्षिण्यस्य जनस्य परिजनोऽपि सदाक्षिण्य एव भवति ।'—स्वप्नवासवदत्तम्—भास अंक ५, पृ० ३३ ( सी० आर० देवधर का संस्करण ) । अर्थादेश का यह अच्छा उदाहरण है ।

**द्रव्यम् ( अमर० ३।३।१५५ )**--पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'द्रु' ( वृक्ष ) से इसे निष्पन्न बताया जाता है । 'द्रोः इव द्रव्यम्' ( एक वृक्ष के समान ) । वृक्ष 'शाखादिमान् पदार्थ' होने के कारण इसके कई भाग हैं । सभी पदार्थ वृक्ष के समान अवयवी होते हैं, यद्यपि वृक्ष के समान उसके सभी भाग स्पष्ट नहीं भी हो सकते । परन्तु वृक्ष के अनुरूप होने के कारण उन्हें भी द्रव्य कहा जाता है । वैशेषिकों के अनुसार गुण और कर्म द्रव्य नहीं कहलाते, क्योंकि उसमें पदार्थता नहीं है । इस विशेष अर्थ से 'योग्य व्यक्ति या वस्तु' का अर्थ विकसित होता है । एक ऐसा व्यक्ति जिसमें अच्छे गुण हों 'भाव्य' कहलाता है—

'द्रव्यं च भाव्ये' ( पाणिनि० ५।३।१०४ ), यही नहीं, गुणाश्रय होने के

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कारण एक व्यक्ति भी द्रव्य है—'द्रव्यम् इव द्रव्यम्' यह अर्थ अमरकोष में प्राप्त है।

**ध्वान्तम्** ( अमर० १।८।३ )—यह शब्द 'ध्वन्' शब्द से व्युत्पन्न है, जिसका अर्थ है 'अंधकार'। ध्वन् मूल का अर्थ है--चिल्लाना, शोर मचाना। इस शब्द के अर्थ-विकास का आधार बड़ा ही मनोरंजक और मनोवैज्ञानिक है। गहन अंधकार में एक-दूसरे से बिछुड़ जाने पर व्यक्ति भय से चिल्लाता है, क्योंकि यह शोर ( संशब्दना ) अंधकार के कारण उत्पन्न हुई है, अतः ध्वान्त शब्द ही अंधकार का क्षेत्र ले लेता है। ऋग्वेद में भी ध्वान्त और तम साथ-साथ आए हैं--
'ध्वान्तं तमोऽव दध्वसे हत इन्द्रो मह्ना पूर्वहूतावपत्यत।' ( १०।११३।७ )। यहाँ ध्वान्त एक विशेषण के रूप में प्रयुक्त है, जिसका अर्थ है, ऐसा अन्धकार जिसमें शोर भी हो, अर्थात् गहन अन्धकार। अर्थादेश का यह सुन्दर उदाहरण है।

**प्रवीणः** (अमर० ३।१।४)--इसका प्रधान अर्थ है 'वह व्यक्ति जो वीणावादन में दक्ष हो,' क्योंकि वीणावादन में अभ्यास तथा क्षमता की आवश्यकता होती है, अतः प्रवीण शब्द का गौण अर्थ 'क्षमता' या 'दक्षता' मुख्य हो गया।
'विश्वावसुप्राग्रहरैः प्रवीणैः संगीयमानत्रिपुरावदानः।' ( कुमार० ७।४८ )। अब प्रवीण शब्द 'कुशल', 'दक्ष' अर्थ में लिया जाता है और उसका वीणा से कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

**पत्र** ( अमर० ३।३।१७९ )—शब्द का मूल अर्थ पेड़ का पत्ता था जैसा कि अमरकोष में मिलता है। प्राचीन समय में वृक्ष के पत्र ही लेखन में प्रयोग किए जाते थे। पत्ते पर लिखे विषय को भी पत्र कहा जाने लगा। इस प्रकार 'पत्र' शब्द का अर्थविकास कुशल पत्र या चिट्ठी के रूप में होने लगा, जो कि पत्र ( पत्ते ) पर लिखा जाता था। अर्थ का और अधिक विस्तार होकर कालान्तर में उसे ही पत्र कहा जाने लगा, जिसपर कि पत्र लिखा जाय और इस प्रकार ताम्र-पत्र, ताड़-पत्र तथा सुवर्ण-पत्र शब्द मिलने लगे। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थ अधिकतर ताड़-पत्र पर ही लिखे जाते थे। अंग्रेजी में 'दि लीफ़ ऑफ ए बुक' प्रयोग भी इसी अर्थ का बोधक है।

**निर्वाणम्** ( अमर० १।५।६; ३।१।९६ )—इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है—'नष्ट किया हुआ'। वा मूल से 'त' प्रत्यय जोड़कर इसकी व्युत्पत्ति हुई है। इस व्युत्पत्ति से शब्द का अर्थ पूर्ण शान्ति और विश्राम की स्थिति में विकसित हुआ। ऐसी मस्तिष्क की बाधारहित स्थिति पूर्ण शान्ति तथा प्रसन्नता प्रदान करती है। यह परम सुख की दशा इस शरीर के बन्धन से मुक्त होने पर ही पाई जा सकती

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

है। अतः निर्वाण शब्द का अर्थविकास 'मोक्ष' में हुआ—'मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथार्चिः ( भागवत ३।२८।३५ )। इस शब्द का 'परम सुख' तथा 'सन्तुष्टि' अर्थ साहित्य में सुरक्षित है, यथा—अये लब्धं नेत्र-निर्वाणम्' ( अभिज्ञान०, पृ० ६७ )। ( एम० आर० काले का संस्करण )।

**आम्रः ( पुंल्लिग, नपुंसकलिंग ) (अमर० २।४।३३)**--इस शब्द का मूल अर्थ है—आम्रवृक्ष। इस अर्थ में यह शब्द पुंल्लिग है। आम्रफल के अर्थ में यह नपुंसक-लिंग है। स्पष्ट है कि आम्र शब्द का अर्थ वृक्ष से फल तक आया। आगे भी इसका अर्थविकास पवित्र वृक्ष के अर्थ में हुआ। निम्न श्लोक में 'पंचाम्रो' ( पाँच पवित्र वृक्षों ) का उल्लेख हुआ है, जिनके आरोपण से मनुष्य नरक में जाने से बच सकता है--

'अश्वत्थ एकः पिचुमर्द एको द्वौ चम्पकौ त्रीणि च केशराणि।
सप्ताथ ताला नव नारिकेलाः पंचाम्ररोपी नरकं न याति ॥

( भाषावृत्ति, पुरुषोत्तमदेव )

**असुरः ( अमर० १।१।१२; ३।५।११ )**—इस शब्द का मूल अर्थ 'देव' था। असु से 'र' प्रत्यय जोड़कर यह शब्द बना है। व्युत्पत्ति के अनुसार इसका अर्थ हुआ असु ( आत्मिक शक्ति ) से 'र' ( पूर्ण )। असुर शब्द ऋग्वेद के प्राचीन भागों में इसी मूल अर्थ में प्रयुक्त हुआ है और इन्द्र, अग्नि, वरुण प्रभृति प्रमुख देवों के नाम के साथ आता है। 'स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः' ( ऋग्वेद० ५।५१।११) परन्तु प्राचीन पारसीकों तया आर्यों में लड़ाई होने पर पारसीकों ने आर्यों के देवों को 'देवस्' या दैत्य कहा। प्रत्युत्तर में आर्यों ने भी उनके देवों को असुर या दैत्य संज्ञा दी। इस प्रकार इतने समय से चला आता हुआ 'असुर' शब्द देववाची न रहकर आर्यों में राक्षस अर्थ में प्रयुक्त होने लगा और सित ( श्वेत ) तथा असित ( कृष्ण ) के सादृश्य पर 'अ' को उपसर्ग मानकर 'सुर' शब्द को आर्यों ने देव-वाची बना लिया। वास्तव में असित शब्द एक ही शब्द है। इसी प्रकार संस्कृत के कई शब्दों में हमें 'विधवा' शब्द भी मिलता है, जो कि एक यौगिक शब्द न होकर स्वतन्त्र शब्द है। यद्यपि उसे वि + धव रूप में एक यौगिक शब्द ही मानते हैं और इसी आधार पर 'धव' ( पति ) शब्द कोशों में तथा प्रयोगों में मिलता है।[१] 'विधवा' शब्द के मूल स्वतन्त्र शब्द होने का प्रमाण यह है कि यह विभिन्न यूरोपीय भाषाओं में भी इसी पूर्ण मूलरूप में सुरक्षित मिलता है। यथा—अंग्रेजी--'विडो', लैटिन 'विडुओ' तथा ग्रीक--'विड्वा'। 'असुर' शब्द से 'सुर' शब्द की निष्पत्ति इस प्रकार सत्य स्वीकार की जा सकती है।

---

१. द्रष्टव्य—आ[illegible], पृ० २६९।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

**ओषधीशः ( अमर० १।३।१४ )**--औषधिनाथ। इस शब्द का अर्थ है--'चन्द्रमा'। वास्तव में तो 'ओषधीनां नाथः' या 'ओषधीनाम् ईशः' पद सोमवृक्ष के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि यह वृक्षों का नृपति है। इसके रस से यज्ञ की पूर्णता है। इस शब्द का चन्द्रमा में प्रयोग का आधार इन्द्र के लिए प्रयुक्त एक अन्य शब्द 'इन्दु' है जो कि ऋग्वेद में ( १ ) सोमरस की बूंद तथा (२) सोमरस के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। संस्कृत शब्दावली की यह विशेषता रही है कि दो समान वस्तुएँ एक-दूसरे के पर्यायों का भी ग्रहण करती हैं और इसलिए संस्कृत-शब्द-भाण्डागार इतना समृद्ध है। आकार-साम्य के आधार पर ही निघण्टु में वर्णित मेघ के ३० पर्यायों में से प्रारम्भ के १९ पर्वत के भी पर्याय हैं। जैसे--अद्रिः, अश्मा, पर्वतः, गिरिः तथा ग्रावा इत्यादि। ऋग्वेद में सोमरसबिन्दु के अर्थ में प्रयुक्त 'इन्दु' शब्द चन्द्रमा के लिए बिन्दु के गोलाकार होने के आधार पर प्रयुक्त हुआ और चन्द्र के ही कारण सोमरस ने भी चन्द्र अर्थ पाया। जैसा कि सामान्यतः होता है, सोम के गुण चन्द्र के साथ जोड़ दिए गये। इस प्रकार वह भी ओषधिनाथ या ओषधीश कहलाने लगा। परन्तु यह व्याख्या कामनापूर्ण है।

सोमबिन्दु में चन्द्र की कल्पना और इस आधार पर सोम को चन्द्र कहना तो शतपथब्राह्मण के एक उल्लेख से पुष्ट की जा सकती है—

'चन्द्रं चन्द्रेण क्रुणाति यत् सोमं हिरण्येन क्रुणाति।' ( शतपथब्राह्मण ३।३।३।६ )। और इसी आधार पर चन्द्र को ओषधिनार्थ कहना संगत प्रतीत होता है। वास्तव में चन्द्र नमी को सोखकर ओषधियों की रक्षा करता है। इस प्रकार वह निश्चित रूप से ओषधीश है।[१]

**निभृतः ( अमर० ३।१।५५ )**—विनीत। 'नितरां भृतम्' व्युत्पत्ति के आधार पर इस शब्द का अर्थ 'पूर्ण' 'भरा हुआ' जान पड़ता है। 'चिन्तया निभृतः' इत्यादि में यह अर्थ सुरक्षित है। 'सन्तुष्ट' अर्थ भी निम्नलिखित पंक्ति में मिलता है--

'भुक्ताश्च भोगा निभृताश् च भृत्याः।' ( रामायण ६।१०९–२२ )

भरी हुई या पूर्ण वस्तु शब्द नहीं करती 'संपूर्णकुम्भो न करोति शब्दम्'। अतः 'निभृत' शब्द का विकास 'शान्त' अर्थ में हुआ। साहित्य में इस अर्थ में उदाहरण मिलते हैं—

'कोऽयं भो निभृतं तपोवनमिदं ग्रामीकरोत्याज्ञया।' ( स्वप्नवासवदत्ता–अंक १ )

'निष्कम्पवृक्षं निभृतद्विरेफं काननम्।' ( शाकुन्तल )

'कारणेन खलु मया नैभृत्यम् अवलम्बितम्।' ( मालविका–अंक ३ )

क्योंकि प्रत्येक ध्वनि के पीछे कुछ क्रिया (गति) रहती है, ध्वनिराहित्य की दशा

---

१. द्रष्टव्य—आप्टेज डिक्शनरी, पृ० १२५।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

गतिहीनता या क्रियाहीनता का संकेत करती है और इस प्रकार 'निभृत' शब्द 'गतिहीन' क्रियाहीन अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। यथा—

'कृतकर्मा निभृतवत् स तूष्णीं पुनर् आविशत्।' (रामायण ६।१०८।२०)

'निष्कम्पचामरशिखानिभृतोर्ध्वकर्णम्।' (शाकुन्तल १।८)

'अनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु'। (मेघदूत ६८)

'वारिधीन् इव युगान्तवायवः क्षोभयन्तम् अनिभृता गुरून् अपि। (किरात १३।६६)

इस प्रकार 'शान्त' अर्थ 'गतिहीन' में विकसित हुआ। शरीर की गतिहीनता के बाद ही मन की शान्ति की स्थिति आती है। इस प्रकार 'निभृतात्मा' का अर्थ 'शान्त-मनाः' हुआ। कालान्तर में शान्त और गतिहीन, ये दो शब्द 'गुप्त' अर्थ द्योतित करने लगे, क्योंकि 'गुप्त' या 'रहस्य' में शान्ति और गतिहीनता के गुण आवश्यक हैं। इसका उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

'निभृतम् इति चिन्तनीयं, शीघ्रम् इति सुकरम्।' (शाकुन्तल—अंक ३)

रहस्य या गुप्ति में छिपाने की भावना आ जाती है। अतः इसका अर्थ 'छिपा हुआ' 'दृष्टि से ओझल' यह हो गया—

'नभसा निभृतेन्दुना।' (रघु० ८।१५)

इसके साथ ही 'निभृत' के मुख्य अर्थ 'पूर्ण', 'भरा हुआ' से 'विनीत' में भी विकास हुआ। 'पूर्ण या भरा हुआ' ही भारी होता है और अवनत भी। फल से लदे हुए वृक्ष और जल से भरे हुए मेघ 'अवनत' होते हैं, अतः 'निभृत' का अर्थविकास 'विनीत, अवनत, नम्र' में हुआ।

'प्रणामनिभृता कुलवधूरिव' (विशाख, मुद्राराक्षस, अंक १)

**याप्यः ( याव्यः ) ( अमर० ३।१।५४ )**—'या' (जाना) धातु से 'यत्' प्रत्यय लगकर बना यह शब्द 'भेजने योग्य व्यक्ति' का शाब्दिक अर्थ रखता है। (गौतम-धर्मसूत्र २।४७।३) आलंकारिक रूप में इसका अर्थ 'त्यागना' या 'निन्द्य' होता है। अमरकोष में 'शिविका याप्ययानं स्यात्' आया है और क्षीर० ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है—'याप्यस्य अशक्तस्य यानम्' ( क्षीर० अमर० ३।१।६१ ) अर्थात् चलने में असमर्थ व्यक्ति याप्य के लिए वाहन। इस प्रकार याप्य का अर्थ अशक्त, दुर्बल हुआ। आयुर्वेद में 'याप्य' शब्द ऐसे रोग के लिए आता है, जिसका इलाज लगातार चलता रहे, परन्तु पूर्ण निदान न हो सके। ऐसे रोग नासूर, कुष्ठरोग इत्यादि हैं। इन रोगों से पीड़ित रोगी अन्य लोगों की गर्हा का पात्र होता है। इसी प्रकार अपनी मूर्खता, दुर्व्यवहार या इसी प्रकार की कमी के कारण अन्य व्यक्तियों की निन्दा का पात्र बनता है और 'याप्य' कहलाता है—'याप्यो वैयाकरणः' यह औपमिक प्रयोग का उदाहरण है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

**वदान्यः ( अमर० ३।१।६ )**—मुख्य रूप से इसका अर्थ था वह व्यक्ति, जो 'वदति ( दीयताम् ) इति वदान्यः', दान का आदेश करे। दान का महत्त्व प्राचीन समय में बहुत अधिक था और जो दान का आदेश देता था, महत्त्वपूर्ण व्यक्ति माना जाता था, क्योंकि उदार व्यक्ति ही दान का आदेश कर सकता था। अतः 'वदान्य' शब्द का अर्थ 'बहुत देने वाला', 'उदार' में विकसित हुआ। 'गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे माभूत् परीवादनवावतारः ( रघु० ५।२४ )।

**विशारदः ( अमर० ३।३।९५ )**--इस शब्द का अर्थ है 'चतुर'। अमरकोष में शारद और विशारद शब्द साथ-साथ आये हैं। क्षीर० 'विशारद' शब्द की व्याख्या इस प्रकार करता है--

"विगतं शरदत्वम् अभिनवत्वम् अस्येति विशारदः।"

अर्थात् जो नवीन नहीं है वह व्यक्ति। ऐसा व्यक्ति जिसने परिपक्वता प्राप्त कर ली है और इसी से इस शब्द का गौण अर्थ हो गया चतुर। 'मधुदान-विशारदाः' ( रघु० ९।२९; ८।१७ ), इसी आधार पर 'शारद' का अर्थ हो गया 'नवीन'। इसका व्युत्पत्तिपरक अर्थ है--'शरदि भवः शारदः' अर्थात् शरद् ऋतु का। यह शब्द का मुख्यार्थ है। कालान्तर में इसका अर्थ हो गया 'नया'। पाणिनीय सूत्र--'शारदेऽनार्तवे' ( ६।२।९ ) में यही अर्थ सुरक्षित है। 'शरद' का अर्थ यहाँ 'नया' 'ताजा' है। इस सूत्र में उदाहरण दिया गया है--'रज्जुशारदम्' ( उदकम् )। जयादित्य ने इसे इस प्रकार स्पष्ट किया--'सद्यो रज्जूद्धृतम् उदकम् प्रत्यग्रम् अनुपहतम् रज्जुशारदम् उच्यते।' ( पाणिनि ६।२।९ पर काशिका )। अमरकोष में भी यही अर्थ सुरक्षित है—,द्वौतु 'शारदौ प्रत्यग्राप्रतिभौ'। नवीन (प्रत्यग्र के इस गौण अर्थ से एक तीसरा अर्थ अचतुर ( नौसिखिया ) विकसित हुआ। जो व्यक्ति किसी काम के लिए नया होगा, वह अभ्यास के अभाव में दक्ष नहीं होगा। 'विशारद' शब्द 'शारद' का विपरीत होने के कारण, इसीलिए 'परिपक्व' अर्थ देता है--'विद्वत्सुप्रगल्भौ विशारदौ" ( अमर० ३।३।९५ )।

**वंश (अमर० २।४।१६०; २।७।१ )**--इस शब्द के प्राप्त दो अर्थ--बाँस तथा कुल--अमरकोष में सुरक्षित है। वंशवृक्ष—'ध्वनति पवनविद्धः पर्वतानां दरीषु, स्फुटति पटुनिनादः शुष्कवंशस्थलीषु' ( ऋतुसंहार )। वंशवृक्ष के समान ही कुल अभिवृद्धि प्राप्त करता चलता है--'वंश इव वंशः'।

इसलिए इस शब्द का ऐसा अर्थ-विकास हुआ। वंशवृक्ष प्रारम्भ में एक होते हुए भी कालान्तर में झाड़ी के रूप में विकसित होता है। प्रत्येक हिन्दू अपने कुल की वंश वृक्ष के समान अभिवृद्धि की कामना करता है और यही

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आधार है 'वंश' शब्द का कुल अर्थ में विकास का। 'क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः' ( रघु० १।२ )।

**वैद्यः ( अमर० २।६।५७ )**--व्युत्पत्ति के आधार पर 'विद्वान्' और गौण प्रचलित अर्थ 'चिकित्सक' है। गौण अर्थ इतना अधिक प्रचलन में आ गया कि प्रधान अर्थ को उसने पूर्ण रूप से आच्छादित कर लिया। 'विद्वान्' अर्थ में इसका प्रयोग महाकाव्यों में आंशिक रूप से मिलता है, जैसे रामायण--७७,२१,११,१००-४२ 'नाविद्यानां तु वैद्येन देयं विद्याधनं क्वचित्। समविद्याधिकानां तु देयं वैद्येन तद्धनम्' ॥--कात्यायन। वैद्येन विदुषा-दाव्यम्'। गौण अर्थ में इस शब्द का विकास पर्याप्त प्रारम्भिक दशा में ही हो गया था। इस आधार पर यह निष्कर्षित किया जा सकता है कि लोगों ने आयुर्वेद को अध्ययन की एक महत्त्वपूर्ण शाखा माना और उसको 'विद्या' संज्ञा दी। आयुर्वेद या औषध-विद्या को जानने वाला 'वैद्य' कहलाया—

'स चाम्बष्ठजातिश्चिकित्सावृत्तिश्च।

"वैद्ययत्नपरिभाविनं गदं न प्रदीप इव वायुमत्यगात्।"

( रघु० १९।५३ )

इस सम्बन्ध में 'कविराज' शब्द भी महत्त्वपूर्ण है, जिसका अर्थ है 'विद्वान्' या 'विद्वानों में श्रेष्ठ'।

**शकुनः ( अमर० २।५।३२ )**--इस शब्द का मूल प्रधान अर्थ 'पक्षी' है। यथा--

'तं वने विजने गर्भे सिंहव्याघ्रसमाकुले।

दृष्ट्वा शयानं शकुनाः समन्तात् पर्यवारयन् ॥' ( महा० १।७२।१० )

इससे अर्थविकास 'शुभमुहूर्त में हुआ। प्राचीन समय में पक्षी शुभसूचक समझे जाते थे। आजकल भी नीलकंठ आदि पक्षियों का दर्शन शुभ माना जाता है। इन पक्षियों की गति तथा ध्वनि से प्राचीनकाल के लोग भविष्य का अनुमान लगाया करते थे। इसी कारण पक्षी-मात्र के लिए प्रयुक्त 'शकुन' शब्द 'शुभ' का संकेत बन गया।

**शुश्रूषा ( अमर० २।७।३५ )**—'श्रोतुमिच्छा' व्युत्पत्ति से इसका मूल अर्थ 'सुनने की इच्छा' है। 'अतएव शुश्रूषा मां मुखरयति।' ( मुद्रा० ३ )। 'शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा। ऊहाऽपोहोऽर्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥' ( कामन्दकीय ४।२२ ) गौण अर्थ 'सेवा' में यह विकसित हुआ, क्योंकि शुश्रूषु ( सेवा में तत्पर व्यक्ति ) सेव्य ( स्वामी ) के वचनों को सुनने और उनका पालन करने के लिए उत्सुक रहता है और आज्ञा देने वाले के लिए आदरभाव रखता है, अतः 'शुश्रूषा' का तात्पर्य सेवा हो गया।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

**सुवर्णः (अमर० २।९।८६; ९४ )**—शाब्दिक रूप में इस शब्द का मूल अर्थ 'सुन्दर वर्ण' ( रंग ) वाला है। सभी धातुओं में स्वर्ण ही एक ऐसी धातु है, जो नेत्रों को सर्वाधिक आकर्षित करता है। अतः स्वर्ण ही वास्तव में 'सुवर्ण' ( सुन्दर वर्ण का ) है। स्वर्ण से निर्मित आभूषण भी 'सुवर्ण' कहलाये, क्योंकि 'विकृतैर् अपि प्रकृतिसंज्ञा' नियम से धातु से विकृत आभूषण भी वही संज्ञा प्राप्त करते हैं। यही नहीं, स्वर्णमुद्राओं की भी सुवर्ण संज्ञा हम महाभारत, मनुस्मृति तथा अन्य ग्रन्थों में पाते हैं। सुवर्ण का एक अर्थ '८० रत्ती-भर स्वर्ण भार' भी है जो निम्नलिखित उल्लेख में प्राप्त होता है--

"योऽत्र केशवस्य प्रत्युत्थास्यति स मया द्वादशसुवर्ण भारेण दण्ड्यः।"

'दूतवाक्य' 'भसनाटकचक्रम्', पृ० ४४ सी० आर० देवधर का संस्करण।

**दम्पती ( अमर० २।६।३८ )**--दम या ( ग्रीक दोमूस ) गृह का स्वामी ही प्राचीन-काल में दम्पति या दम्पती कहलाता था। यह उस प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का स्मरण दिलाता है, जब कि समाज छोटे-छोटे वर्गों में बँटा था। इसी प्रकार एक अन्य इकाई 'विश' के स्वामी 'विशपति' का भी उल्लेख मिलता है। स्वामी अर्थ में 'पति' अर्थ इसका विकास हुआ और फिर पति-पत्नी के एकात्म होने के कारण दोनों के समुदाय के लिए ही 'दम्पती' शब्द प्रयुक्त होने लगा--

'प्रातर्यथोक्तव्रतपारणान्ते प्रास्थानिकं स्वस्त्ययनं प्रयुज्य।
तौ दम्पती स्वां प्रति राजधानीं प्रस्थापयामास वशी वशिष्ठः'। (रघु० २।७०)

**चित्रम् (अमर० १।५।१७; १।७।१९; ३।३।१७९ )**--इस शब्द का मूल अर्थ आलेख्य या चित्रफलक पर अंकित चित्र है। चित्र में विभिन्न रंगों का प्रयोग होता है, इसलिए 'चित्र' का अर्थ 'विभिन्न रंगों का' या चितकबरा में विकसित हुआ। साथ ही वास्तविक मूर्त या अमूर्त पदार्थ को चित्रानुकृति वास्तविक पदार्थ से इतना साम्य रखती है कि वह दर्शक को आश्चर्यान्वित कर देती है और इस प्रकार एक तीसरा ही अर्थ ( आश्चर्य ) विकसित हुआ। वैभिन्य के कारण 'विचित्र' में यह आश्चर्य की भावना बढ़ जाती है। चित्र का 'आलेख्य' वाला अर्थ आजकल इतना अधिक विकसित हो गया है कि कैमरे से खींचे गए चित्र को भी हम 'चित्र' की संज्ञा दे देते हैं। यही नहीं, सिनेमागृह में दिखायी जाने वाली फिल्म को भी 'चित्र' संज्ञा और सिनेमागृह को 'चित्रमन्दिर' संज्ञा दी जाने लगी है।

**कल्यम्**[1] ( अमर० १।४।२ )--'कल्य' शब्द संस्कृत में प्रातःकाल के अर्थ में प्रयुक्त होता था। अमरकोष कहता है--'कल्यं प्रभाते।' धीरे-धीरे इसका अर्थ विस्तृत

---

१. द्रष्टव्य, अर्थविज्ञान--डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० १०३।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

होकर प्राकृत में 'कल्लं' आने वाले दिन का बोध कराने लगा और फिर हिन्दी में कल शब्द विगत पिछले दिन का तथा आने वाले दिन--दोनों का बोध कराता है। संस्कृत में आने वाले दिन के लिए 'श्वः' शब्द था और विगत के लिए 'ह्यः'। जब प्राकृतकाल में 'कल्लं' शब्द ने जोर पकड़ा तो ये दोनों गायब हो गए। परन्तु कल के बाद आने वाले दिन के लिए 'परश्वः' शब्द चलता रहा। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि प्राकृतकाल में ही पिछले कल के पहले वाले दिन के लिए भी ( परश्वः > परस्सो > परसो > परहो > परओ > परौ ) प्रयोग में आने लगा होगा और आज हिन्दी की कुछ बोलियों ( पहाड़ी और दक्खिनी ) में इसका अर्थ इतना विस्तृत हो गया है कि कल के पूर्व या अनन्तर वाले दिन का ही संकेत नहीं करता, कई-कई दिन पूर्व या उपरान्त वाले दिन का भी बोध कराता है। उदाहरणार्थ, पहाड़ी में 'बेलया तो मिल्यूँ' ( कल ही तो मिला था ) का अर्थ 'हाल ( कुछ दिन पूर्व ) ही में तो मिला था' होता है।

**गोष्ठम्**[1] **( अमर० २।१।३ )**—गोष्ठम् शब्द का अर्थ प्रारम्भ में गाय के रहने का स्थान था। अमरकोष में वही अर्थ सुरक्षित है। अर्थ-विकास के साथ किसी भी पशु के रहने के स्थान के लिए यह प्रयुक्त होने लगा। पतंजलि द्वारा 'महाभाष्य' में दिए गए 'गोगोष्ठम्' तथा 'अविगोष्ठम्' उदाहरण इसके प्रमाण हैं। इसी तरह 'गोयुगम्' का अर्थ था 'गाय या बैल की जोड़ी' परन्तु बाद में उसका अर्थ विस्तृत होकर 'जोड़ी' मात्र रह गया। 'उष्ट्रगोयुगम्' तथा 'खरगोयुगम्' प्रभृति शब्द इसके उदाहरण हैं।

**कुण्डल ( अमर० २।६।१०३ )**--संस्कृत में इसका अर्थ 'कर्णभूषण' है, जो कि अमरकोष में सुरक्षित है। इस आभूषण के गोल आकार के होने के कारण इसका विकसित अर्थ 'गोल वस्तु' हो गया। इसी आधार पर कुंडली मार कर बैठने की अवस्था में साँप का पर्याय 'कुंडलिन्' ( अमर० १।८।७ ) हो गया। हिन्दी में इसी गोलाकृति होने के कारण जन्मपत्रिका को भी कुंडली कहा जाता है।

**दुहितृ ( अमर० २।६।२८ )**—'दुह' ( दुहना ) धातु से निष्पन्न इस शब्द का मूल अर्थ 'दूध दुहने वाला' रहा होगा। आर्यों में यह प्रथा थी कि परिवार की कन्याएँ ही गोदोहन का कार्य करती थीं। अतः 'दुहितृ' शब्द का अर्थादेश होकर 'कन्या, पुत्री' अर्थ प्रचलित हो गया।

**कविः ( अमर०२।७।५ )**--वैदिक भाषा में इस शब्द का अर्थ था विद्वान्, मेधावी 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः' (यजु० ४०-८) 'अध्यापयामास पितॄन् शिशुरांगिरसः

---

१. द्रष्टव्य--'अर्थविज्ञान' : डॉ० बाबूराम सक्सेना, पृ० १०६।



CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कविः' ( मनु० २।१५१ ) 'तां जातिं कवयो॰विदुः ।' ( महा० ४।१।६३ ) और यही अर्थ अमरकोष में भी सुरक्षित है, परन्तु लौकिक संस्कृत तथा आधुनिक हिन्दी में यह शब्द कविता करने वाले व्यक्ति का वाचक हो गया है--

'मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्' ( रघु० १।३ )

'नैकमोजः प्रसादो वा रसभावविदः कवेः ।' ( शिशु० ९।८३ )

यह तो सर्वमान्य सत्य है ही कि 'कवि' शब्द में विद्वान् का मूलरूप अब भी वैसा ही सुरक्षित है ।

**व्रत ( अमर० २।७।३७ )**--वैदिक संस्कृत में इस शब्द का अर्थ था 'कर्म' और 'अन्न' । पतंजलि ने लिखा है--'व्रतञ्च नामाभ्यवद्रष्टार्थमुपादीयते । ( द्रष्टव्य-दम्पती के अन्तर्गत रघु० २।७० ) । परन्तु उत्तरकालीन संस्कृत में यही शब्द 'विशेष नियम' के लिए प्रयुक्त होने लगा और इसका अर्थादेश ऐसा हुआ कि उत्तरकालीन हिन्दी में इसका प्रयोग 'उपवास' के लिए किया जाने लगा ।

**छात्रः ( अमर० २।७।११ )**--इस शब्द की व्युत्पत्ति 'छत्र' शब्द से मानी गई है । पतंजलि ने इसकी व्याख्या करते हुए बताया है कि गुरु छत्र है, क्योंकि वह शिष्य को आच्छादित करता है और छत्र के समान उष्णादिवत् उसके अज्ञान को दूर करता है । छात्र को छत्रवत् गुरु की सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए--'गुरुणा शिष्यश्छत्रवत् छाद्यः । शिष्येण च गुरुश्छत्रवत् परिपाल्यः ।' (महा० ४।४।६२) । इस प्रकार छात्र शब्द शिष्य अर्थ में ही संकुचित हो गया है ।

**कीर्तिः-स्त्रीलिंग ( अमर० १।६।११ )**—इसका मुख्य अर्थ है किसी के अच्छे कार्यों का उल्लेख या चर्चा करना । कीर्तन इसी से सम्बद्ध शब्द है, जिसमें परमात्मा के उपकारों और गुणों की बार-बार चर्चा होती है । पुराणों में इसे दक्ष-प्रजापति की कन्या और धर्म की पत्नी कहा गया है । इसका आशय यह हो सकता है कि जो लोग धर्म या पुण्य के काम अर्थात् लोक-कल्याण करने वाले सत्कर्म करते हैं, उन्हीं की संसार में कीर्ति होती है और उनकी लोग उत्साह, कृतज्ञता और प्रसन्नतापूर्वक चर्चा करते हैं । ऐसे व्यक्ति के प्रति लोगों के मन में बहुत अधिक श्रद्धा और सम्मान का भाव होता है । जैसे भगवान् रामचन्द्र ने राक्षसों का विनाश करके यथेष्ट कीर्ति संपादित की थी । उक्त प्रमाण का बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण कार्य भी कीर्ति के अन्तर्गत ही आता है, जैसे—भगीरथ की कीर्ति गंगा के रूप में वर्तमान है । इससे कुछ और आगे बढ़ने पर किसी बड़े और महत्त्वपूर्ण कार्य का स्मारक चिह्न या रचना भी कीर्ति कहलाती है । जैसे—चित्तौड़ का कीर्तिस्तम्भ ।

**यशस्-( अमर० १।६।११ )**—का मुख्य अर्थ है, सुन्दर आकृति या रूप । पर

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

आगे चलकर यह शब्द किसी बहुत बड़े और गौरवपूर्ण कार्य करने वाले की चारों ओर फैली हुई ख्याति या प्रसिद्धि का वाचक हो गया। कीर्ति और यश में अन्तर यह है कि कीर्ति तो मुख्यतः किसी महत्त्वपूर्ण कार्य की ओर संकेत करती है और यश उसके फलस्वरूप लोक में फैली हुई सुख्याति या सुनाम की ओर। इसके सिवा गौरव और महत्ता की दृष्टि से कीर्ति का क्षेत्र बहुत विस्तृत या व्यापक है और यश का क्षेत्र अपेक्षाकृत संकुचित और सीमित। कीर्ति तो की जाती है और फैलती है पर यश अर्जित किया या कमाया जाता है। इससे 'यश लूटना' मुहावरा भी बनता है, जिसका अर्थ होता है--बिना कोई बहुत बड़ा काम या परिश्रम किये ही और बहुत सहज में यश प्राप्त करना। इसके सिवा एक और मुहावरा भी है—'किसी का यश गाना'। इसका अर्थ है, चारों ओर या प्रायः किसी की उदारता, परोपकारादि की चर्चा करते फिरना।

**श्रेयस्** ( अमर० ३।१।५८ )--के विशेषण रूप में अर्थ है—उत्तम, श्रेष्ठ, मंगल-कारक, शुभ इत्यादि। इसके अतिरिक्त आध्यात्मिक क्षेत्र में इसका अर्थ है--ऐसा धार्मिक कृत्य या साधन जिससे मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सके और जीवन-मरण के बन्धन से सदा के लिए मुक्त हो जाय। अमरकोष १।४।२४ में यह 'धर्म' का पर्याय कहा गया है तथा अमरकोष १।५।६ में 'मोक्ष' का।

यह यश का कुछ छोटा या हलका रूप है और इसकी व्यापकता बहुत कुछ मर्यादित है। यश तो बहुत बड़े काम के कारण होने वाले सुनाम का वाचक है, पर श्रेय किसी कम महत्त्व के कार्य से सम्बद्ध समाज में सीमित सुनाम का सूचक है। प्रस्तुत प्रसंग में इसका अर्थ है--वह स्थिति जिसमें किसी बड़े काम में सफलता प्राप्त करने पर उसके कर्ता के प्रति आस-पास के लोगों में आदर और कृतज्ञता का भाव उत्पन्न होता है, जैसे--इस काम के लिए प्रयत्न तो बहुत से लोगों ने किये पर इसे पूरा करने का श्रेय आप ही को है। अर्थात् यह कार्य सिद्ध करने में आप ही सफल हुए हैं। कुछ लोग ऐसे अवसरों पर श्रेय के बदले यश का भी प्रयोग कर जाते हैं, पर उक्त विवेचन के अनुसार ऐसा करना ठीक नहीं है।

श्रेय का विपर्यय 'प्रेय' कहा गया है, जिसमें मनुष्य केवल इस आशय से धार्मिक कृत्य करता है कि वह स्वर्ग में पहुँचकर वहाँ के सुखों का उपयोग करे। इसलिए श्रेय की अपेक्षा प्रेय निम्नकोटि का माना जाता है।

**संभ्रम, संभ्रान्ति** ( अमर० ३।२।२६ )—हिन्दी में सम्मानित या सम्पन्न व्यक्ति के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। किन्तु अपने मूलरूप में यह कुछ और ही है। इसका निर्माण 'भ्रम' धातु से हुआ था, फिर 'सम्' उपसर्ग और 'क्तिन्' प्रत्यय लग

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

जाने से यह और ही रूप में सामने आया। वैसे इसका मूल अर्थ 'परिभ्रमित' ही है। उदाहरण के लिए 'दूतवाक्य' नाटक का यह अंश द्रष्टव्य है :—'वासुदेवः (प्रविश्य) 'कथं कथं मां दृष्ट्वा संभ्रान्ताः सर्वक्षत्रियाः। अलमलं संभ्रमेण। स्वैरमासतां भवन्तः।[1] परन्तु इसका प्रयोग 'विह्वल' भय तथा 'डरे हुए' के अर्थों में ही हुआ है—'संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्बालिकृतो महान्' ( रामायण ४।८।१४ )। अमरकोष ( १।७।३४ ) में यह संवेग का पर्याय है। अमरकोष ( ३।२।२६ ) में इसका अर्थ है, हर्ष आदि के कारण हुई शीघ्रता, वेग या त्वरा।

मराठी में यह क्षुब्ध, उद्विग्न, आकुल आदि अर्थों में ही प्रयुक्त है। हिन्दी में 'उद्‌भ्रान्त' के इस भाई के इतने ऊँचे उठ जाने का एक विशेष कारण है। प्रारम्भ में बंगला का अत्यधिक प्रभाव हिन्दी पर पड़ा। खूब धूम से अनुकरण हुआ। संभ्रम का अर्थ-प्रयोग किसी भ्रमवश बंगला में गौरव, आदर आदि हो गया—

'गृहमुपगते संभ्रमविधिः' भर्तृहरि नीतिशतक ( ६३ )

संभ्रम के ऊँचा उठते ही उससे बने संभ्रान्त का अर्थ भी बंगला में मान्य, गौरवान्वित, आदरणीय आदि हो गया। यहीं से इस अर्थ का हिन्दी में आगमन हुआ। मराठी में भी इसी प्रकार कई शब्दों के अर्थ विलक्षण हो गए हैं। उनमें से कई तो हिन्दी में प्रचलित हैं। 'शिक्षा' का प्रयोग वहाँ 'दण्ड' के अर्थ में होता है। हिन्दी में भी हम कभी-कभी ऐसी ही शिक्षा देने की बातें करते हैं। परन्तु ऐसी शिक्षा छात्रों के लिए न होकर शत्रुओं के प्रति होती है। अंग्रेजी के 'टीच यू ए लेसन' का भी कुछ ऐसा ही तात्पर्य है।

संस्कृत का 'मधुर' मीठा है, किन्तु इसका बिगड़ा हुआ भोजपुरी रूप 'माहुर' का अर्थ है 'विष'। गुजराती 'मीठु' और मराठी 'मीठ' तो एकदम विपरीत 'नमक' के लिए प्रयोग में आते हैं। उत्तरप्रदेश में 'काका' सामान्यतः 'पिता या चाचा' के लिए प्रयुक्त होता है। पंजाबी में 'काका' का अर्थ एकदम विपरीत 'बच्चा' हो गया है। बम्बई में 'दादा' और 'भैया' तथा बनारस में 'गुरू' की भी यही विरुद्ध दशा हुई। आदरसूचक ये शब्द 'गुण्डे' के पर्याय बन गए हैं। यही नहीं, आदरसूचक 'जी' हिन्दी शब्द भी यदि बहिन अर्थ रखने वाले 'बाई' शब्द के साथ प्रयोग करें तो इसका अर्थ 'वेश्या' होगा और उसके संरक्षक 'उस्ताद' के बाद भी 'जी' ही लगाया जाता है।

इसी प्रकार 'महा' शब्द एक ओर 'महादेव' को देवों में सबसे ऊँचा उठा देता है तो कुछ शब्दों की दुर्गति भी कर देता है। कई शब्दों के साथ 'महा' का निषेध किया गया है। वायु के साथ इसका प्रयोग होने पर 'महावायु' ( दुर्गन्धपूर्ण अपानवायु )

---

१. 'भासनाटकचक्रे दूतवाक्ये', पृ० १६—संस्कृत स्टडी मेड ई०जी० सीरीज—आर० एस० वत्सार एण्ड संस द्वारा प्रकाशित, १९६०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

बन जाता है। महाब्राह्मण भी ऊँचे न होकर अति नीच, मृतक का दान लेने वाले चाण्डाल होते हैं। महामांस नरमांस कहलाता है। इसी प्रकार 'महाप्रसाद' भी मांस ही है।

अंग्रेजी का 'ड्रॉइंग' रूम का 'विड्रॉइंग रूम' है। आज तो 'ड्राइङ्ग रूम' में अतिथि का स्वागत किया जाता है। १६वीं, १७वीं शती में यह एक ऐसा कक्ष था, जिसमें आगन्तुक महिलाएँ भोजन के उपरान्त एकत्र होकर विदा लेती थीं। समय ने इसका सिर ही नहीं उड़ाया, इसका अर्थ भी उलट दिया। गवाक्ष ( अमर० २।२।९ )। संस्कृत में खिड़की को गवाक्ष कहते हैं। गवाक्ष बना है 'गो' और 'अक्ष' से। 'गो' का अर्थ है 'गाय' और 'अक्ष' का अर्थ है 'आँख', अर्थात् गाय की आँख के समान। प्राचीन-काल में भारत में गाय के मुख के समान खिड़कियाँ बनायी जाती थीं और उनके छेद गाय की आँख के समान दीखते थे। अतः खिड़की को 'गवाक्ष' कहा जाने लगा। खिड़की का सम्बन्ध वायु से है। इसीलिए इसे 'वातायन' भी कहते हैं। अमरकोष में गवाक्ष का पर्याय 'वातायन' दिया गया है। अंग्रेजी का 'विण्डो' शब्द हवा से ही सम्बन्धित है।

**सैन्धव ( अमर० २।८।४४; २।९।४२ )**—इसे हिन्दी में सेंधा कहते हैं। अर्थ है, एक विशेष प्रकार का नमक। आर्य जाति जब भारत में आयी उस समय सिन्धु नदी के किनारे घोड़े और नमक विशेष रूप से पाये जाते थे। सिन्धु के कारण ही इन्हें सैन्धव कहा जाने लगा। सिन्धु शब्द घोड़े और नमक—दोनों के लिए व्यवहृत होता है जैसा कि अमरकोष में मिलता है। परन्तु यह नमकविशेष के लिए ही प्रयुक्त होने लगा है।

**गवेषणा ( अमर० २।७।३२ )**—यह शब्द प्रारम्भ में केवल गायों के अन्वेषण का अर्थ रखता था, परन्तु अब किसी भी क्षेत्र में किए गए अन्वेषण को यह संज्ञा दी जाती है। अमरकोष में भी इसका धर्मान्वेषण आदि अर्थ सुरक्षित है। अर्थविकास का यह सुन्दर उदाहरण है।

**घृणा ( अमर० १।७।१८; ३।२।२२; ३।३।५१ )**—इस शब्द का अर्थ पहले दया और घृणा दोनों था और अमरकोष में यह दोनों रूप सुरक्षित हैं। काव्य में दोनों अर्थों के उदाहरण उपलब्ध हैं, यथा—दया :

> मन्दमस्यन्निषुलतां घृणया मुनिरेष वः।
> प्रणुदत्यागतावज्ञं जघनेषु पशूनिव ॥ ( किरात० १५।१३ )

जुगुप्सा। यथा—

तां विलोक्य वनितावधे घृणां पत्रिणा सह मुमोच राघवः ( रघु० ११।१७ )। परन्तु अब केवल घृणा अर्थ में यह संकुचित हो गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

इसी प्रकार इन तीनों विधाओं के अर्थ-परिवर्तन के विभिन्न अन्य उदाहरण भी प्रस्तुत किए जा सकते हैं, जैसे--

**अर्थविकास--**

'गौ का अर्थ 'पृथ्वी' प्रारम्भ में गमनशीलता के आधार पर किया गया। फिर तो साधर्म्य के आधार पर यह गौ ( गाय ) वाणी, इषु, आदित्य, रश्मि आदि अर्थों में विकसित हो गया। प्राय: ये सभी अर्थ वैदिक प्रयोगों में आए हैं, ऐसा निरुक्तकार ( देखिए-निरुक्त २, ५-६ ) का मत है। तिल से बना 'तैल' शब्द अपना मूल अर्थ खोकर सभी प्रकार के तैलों के लिए प्रयुक्त हो रहा है। 'इंगुदीतैल, सर्षपतैल तथा तिलतैल' संज्ञाएँ इसका प्रमाण है।

'अधर' पहले नीचे के ओष्ठ के लिए प्रयुक्त होता था। अर्थ विकसित होकर अब दोनों ओष्ठों के लिए प्रयुक्त होता है और हिन्दी में हमें अधरोष्ठ' रूप भी मिलते हैं।

मुख्यरूपेण बैल के लिए प्रयुक्त पुंगव, वृषभ तथा ऋषभ शब्द उत्कृष्टता गुण के आधार पर श्रेष्ठ के वाचक होकर भरतर्षभ ( भरतों में श्रेष्ठ ) तथा नरपुंगवं ( मनुष्यों में श्रेष्ठ ) इत्यादि रूपों में प्रयुक्त हो रहे हैं।

**अर्थसंकोच--**

'रदन' शब्द का अर्थ काटने वाला, फाड़ने वाला था, क्योंकि दाँतों में यह गुण है, अतः कालान्तर में यह 'दांत' अर्थ में संकुचित हो गया ( अमर० २।६।९१ )।

'नेत्र' का मूल अर्थ 'प्रकाश करने वाला', 'ले जाने वाला' संकुचित होकर 'नयन', आँख में सीमित हो गया है ( अमर० २।६।९३ )।

'सृप्' ( रेंगना ) धातु से बना सर्प शब्द अन्य रेंगने वाले कीटों का अर्थ न देकर केवल 'साँप, 'अहि' अर्थ में सीमित रह गया है।

वेदों मे 'पशु' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, परन्तु वह लौकिक संस्कृत में गाय, बैल आदि पशुओं के अर्थ में ही संकुचित हो गया है। शतपथब्राह्मण ( ६।२।१।२ ) ने पाँच पशुओं का परिगणन करके मनुष्य को भी उनमें से एक माना है। यजुर्वेद ( २३,१७ ) में अग्नि, वायु और सूर्य के लिए भी पशु शब्द का प्रयोग हुआ है। कौषीतकी, शतपथ, तैत्तिरीय आदि ब्राह्मणों में आत्मा, यजमान, अन्न, घी, सोम इत्यादि के लिए भी पशु शब्द का प्रयोग हुआ है। 'संस्कार' शब्द बुद्धि के लिए प्रयुक्त था, अब षोडश संस्कार विशेष में रूढ़ हो गया है। 'मृग' ( मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः ( यजु० ५,२० )। अंग्रेजी डीयर शब्द 'जानवर' अर्थ से 'हिरण' अर्थ में रूढ़ हो गया है।

यास्क ने निरुक्त ३,४,५ में वेदों के नानार्थक शब्दों का उल्लेख किया है, जो लौकिक संस्कृत में एक अर्थ ही में रूढ़ हो गए हैं। उदाहरणार्थ, 'गो' शब्द पृथ्वी,

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

सूर्य, गाय, किरण, वाण आदि में प्रयुक्त होता था, अब केवल 'गाय' का बोधक है। 'काष्ठा' शब्द दिशा, उपदिशा, सूर्य, जल अर्थ देता था, अब 'दिशा' अर्थ में रूढ़ हो गया है। 'शिरस्' शब्द ( आदित्य, सिर ) अब केवल 'सिर' का बोधक है। 'रजस्' शब्द ( ज्योति, जल, लोक ) अब गुणविशेष में रूढ़ हो गया है। 'अन्ध' ( अन्न, अन्धकार, अन्धा पुरुष ) अब केवल अंधकार तथा अंधा अर्थ देता है। 'अर्क' ( देव, भक्त, अन्न, आकवृक्ष ) अब अधिकांशतः अन्तिम अर्थ में संकुचित हो गया है। 'पवित्र' शब्द ( यंत्र, किरण, जल, अग्नि, वायु, सोम, सूर्य, इन्द्र ) इन सभी वैदिक अर्थों को त्यागकर 'पूत', पावन अर्थ देने लगा है। 'अरि' शब्द 'शत्रु' और ईश्वर का पर्याय था, अब वह केवल शत्रु का अर्थ देता है। 'वृक' ( चन्द्र, सूर्य, श्वा, हल, श्रृगाल ) केवल अपने अन्तिम अर्थ में सीमित है। इसी प्रकार अन्य भी अनेक शब्द प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

**अर्थादेश—**

निपुण शब्द पुण्य करने वाले के लिए प्रयोग किया जाता था, परन्तु मुख्यार्थ छोड़कर यह 'चतुर, कुशल, अर्थ देने लगा है। 'पवित्र' शब्द ( यंत्र, किरण, जल, अग्नि, वायु, सोम, सूर्य, इन्द्र ) इन सभी वैदिक अर्थों को त्यागकर 'पूत, पाक' अर्थ देने लगा है।'

'रजस्' शब्द ( ज्योति, जल, लोक ) अब गुणविशेष में रूढ़ हो गया है।

'गन्धर्व' ( अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, वायु, यज्ञ ) शब्द इन सभो से भिन्न जातिविशेष का द्योतक है, जो कि अमरकोष ( १।१।११ ) में सुरक्षित है। मूल अर्थ--

सूर्यो गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः
चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य मरीचयोऽप्सरसः ॥ ( यजु० १८, ३९-४० )

'अप्सरस्' ( औषधि, सूर्यकिरण, नक्षत्र आदि ) से अब 'दिव्य स्त्रियों ( १।१।५२ अमर० ) के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

मुनि से व्युत्पन्न 'मौन' शब्द मुनियों के आचरणविशेष मौन ( चुप रहना ) के लिए प्रयोग होते हुए 'चुप रहना' सामान्य व्यवहार में रूढ़ हो गया है।

'धन्य' शब्द का अर्थ था 'धन के योग्य' परन्तु अब इसका अर्थादेश 'प्रशंसनीय' हो गया है और इसी आधार पर इसके स्त्रीलिंग शब्द 'धन्या' का अर्थ है 'भाग्यवती स्त्री।

'मुग्ध' शब्द मूर्ख अर्थ में आता था, परन्तु अब इसमें बहुत अधिक अर्थादेश हो गया है।

अर्थपरिवर्तन के अध्ययन का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। इसके अतिरिक्त भी अनेकों शब्द इसी प्रकार के अध्ययन के अन्तर्गत आ सकते हैं। यहाँ पर केवल दिशा-मात्र का उल्लेख किया गया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

नवम अध्याय | # लिंग विधान में अर्थ-परिवर्तन

## संस्कृत में लिंगविधान

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा ( वैदिक-लौकिक संस्कृत ) में शब्दों को तीन लिंगों में विभक्त किया गया है—पुंल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग। यह लिंग-विधान प्राचीन भारतीय आर्यभाषा को प्राग्भारत यूरोपीय भाषा से विरासत में प्राप्त हुआ है। यह लिंग-विधान शब्दों के पुरुष-जातीय, स्त्री-जातीय अथवा अचेतन पदार्थों को द्योतित करने के आधार पर ही नहीं हैं, अपितु बहुत कुछ व्याकरणात्मक भी हैं। संस्कृत में तो स्त्री के वाचक शब्दों में ही 'दाराः' पुंल्लिग तथा 'कलत्रम्' नपुंसक लिंग शब्द विद्यमान हैं।

व्याकरणात्मक लिंग-विधान किस प्रकार अस्तित्व में आया होगा, इसके विषय में प्राचीन भारत-यूरोपीय भाषाओं—संस्कृत, ग्रीक, लैटिन बाल्तो-स्लाविक आदि की तुलना कर भाषाशास्त्री इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि प्राग्भारत-यूरोपीय भाषा में एक स्थिति ऐसी भी रही होगी जब कि संज्ञा शब्दों के रूपों में कोई ऐसा सहज वैशिष्ट्य न रहा होगा, जिससे यह कहा जा सके कि अमुक शब्द पुंल्लिग है या स्त्रीलिंग या नपुंसकलिंग। व्यंजनगत शब्दों में पुरुषजातीय पदार्थ के अभिधायक शब्द पुंलिगी समझे जाते रहे होंगे और स्त्री-जातीय पदार्थ के द्योतक शब्द स्त्रीलिंगी, उनकी रूप-प्रक्रिया चाहे जितनी भी समान रही हों। परन्तु अचेतन पदार्थों के वाचक शब्द इस रूप-प्रक्रिया में कैसे पुंलिग या स्त्री-लिंग समझे जाने लगे, यह एक अनबूझ पहेली है। यही बात 'इ' (ई) कारान्त तथा सन्ध्यक्षरान्त शब्दों के बारे में भी है। इन शब्दों के लिंग का बोध उनके अर्थ से अथवा उनके साथ प्रयुक्त सर्वनाम से होता होगा। सर्वनामों और विशेषतः संकेतवाचक सर्वनाम में लिंग-भेद भारत-यूरोपीय भाषा में प्रारम्भ से ही विद्यमान था, जिसका प्रमाण भारत-यूरोपीय 'सो', 'सा', 'तोद्' = संस्कृत 'सः', 'सा', 'तत्' तथा ग्रीक 'हो', 'हे' 'तो' रूप है।[1] सम्भवतः मूल भारत-यूरोपीय में अधिकांश आकारान्त शब्द स्त्री जाति पदार्थों

---

१. जोसेफ राइट ''कम्पैरेटिव ग्रामर ऑफ दि ग्रीक लैंग्वेज'', प्रकाशित १९१२ में भाषाशास्त्रियों के यूरोपीय लिंगविधान विषयक विवेचन का सुन्दर सारांश प्रस्तुत किया है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के वाचक रहे होंगे और 'औ' (= सं० 'अ') कारान्त शब्द पुरुष-जातीय पदार्थों के। अतः आकारान्त तथा अकारान्त (भारत-यूरोपीय ओकारान्त) शब्दों से व्याकरणात्मक स्त्रीलिंग तथा पुंल्लिग का विकास हुआ होगा। पुंल्लिग तथा नपुंसकलिंग में रूपभेद केवल कर्ता-कारक एकवचन को द्योतित करने वाले रूप में ही रहा होगा। कर्मकारक का रूप, जो 'अम्' ( या–म् ) प्रत्यय लगाकर बनता है, क्रिया के कर्म को जो कि निष्क्रिय होता है, द्योतित करता है। अचेतन पदार्थों की निष्क्रियता के कारण सम्भवतः कर्मकारक का रूप अचेतन पदार्थों के सम्बन्ध में कर्ताकारक में भी प्रयुक्त किया गया होगा।[1] इस प्रकार भारत-यूरोपीय भाषा में प्रवर्तित व्याकरणात्मक लिंगविधान को संस्कृत में विरासत में पाया, परन्तु सादृश्य आदि के कारण इसमें पर्याप्त परिवर्तन संस्कृत के साथ ही ग्रीक आदि भाषाओं में भी होते रहे।

पुंल्लिग तथा नपुंसक लिंग में रूप का भेद संस्कृत में केवल प्रथमा विभक्ति तथा द्वितीया विभक्ति के द्वितीया तथा बहुवचन के रूपों में ही है। शेष रूप दोनों के समान ही होते हैं। इस प्रकार शब्द के चौबीस रूपों में से केवल ५ ही रूप नपुंसकलिंग को पुंलिग से अलग करते हैं। पुंलिग तथा नपुंसकलिंग रूपों में इतना कम अन्तर होने के कारण इन दोनों में भ्रम होना स्वाभाविक है और इसलिए इनका व्यत्यय भाषा में होना स्वाभाविक है। इसीलिए लिंगविधान भाषा में इतना परिवर्तनशील रहा है कि वैयाकरणों को भी यह नियमों में बंधता न जान पड़ा। महाभाष्यकार पतंजलि ने तो इस सन्दर्भ में स्पष्ट ही कहा है कि 'लिङ्गमशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिगस्य'[2]—लिंग-विधान को नियमबद्ध नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह लोकाश्रित है। पतंजलि के इस कथन से स्पष्ट विदित होता है कि उनके समय में भी एक ही शब्द लोक में विभिन्न लिंगों में प्रयुक्त होता रहा होगा।

अमरकोषकार ने लिंग के सम्बन्ध में लोक की इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति को अपने कोष में एक ही शब्द को विभिन्न लिंगों में बताकर प्रदर्शित किया है। अमरकोष में शब्दों के जो लिंग बताए गए हैं, वे कहाँ तक केवल लोक-प्रवृत्ति के आधार पर हैं या कहाँ तक अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थों में उस शब्द के प्रयोग पर यह बता सकना तों सम्भव नहीं है, परन्तु सम्भवतः अमरकोष के पूर्व की रचना 'पाणिनीय लिंगानुशासन' से तुलना करने पर विदित होता है कि अमरकोष ने इस लिंगानुशासन का अनुसरण किया है। यह लिंगानुशासन 'पाणिनीय शिक्षा' के समान ही पाणिनि-भिन्न किसी विद्वान् की रचना प्रतीत होती है, जो पाणिनि के व्याकरण-सम्प्रदाय के अनुयायी रहे होंगे। कहा नहीं जा सकता

---

१. द्रष्टव्य; वही, पृ० २९५।

२. अष्टाध्यायी ४।१।३ के व्याख्यान में महाभाष्यकार ने यह बात कही है।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

कि अमरकोष से यह कितनी प्राचीन रचना है। यहाँ उदाहरणस्वरूप इस लिंगानुशासन के कुछ ऐसे सूत्रों के साथ जिनमें सामान्य नियम के अपवाद रूप में किन्हीं शब्दों के लिंग का निर्देश किया है, अमरकोष में दिए उन शब्दों के लिंग की तुलना की जा रही है।

## अमरकोष एवं पाणिनीय लिंगानुशासन

'पाणिनीय लिंगानुशासन' में पहले नियम दिया है 'अन्यूप्रत्ययान्तो धातुः' ॥ ४ ॥ अर्थात् धातु में 'अन्' तथा 'ऊ' प्रत्यय से निष्पन्न शब्द स्त्रीलिंगी होते हैं, जैसे— 'अवनिः', 'चमूः' इत्यादि। इसके अपवादस्वरूप 'अशनिभरण्यरणयः पुंसि च ॥ ५ ॥ 'अशनि', 'भरणि' तथा 'अरणि' शब्दों को पुंलिंग में भी बताया है। अमरकोष में भी इन शब्दों को पुंल्लिग तथा स्त्रीलिंग दोनों में रखा गया है—'अशनिर्द्वयोः' (अमर० १।१।४७), 'अरणिर्द्वयोः' (अमर० २।७।१९)।

मिन्यन्तः ॥ ६ ॥ धातु में 'मि' तथा 'नि' प्रत्यय लगाकर बने शब्द स्त्रीलिंगी होते हैं, भूमिः, ग्लानिः आदि। इसके अपवाद हैं—वह्निवृष्ण्यग्नयः पुंसि ॥ ७ ॥ ''वह्नि,'' वृष्णि'' और 'अग्नि' शब्द पुंल्लिग में हैं। अमरकोष में भी 'वह्नि' 'वृर्ष्णि' और 'अग्नि' पुंलिंग में हैं—'अग्निर्वैश्वानरो वह्निः वीतिहोत्रो धनञ्जयः' (अमर० १।१।५३) तथा 'मेढ्रोरभ्रोरणौर्णायुमेर्षवृष्णय एडके' (अमर० २।९।७६)।

उपर्युक्त सामान्य नियम के ही अपवाद स्वरूप 'श्रोणियोन्यूर्मयः पुंसि' 'च' ॥ ८ ॥ सूत्र में 'श्रोणि' 'योनि' तथा 'ऊर्मि' शब्दों को स्त्रीलिंग के साथ-साथ पुंल्लिग में भी रखा है। अमरकोष में 'श्रोणि' शब्द केवल स्त्रीलिंग में पठित है —— 'कटिः श्रोणिः ककुद्मती' (अमर० २।१०।५), परन्तु 'योनि' और 'ऊर्मि' शब्द स्त्रीलिंग के साथ-साथ पुंल्लिग में भी रखे गये हैं —— 'योनिर्द्वयोः' (अमर० २।६।७६), 'भङ्गस्तरंग ऊर्मिर्वा स्त्रियाम्' (अमर० १।१०।५)।

दुन्दुभिरक्षेषु ॥ ९ ॥ सूत्र में दुन्दुभि शब्द को अक्ष के प्रसंग में ही स्त्रीलिंगी बताया है, अन्यत्र यह पुंल्लिग में है। अमरकोष में यही बात यों स्पष्ट की गयी है —— 'स्याद् भेर्यां दुन्दुभिः पुंसि स्यादक्षे दुंदुभिः स्त्रियाम्' (अमर० ३।३।१३६)।

इसी प्रकार 'नाभिरक्षत्रिये ॥ १५ ॥ सूत्र में 'नाभि' शब्द को तभी स्त्रीलिंगी बताया है, जब वह अक्षत्रियवाचक हो अन्यथा पुंलिंगी होगा। अमरकोष में भी यह बात स्पष्ट की गयी है —— 'पिण्डिका नाभिरक्षाग्रकीलके' (अमर० २।८।५६), परन्तु 'क्षत्रियेऽपि च नाभिर्ना (अमर० ३।३।१३७)।

देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपंकाभिधानानि ॥ ४३ ॥ सूत्र में गिनाये विभिन्न पदार्थों के पर्यायवाचियों को पुंलिंग में रखकर (जैसा कि अमरकोष में भी हैं) इसके अपवादस्वरूप त्रिविष्टपत्रिभुवनेनपुंसके ॥ ४४ ॥ में

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

त्रिविष्टपम् तथा त्रिभुवन को नपुंसकलिंग में रखा है। अमरकोष में भी **'स्त्रियां क्लीबे त्रिविष्टपम्'** ( अमर० १।१।६ ) कहा है, द्यौः स्त्रियाम् ॥ ४५ ॥ द्यौ को स्त्रीलिंग में बताया है, जैसा कि अमरकोष में भी है—'द्यौदिवौ द्वे स्त्रियाम्' ( अमर० १।१।६ ) इषुबाहू स्त्रियां च ॥ ४६ ॥ अमरकोष में भी 'इषुर्द्वयोः' ( अमर० २।८।८६ ) तथा "द्वौ परौ द्वयोः भुजबाहू....." ( अमर० २।६।७९–८० ) में यही बात कही गयी है।

इस प्रकार अमरकोष का लिंग-विधान 'पाणिनीय लिंगानुशासन' से मेल खाता है। इस 'पाणिनीय लिंगानुशासन' के अतिरिक्त संस्कृत में और भी अनेक लिंगानुशासन मिलते हैं, जैसे वररुचिकृत 'लिंगवृत्ति'[1] शाकटायनकृत 'लिंगानुशासन',[2] वामनकृत 'लिंगानुशासन'[3] जैनाचार्य हेमचन्द्र प्रणीत 'लिंगानुशासन',[4] हर्षवर्धनकृत 'लिंगानुशासन'[5]

---

१. इसे लिंगविशेषवृत्ति, लिंगविशेषविधि या लिंगानुशासन संज्ञा भी दी गई है। म०म० पं० वेंकटराय शर्मा ने अपने हर्षवर्धन के लिंगानुशासन के परिशिष्ट में 'वररुचि-लिंगविशेषविधि' का भी सम्पादन किया है।

२. पं० वेंकटराम शर्मा ने शाकटायन के लिंगानुशासन का भी सम्पादन किया है। यज्ञ शर्मा की 'चिन्तामणि' टीका सहित प्रकाशित शाकटायन व्याकरण के परिशिष्ट में भी यह जुड़ा है। डा० आटो फ्रांक ने जर्मनभाषा में अनुवाद सहित इसका सम्पादन किया है। यह पद्यबद्ध है तथा इसमें ७० श्लोक हैं।

३. श्री चिम्मनलाल डी० दयाल की स्वोपज्ञवृत्ति सहित इसका सम्पादन सर्वप्रथम गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज से १९१२ में हुआ था। इसमें ३० श्लोक लिंग-विधायक नियमों से सम्बद्ध हैं तथा ४ श्लोक उपसंहारात्मक और इस प्रकार कुल ३४ श्लोक हैं। वामन ने अपने इस ग्रन्थ में व्याडि, वररुचि, चन्द्र तथा जैनेन्द्र का स्मरण किया है—

व्याडिप्रणीतमथ वाररुचं सचान्द्रम्,
जैनेन्द्रलक्षणगतं विविधं तथान्यत् ॥ श्लोक ३२ ॥

४. यह श्लोकबद्ध ग्रन्थ है। इसमें कुल १३९ श्लोक हैं।

५. डा० आटो फ्रांक ने सर्वप्रथम इसका सम्पादन किया था। पृथ्वीश्वर की सर्व-लक्षणा टीका सहित यह मद्रास विश्वविद्यालय ग्रन्थांक ४, सन् १९३० में प्रकाशित है। यह पद्यबद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना श्रीवर्धन के आत्मज हर्षवर्धन ने व्याडि, शंकर, चन्द्र, वररुचि, विद्यानिधि एवं पाणिनि के लिंगानुशासनों को भलीभाँति विचार करके की है, ऐसा स्वयं ग्रन्थकार के इस कथन से प्रतीत होता है कि—

व्याडेः शंकरचन्द्रयोर्वररुचेः विद्यानिधेः पाणिनेः
सूक्तांल्लिंगविधीन् विचार्य सुगमं श्रीवर्धनस्यात्मजः।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

तथा दुर्गकृत 'लिंगानुशासन'।[1]

## अमरकोष–हर्षवर्धन तथा दुर्गसिंह के लिंगानुशासन

अमरकोष का लिंग-विधान आगे चलकर कितने अंश में अन्य लिंगानुशासनकर्ताओं को मान्य हुआ, इसके निदर्शन के लिए यहाँ अमरकोष के साथ हर्षवर्धन तथा दुर्ग के लिंगानुशासनों की तुलना प्रस्तुत है। ये दोनों लिंगानुशासन अमरकोष के बहुत बाद के हैं। हर्षवर्धन का लिंगानुशासन सातवीं शती के उत्तरार्द्ध की रचना[2] तथा दुर्गसिंह की कृति ९००–९५० ई० के बीच[3] की मानी गई है।

### संकेतचिह्न

पु० —पुंल्लिग
स्त्री० —स्त्रीलिंग
पु०न०—पुन्नपुंसकलिंग
त्रि० —त्रिलिंग

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| अंस | पु०न० | न० | पु०न० |
| अंकुश | पु०न० | पु० | पु०न० |
| अंगार | पु०न० | पु० | पु०न० |
| अणिमा | स्त्री० | पु० | पु० |

श्रव्यं व्यापि च हर्षवर्धन इदं स्पष्टीकृतप्रत्ययम्
लिंगानामनुशासनं रचितवानत्यर्थसंसिद्धये ॥
(हर्षवर्धन लिंगानुशासन श्लोक, ९७)

१. दत्तात्रेय गंगाधर कोपरकर ने इसका सम्पादन करके १९५३ में डेकन कालेज, पूना से प्रकाशित कराया। इस ग्रन्थ में दुर्ग की स्वोपज्ञवृत्ति भी है। ग्रन्थ श्लोकबद्ध है, इसमें ८७ श्लोक हैं। इस ग्रन्थ के अन्त में लिखा है कि जिसके नाम दुर्ग सिंह, दुर्गात्मा, दुर्ग एवं दुर्गप हैं, उसी ने यह लिंगवृत्ति बनाई है——

दुर्गसिंहोऽथ दुर्गात्मा दुर्गो दुर्गप इत्यपि।
यस्य नामानि तेनैव लिंगवृत्तिरियं कृता ॥ श्लोक ८७ ॥

२. द्रष्टव्य——हर्षवर्धनकृत लिंगानुशासन, पृथ्वीश्वर की 'सर्वलक्षणा' व्याख्योपेत, पं० वी० वेंकटराय शर्मा विद्याभूषण द्वारा मद्रास युनिवर्सिटी-संस्कृत सीरीज–४, १९३१ में प्रकाशित की भूमिका, पृ० १३।

३. द्रष्टव्य——दुर्गसिंह कृत लिंगानुशासन, डेकेन कालेज, पूना से १९५२ ई० में दत्तात्रेय गंगाधर कोपरकर द्वारा प्रकाशित, की भूमिका, पृ० १२।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| अणु | पु० | पु०न० | — |
| अद्भुत | त्रि० | न० | — |
| अनीक | पु०न० | न० | न०पु० |
| अभिधान | न० | पु० | पु०न० |
| अम्बरीष | न० | — | न० |
| अरणि | पु०स्त्री० | स्त्री० | पु०स्त्री० |
| अरण्य | न० | — | पु०न० |
| अरत्नि | स्त्री०पु० | — | स्त्री० |
| अर्म | पु०न० | पु० | पु०न० |
| अश्मन् | पु० | न० | पु० |
| अष्टापद | पु०न० | न० | — |
| असन | पु० | — | पु०न० |
| आखु | पु० | स्त्री० | — |
| आतंक | पु० | — | पु०न० |
| आत्मज | पु० | पु०स्त्री०न० | — |
| अलु | स्त्री० | न० | — |
| आश्चर्य | न० | न० | — |
| आसन | न० | — | पु०न० |
| इषुधि | पु०स्त्री० | स्त्री० | पु०स्त्री० |
| उक्त | त्रि० | न० | — |
| उटज | पु०न० | — | पु० |
| उडु | न०स्त्री० | — | स्त्री० |
| उडुप | पु०न० | न० | — |
| उत्पल | न० | — | पु०न० |
| उदपान | न०पु० | न० | — |
| उद्यम | पु० | — | पु०न० |
| उद्यान | न० | — | पु०न० |
| उपल | पु० | — | — |
| उपस्थ | पु०न० | पु० | स्त्री० |
| ऊरु | पु० | — | — |
| उस्रा | स्त्री० | पु० | |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| उशीर | न०पु० | न० | -- |
| ऊर्मि | पु०स्त्री० | पु० | — |
| ऊषर | त्रि० | न० | -- |
| ऐरावत | पु० | -- | पु०न० |
| ओदन | पु०न० | पु० | — |
| औषध | न० | — | पु०न० |
| ककुद | पु०न० | न० | पु०न० |
| कक्कण | न० | पु० | -- |
| कंकाल | पु० | न० | — |
| कट | स्त्री० | पु० | पु०स्त्री०न०पु०स्त्री० |
| कटक | पु०न० | न० | — |
| कंचुक | पु० | — | न० |
| कण्टक | पु०न० | पु० | पु०न० |
| कन्द | पु० | न० | पु० |
| कन्दर | पु०स्त्री० | — | पु०न०, पु०स्त्री० |
| कन्दु | पु०स्त्री० | पु० | — |
| कन्दुक | पु० | न० | -- |
| कपाल | पु०न० | न० | पु०न० |
| कमण्डलु | पु०न० | पु० | पु०न० |
| करक | पु० | पु०न० | — |
| करीर | पु०न० | न० | — |
| करीष | पु०न० | पु० | पु० न० |
| कर्पट | पु० | -- | पु०न० |
| कर्मन् | न० | -- | पु०न० |
| कलभ | पु० | — | न० |
| कलल | पु०न० | पु० | पु०न० |
| कलश | त्रि० | पु० | त्रि० |
| कल्क | पु०न० | न० | पु०न० |
| कवच | पु०न० | न० | पु०न० |
| कषाय | पु०न० | पु० | — |
| काण्ड | पु०न० | न० | — |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| कान्तार | न० | न० | पु०न० |
| कार्पास | त्रि० | पु० | — |
| कार्षापण | पु० | पु०न० | — |
| कासार | पु० | पु०न० | — |
| किंजल्क | पु०न० | न० | — |
| किरीट | पु०न० | न० | न० |
| किसलय | पु०न० | न० | न० |
| कील | पु०स्त्री | पु० | पु० |
| कुंज | पु०न० | पु० | — |
| कुंजर | पु० | — | पु०न० |
| कुड्मल | पु०न० | न० | — |
| कुणप | पु० | — | पु०न० |
| कुण्डल | न० | — | पु०न० |
| कुलिश | न० | — | पु०न० |
| कुल्य | न० | — | पु०न० |
| कुसुम | न० | — | पु०न० |
| कूर्च | पु०न० | पु० | — |
| कृपाण | पु० | पु०स्त्री० | — |
| केदार | पु० | — | पु०न० |
| केलि | स्त्री० | पु० | पु० |
| केसर | पु०न० | न० | — |
| कोटर | पु०न० | न० | — |
| कोरक | पु० | न० | — |
| कोलाहल | पु० | न० | — |
| क्षारक | पु० | न० | — |
| क्षीर | न० | — | पु०न० |
| खण्ड | पु०न० | पु० | पु०न० |
| खल | त्रि० | — | पु०न० |
| खलीन | पु०न० | न० | पु०न० |
| गार्हपत्य | पु० | — | न० |
| गुल्म | पु० | — | पु०न० |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| गुंजन | पु० | न० | — |
| घट | पु०स्त्री० | पु० | पु०स्त्री०, पु० |
| घृष्टि | पु० | स्त्री० | — |
| चमस | पु०न० | पु० | पु०न० |
| चषाल | पु० | — | पु०न० |
| छत्र | न० | — | पु०न० |
| जम्बाल | पु० | न० | — |
| जम्बु | न० | न०— | पु०न० |
| जीवातु | पु०न० | न० | — |
| जृम्भ | त्रि० | — | पु०न० |
| तिमिर | न० | — | पु०न० |
| तीर्थ | न० | — | पु०न० |
| तृण | न० | — | पु०न० |
| तोमर | पु०न० | पु० | पु०न० |
| दाड़िम | त्रि० | — | पु०न० |
| दिन | न० | — | पु० |
| दिवस | पु०न० | पु० | — |
| दीप | पु० | — | पु०न० |
| दैव | न० | — | पु०न० |
| द्वापर | पु० | न० | — |
| ध्वज | पु०न० | पु० | — |
| नट | पु० | — | पु०न० |
| नल्ब | पु०न० | न० | — |
| नारिकेल | पु० | — | न० |
| निकर | त्रि० | — | पु०न० |
| निदाघ | पु० | — | पु०न० |
| नीड | पु०न० | न० | — |
| पक्कण | पु० | न० | — |
| पंक | पु०न० | पु० | पु०न० |
| पट | पु०न० | पु० | पु०न० |
| पटल | न० | — | पु०न० |
| पटह | पु० | — | पु०न० |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| पण्य | त्रि० | न० | न० |
| पलाल | पु०न० | न० | पु०न० |
| पल्लव | पु० | पु०न० | — |
| पल्वल | न० | पु०न० | — |
| पात्र | न० | त्रि० | त्रिलिंग |
| पार | न० | — | पु०न० |
| पारद | पु० | न० | — |
| पार्ष्णि | पु० | स्त्री० | स्त्री० |
| पीठ | न० | स्त्री०न० | न० |
| पुरु | त्रि० | पु० | — |
| पुलिन | न० | — | पु०न० |
| पुस्त | न० | पु० | पु०न० |
| प्रोथ | पु०न० | पु० | पु०न० |
| फल | न० | — | पु०न० |
| बाण | पु० | — | पु०न० |
| विम्ब | पु०न० | न० | पु०न० |
| बिस | पु०न० | न० | न० |
| बुस | न० | पु० | — |
| भवन | न० | — | पु०न० |
| भुक्त | त्रि० | न० | — |
| भुवन | न० | — | पु०न० |
| भूर्ज | पु० | पु०न० | — |
| भैक्ष | त्रि० | न० | न० |
| भ्राष्ट्र (भ्राष्ट) | पु० | न० | — |
| मंगल | न० | — | पु०न० |
| मठ | पु० | त्रि० | त्रिलिंग |
| मण्डप | पु०न० | पु० | पु०न० |
| मन्दिर | न० | स्त्री०न० | — |
| मस्तक | पु०न० | पु० | पु०न० |
| मुकुल | पु०न० | न० | पु०न० |
| मुख | न० | — | पु०न० |
| मुष्क | पु० | पु०न० | पु०न० |


CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| मुहूर्त | पु०न० | पु० | — |
| मूल | न० | — | पु०न० |
| मृत्यु | पु०न० | पु० | स्त्री०पु० (व्याडि) |
| मौलि | पु०स्त्री० | पु० | पु० |
| यष्टि | स्त्री०पु० | स्त्री० | स्त्री०पु० |
| यान | न० | — | पु०न० |
| यावक | पु० | न० | — |
| युगल | न० | स्त्री०न० | — |
| युवन् | त्रि० | पु० | — |
| यौवन | न० | — | पु०न० |
| रस | पु० | — | पु०न० |
| रेणु | पु०स्त्री० | पु० | पु०स्त्री० |
| रै | पु० | स्त्री० | पु० |
| लाज | पु० | पु० | पु० |
| लोल | त्रि० | न० | — |
| वट | पु० | पु०न० | — |
| वप्र | पु०न० | पु० | पु०न० |
| वर्धमाना | पु० | न० | — |
| वलय | पु०न० | न० | पु०न० |
| वल्कल | पु०न० | न० | पु०न० |
| वल्मीक | पु०न० | पु० | पु०न० |
| वस्ति | पु०स्त्री० | पु० | पु०स्त्री० |
| वार | पु० | पु०न० | पु०न० |
| वस्त्र | न० | — | पु०न० |
| वास्तु | पु०न० | न० | पु०न० |
| विटप | पु०न० | पु० | पु०न० |
| वितान | पु०न० | न० | पु०न० |
| विहायस् | पु० | न० | — |
| वीतंस | पु० | न० | — |
| वृक | पु० | न० | — |
| वृषण | पु० | पु०न० | पु० |
| शकट | पु०न० | न० | पु०न० |

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

| शब्द | अमरकोष | हर्षवर्धन | दुर्गसिंह |
|---|---|---|---|
| शकल | पु०न० | न० | पु०न० |
| शक | न० | पु०न० | न० |
| शम्बल | पु०न० | न० | पु०न० |
| शयन | न० | — | पु०न० |
| शरीर | न० | — | पु०न० |
| शव | पु०न० | न० | न० |
| शष्प | न० | पु० | न० |
| शाटक | पु०न० | पु० | पु०न० |
| शाल | पु० | — | पु०न० |
| शिशिर | पु०न० | न० | पु०न० |
| शिश्न | पु० | न० | — |
| शील | न० | — | पु०न० |
| शुक्त | पु० | न० | न० |
| शूर्प | पु०न० | पु० | पु०न०, पु० |
| शेखर | पु० | — | पु०न० |
| शैवल, शैवाल | पु० | न० | पु० |
| श्रेणि | पु०स्त्री० | स्त्री० | पु०स्त्री० |
| समय | पु० | — | पु०न० |
| सुवर्ण | न० | — | पु०न० |
| सूत्र | न० | — | पु०न० |
| स्नायु | स्त्री० | स्त्री०, न० | स्त्री० |
| स्नेह | पु० | — | पु०न० |
| हस्त | पु० | — | पु०न० |

इस तुलनात्मक विवरण से स्पष्ट है कि अमरकोष के बाद भी लिंग-व्यवस्था लोक-व्यवहार पर आश्रित होने के कारण बदलती रही है। स्वयं अमरकोषकार ने अपने लिंगादिसंग्रहवर्ग के अन्त में अपनी तालिका में अपरिगणित शब्दों का लिंग शिष्ट-प्रयोग से जानने को कहा है।[1] रूप-सादृश्यादि कारणों से शब्दों के लिंग के विषय में परिवर्तन होते रहे हैं। इसलिए महाभाष्यकार ने स्पष्ट कह दिया था कि लिंग-व्यवस्था लोकाश्रित होने के कारण अनुशासन में नहीं बाँधी जा सकती और इसीलिए पाणिनि भी अपनी अष्टाध्यायी में लिंग-व्यवस्था को नियम-बद्ध न कर सके।

●

१. 'परं विरोधे' शेषं तु 'ज्ञेयं शिष्टप्रयोगतः' ( अमर० ३।५।४६ )।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## दशम अध्याय — समाहार

शब्दों के व्युत्पत्तिज अर्थ को जानने के लिए जहाँ एक ओर व्याकरण की महती आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर किसी शब्द के विभिन्न अर्थ से प्रयोग जानने के लिए कोष की आवश्यकता अपरिहार्य हो जाती है। संस्कृत कोषसाहित्य के अन्तर्गत अमरकोष प्राचीनकाल से प्रामाणिक माना जाता रहा है। संस्कृत व्याकरण के क्षेत्र में जो स्थान पाणिनि की अष्टाध्यायी को प्राप्त है, उसके समान ही संस्कृत कोषों में अमरकोष का स्थान है। एक प्राचीन उक्ति में कहा गया है—

'अष्टाध्यायी जगन्माताऽमरकोषो जगत्पिता।'

प्राचीनकाल से संस्कृत की शिक्षाप्रणाली में अष्टाध्यायी और अमरकोष को कंठस्थ कर लेने की परम्परा रही है।

अमरसिंह की यह अमरकृति भारत में प्राचीनकाल से ही अपने क्षेत्र की अपृच्छनीय अधिकारिणी रही है तथा सर्वाधिक प्रचलन में है। संस्कृत के विभिन्न मौलिक ग्रन्थों के टीकाकारों ने इस अपूर्व कृति को यत्र तत्र स्वेच्छापूर्वक 'नामलिंगानुशासन' शीर्षक से उद्धृत किया है। नामलिंगानुशासन से तात्पर्य ऐसी कृति से है जो शब्दों (नामों) तथा उसके लिंगों को सनियम प्रस्तुत करे। अमरसिंह के पूर्ववर्ती कुछ कोषों में, जैसे 'उत्पलिनी' कोष में, केवल शब्दों को प्रस्तुत किया गया है। वररुचि प्रभृति पूर्ववर्ती कोषकारों ने केवल लिंगविधान का प्रतिपादन किया है। अतः अमरकोष में नामों के साथ-ही-साथ इसके विभाग १,१,२–५ में आए सम-लिंगविधायक नियमोल्लेख के कारण भी इस कोष की 'नामलिंगानुशासन' संज्ञा सार्थक सिद्ध होती है। इस कृति की 'त्रिकाण्ड' भी एक संज्ञा है, क्योंकि यह तीन बृहत् विभागों 'काण्डों' में विभक्त है। परन्तु सर्वाधिक प्रचलित नाम है 'अमरकोष'। ग्रन्थकार के नाम के आधार पर अमर-भाषा के शब्दों का संग्रह होने के कारण इसकी यह संज्ञा उचित और उपयुक्त ही है। इस अमरकृति की ख्याति का अनुमान डा० आफ्रेट के 'कैटेलोगस-केटेलोगोरम' के अन्तर्गत परिगणित इसकी ४० टीकाओं के आधार पर लगाया जा सकता है।

वैदिक निघण्टु के उपरान्त तथा अमरकोष के पूर्व संस्कृत में कोषों के टीकाकारों के उल्लेखों में जो विभिन्न कोष तथा कोषकारों के उद्धरण मिलते हैं, उनके अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इनमें या तो नामानुशासन ही था या लिंगानुशासन। यदि कुछ कोषों में दोनों का समन्वय भी था तो वे इतने अव्यवस्थित तथा क्रमहीन थे कि उनके

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu. Collection.

समुचित उपयोग में कठिनाई पड़ सकती थी। अमरसिंह ने अपने पूर्व समस्त कोषों का उपयोग कर उनका समाहार अपने कोष में किया। निघण्टु से उसने सर्वप्रथम कोष को 'काण्डों' और वर्गों में बाँटने का आधार लिया। यद्यपि पूर्व के कुछ कोष लिंगानुसार पुंस्काण्ड, स्त्रीकाण्ड तथा नपुंसककाण्डों में विभक्त रहे होंगे[1], तथापि अर्थ तथा क्रम के अनुसार कोष में शब्दों को रखने की वैज्ञानिक विधा सर्वप्रथम अमरकोषकार ने ही प्रचलित की और यही विधा हमें बाद में संस्कृत कोषों में सर्वत्र प्रयुक्त मिलती है। उदाहरण के लिए हलायुध भट्ट की 'अभिधानरत्नमाला', पुरुषोत्तमदेव का 'त्रिकाण्डशेष', शाश्वतकृत 'अनेकार्थसमुच्चय', यादवप्रकाशकृत 'वैजयंती' तथा सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र का 'अभिधानचिंतामणि' इत्यादि कोष देखे जा सकते हैं। इन कोषकारों ने अमरकोष के इस प्रभाव को स्वीकार भी किया है। 'अभिधानरत्नमाला' के कर्ता हलायुध भट्ट ने, जिनका समय दसवीं शती का उत्तरार्द्ध है, अपने कोष को मुख्यतया अमरकोष व आंशिक रूप से वररुचि, भागुरि तथा वोपालित के कोषों से प्रभावित बताया।[2] इस कोष में कुल ५ काण्ड हैं। प्रथम चार काण्डों में क्रमशः स्वर्ग, भूमि, पाताल एवं सामान्य विषयक तथा पंचम काण्ड में अव्यय व अनेकार्थी शब्द संकलित हैं। लिंगनिर्देशन, रूपभेद के द्वारा किया गया है। यादवप्रकाशकृत वैजयन्तीकोष (११वीं शती ई०) दो खण्डों में विभक्त हैं। इन दोनों खण्डों से युक्त कोष अमरकोष से अधिक विस्तृत एवं पूर्ण है। इसका प्रथम खण्ड समानार्थी है, जिसमें पाँच खण्ड हैं—स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूमि, पाताल तथा सामान्य। द्वितीय खण्ड नानार्थी है। इसमें भी तीन काण्ड हैं—द्व्यक्षर, त्र्यक्षर तथा शेष। अनेकार्थ अंश में शब्द आदि वर्णक्रम पर नियोजित है। अमरकोष से काफी बाद की रचना होने के कारण अपने शब्दों के इस प्रकार के वैज्ञानिक विभाजन की दृष्टि से यह रचना मौलिक एवं स्तुत्य चाहे हो, इसका मूल आधार तो अमरकोष ही है। हेमचन्द्र ( १०८८–११७५ ई० ) के कोष 'अभिधानचिन्तामणि' में ६ काण्ड हैं—देवाधिदेव, देव, मर्त्य, भूमि, नरक और सामान्य।

नामपदों के सम्बन्ध में अमरकोष की पर्याय, अनेकार्थ तथा व्याख्याशैली बाद के कोषों में भी प्राप्त होती है तथा अमरपूर्व के सम्भावित कोषों के उद्धरणों में भी मिलती है।

---

१. द्रष्टव्य—प्रबन्ध की भूमिका में 'माला तथा मालाकार' का उल्लेख 'इति पुंस्काण्डेऽमरमाला।' 'कंकतिका प्रसाधनीति' स्त्रीकाण्डेऽमरमाला।'.

२. इयममरदत्तवररुचिभागुरिवोपालितादि शास्त्रेभ्यः।
अभिधानरत्नमाला कविकण्ठविभूषणार्थमुद्ध्रियते॥
—हलायुध, भूमिकाण्ड, छन्द ८

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

अमरसिंह ने अपने कोष में 'नाम' के साथ जो पद 'लिंगानुशासन' जोड़ा उसका पूर्ण निर्वाह भी किया। यह अमरकोष की बड़ी विशेषता है कि उसमें नामपदों के परिगणन के साथ-ही-साथ रूपभेद के अनुसार लिंगभेद भी रचित किया गया है। इस लिंगनिर्देश के नियम कोषकार ने कोष के प्रारम्भ में ही दे दिए हैं। इस प्रकार कोष में अर्थद्योतन के साथ-ही-साथ लिंगज्ञान भी होता चलता है। शब्दपर्याय अथवा अर्थज्ञान के लिए कोष तथा लिंगज्ञान के लिए लिंगानुशासन की पृथक्-पृथक् आवश्यकता इस प्रकार स्वतः समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार अमरकोषकार ने अपने कोष में किसी नामपद के अव्यय होने तथा एकवचन, द्विवचन या बहुवचन में प्रयुक्त होने का भी निर्देश किया है। लिंग के सम्बन्ध में किसी पद के एक, दो या तीनों लिंगों में होने का स्पष्ट ज्ञान हमें अमरकोषकार कराता चलता है। अमरकोष के इस सुव्यवस्थित व्याकरणिक प्रस्तुतीकरण का पूर्ण अभाव यद्यपि पूर्व के कोषों में नहीं है, तथापि उन कोषों में प्राप्त ये व्याकरण-तत्त्व अमरकोष की भाँति समन्वित रूप में मिलते हैं। अमरकोष की इस विशेषता की उत्कृष्टता और भी बढ़ जाती है, जब हम बाद के कोषों में इन वैज्ञानिक व्याकरण-तत्त्वों को अमरकोष के अनुकरण पर प्रयुक्त पाते हैं। उदाहरण के लिए महेश्वर द्वारा विरचित 'विश्वप्रकाश' ( ११११ ई० ) एक नानार्थी कोष है, जिसका नियोजन शब्द के अन्तिम वर्ण के आधार पर किया गया है। इसमें रूपभेद द्वारा ही लिंग का निर्देश है।

अमरकोषकार ने अपने कोष के तृतीय 'सामान्यकाण्ड' के तृतीय नानार्थवर्ग में अनेकार्थी शब्दों का नियोजन अन्त्य वर्ण के अनुसार किया है। एक व्यंजन से अन्त होने वाले किसी शब्द के विभिन्न अर्थ बताने के लिए प्रस्तुत यह वैज्ञानिक प्रणाली जहाँ एक ओर बाद के कोषों में अधिकाधिक गृहीत हुई, दूसरी ओर कोष के अध्येताओं के सौकर्य के लिए भी उपयोगी सिद्ध हुई। इसी काण्ड के चतुर्थ वर्ग में अमरसिंह ने जो अव्ययपद प्रस्तुत किए हैं, वे भी महत्त्वपूर्ण हैं। ये अव्ययपद भी अनेकार्थ शैली में प्रस्तुत किए गए हैं। इस प्रकार का प्रस्तुतीकरण अमरकोष के अनुकरण पर कालान्तर के कोषों में देखा जा सकता है। मेदिनी का 'नानार्थशब्दकोष' ( १२००–१२७५ ई० ) इसका उदाहरण है। महेश्वरकृत 'विश्वप्रकाश' कोष की भाँति यह भी एक अनेकार्थीकोष है, जिसमें अन्तिम वर्ण के अनुसार शब्दों का चयन किया गया है। कोष के अन्त में अव्यय भी दिए गए हैं। यादवप्रकाश के वैजयन्तीकोष ( ११वीं शती ई० ) में भी ये दोनों विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। जैन विद्वान् हेमचन्द्र के 'अभिधानचिन्तामणि' कोष तथा केशवस्वामी के 'नानार्थार्णवसंक्षेप' ( १२वीं १३वीं शती के लगभग ) के नाम भी इसी कोटि में रक्खे जा सकते हैं, जिनपर अमरकोष की उक्त पद्धति की छाप है। मंख द्वारा विरचित 'अनेकार्थकोष' ( ११वीं, १२वीं शती ई० ) शब्दनियोजन

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

के आधार पर अमरकोष पर ही आधृत है, जिसे कोषकार ने स्वयं स्वीकार किया है।[1]

इस प्रकार मुख्यतः पर्यायवाची कोष होते हुए भी अमरकोष में तृतीय काण्ड के 'नानार्थवर्ग' के द्वारा अनेकार्थी कोषों की शैली के लिए आधार प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है तथा 'लिंगादिसंग्रहवर्ग' के द्वारा शब्दों के लिंग प्रदर्शित करने वाले कोषों का भी मार्गदर्शन किया गया है। नानार्थवर्ग के आधार पर ही अमरसिंह ने वर्णादिक्रम की शैली का भी निर्देश कर दिया है। पद्यबद्ध रचना होने के कारण अमरकोषकार के लिए यह सम्भव नहीं था कि वे पर्यायों का संकलन उनके प्रयोग की अधिकता या न्यूनतम के क्रम से कर पाते अथवा वर्णादिक्रम से कर पाते। अतः पर्यायवाचियों को उन्होंने किसी क्रमविशेष का ध्यान न रखते हुए केवल छन्दनिर्वाह की दृष्टि से रख दिया है। परन्तु एक ही वर्ग के अन्तर्गत विभिन्न पदार्थों के पौर्वापर्य का जो क्रम है, उसमें प्रायः अमरकोषकार पदार्थों के आपेक्षिक महत्त्व तथा तत्कालीन समाज में उनके क्रम का ध्यान रखते हुए प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए स्वर्ग में देवगणों के क्रम में पौराणिक क्रम, ब्रह्मा-विष्णु-महेश का क्रम, अमरकोषकार ने सुरक्षित रखा है।

अपनी इसी सर्वांगपूर्णता की विशेषता के कारण अमरकोष संस्कृत भाषा से इतना अधिक सम्बद्ध हो गया है कि जहाँ-जहाँ संस्कृत भाषा का प्रचार हुआ, अमरकोष का प्रचलन वहीं हुआ। संस्कृत अध्येताओं को अन्य कोषों का आश्रय वहीं लेना पड़ता है, जहाँ कि अमरकोष मौन पाया जाता है। परन्तु यह भी अमरकोष का दोष नहीं है। संस्कृत जैसी व्यापक भाषा के सभी प्रचलित शब्दों का संकलन एक ही कोष के अन्तर्गत कर देना अत्यन्त दुष्कर ही है। भाषा के प्रवाह में प्रवहमान शब्दों में से कालक्रम में कुछ शब्दों का छूट जाना भी अस्वाभाविक नहीं है। यही कारण है कि आज भी अमरकोष को वही लोकप्रियता और सम्मान प्राप्त है जो अमरवाणी को प्राप्त है।

●

---

१. भागुरिकात्यहलायुधदुर्गामरसिंहशाश्वतादिकृतान्।
कोषान्निरीक्ष्य निपुणं धन्वन्तरिनिर्मितं निघण्टुं च ॥
(अनेकार्थकोष, छंद २)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

# ग्रन्थ-सूची

## ( हिन्दी )


(१) अ–अमरकोष—महेश्वर टीका सहित, निर्णयसागर प्रकाशन, बम्बई, दसवाँ संस्करण, १९६९ ई० ।

ब–अमरकोष—मूल पाठ—वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पणशीकर द्वारा संपादित, निर्णयसागर प्रेस, ११वाँ संस्करण, १९४० ई० ।

(२) ,, —'मणिप्रभा' हिन्दी व्याख्योपेत, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, द्वितीयावृत्ति, १९५७ ई० ।

(३) ,, —महेश्वरटीका सहित, वी० झलकीकर, छठा संस्करण, निर्णयसागर प्रेस, १९०७ ई० ।

(४) ,, —क्षीरस्वामीटीका सहित, शर्मा तथा सरदेसाई ।

(५) ,, — ,, के० जी० ओक, पूना, १९१३ ई० ।

(६) ,, — ,, स्व० डा० हरदत्त शर्मा, ओरियण्टल सीरीज, पूना, १९४१ ई० ।

(७) ,, — ,, टी० गणपति शास्त्री, त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज—१ ।

(८) 'अमरकोषोद्घाटन' टीका—भट्ट क्षीरस्वामी – बरोह का संस्करण ।

(९) 'अमरकोषविवेक' टीका —महेश्वर — सी० शास्त्री द्वारा सम्पादित ।

(१०) 'टीकासर्वस्व' —सर्वानन्द— टी० गणपति शास्त्री का संस्करण ४ खण्डों में, त्रिवेन्द्रम् ।

(११) 'त्रिकाण्डचिन्तामणि'—रघुनाथ चक्रवर्ती—चन्द्रकान्त तर्कालंकार, कलकत्ता, शक १८२३ ।

(१२) 'पदचन्द्रिका' टीका —रायमुकुट —संस्कृत कालेज, कलकत्ता, १९६६ ई० ।

(१३) 'व्याख्यासुधा' टीका —भानुजिदीक्षित —पं० शिवदत्त द्वारा सम्पादित ।

(१४) अग्निपुराण—पं० बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६६ ई० ।

(१५) अमरमण्डन—कृष्णसूरि—वी० राघवन द्वारा प्रकाशित, पूना, १९४९ ई० ।

(१६) अर्थविज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना ।

(१७) अभिधानप्पदीपिका—मोग्गलान थेर—मुनिजिनविजय द्वारा संपादित, गुजरात पुरातत्त्व मन्दिर, ग्रन्थावली, अहमदाबाद से प्रकाशित, वि० सं० १९८० ।


CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(१८) कल्पद्रुकोष—केशव—प्रो० रामावतार शर्मा द्वारा प्रकाशित, बड़ौदा ओरियण्टल —इंस्टीट्यूट, १९२८ ई० ।

(१९) कालिदासकोष—सुरेशचन्द्र बैनर्जी द्वारा सम्पादित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, १९६८ ई० ।

(२०) 'काशिकावृत्तिः' ( न्यासमंजरीसहित ) प्रथम भाग—प्राच्य भारतीय प्रकाशन, वाराणसी, १९६५ ई० ।

(२१) काशिका-विवरण-पंजिका—श्री शचंद्र चक्रवर्ती द्वारा प्रकाशित, ढाका विश्व-विद्यालय, १९२३ ई० ।

(२२) काव्यमीमांसा—राजशेखर—गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज ( वो० ४–१ ) बड़ौदा, १९३४ ई० ।

(२४) कौटिल्य अर्थशास्त्र—पण्डित पुस्तकालय, काशी, सं० २०१६ ।

(२४) गुप्त-साम्राज्य का इतिहास ( द्वितीय खण्ड )—डा० वासुदेव उपाध्याय ।

(२५) गुप्तकालीन सांस्कृतिक इतिहास—डा० वासुदेव उपाध्याय ।

(२६) त्रिकाण्डशेष—पुरुषोत्तमदेव—क्षेमराज श्रीकृष्णदास द्वारा प्रकाशित, बम्बई, १९१६ ई० ।

(२७) धन्वन्तरिनिघण्टु—श्री वी० जी० आप्टे द्वारा प्रकाशित, आनन्ददेव संस्कृत सीरीज, संख्या ३३, १९२७ ई० ।

(२८) नागरी प्रचारिणी पत्रिका—वर्ष १९५९, अंक–१ 'शब्द-संयोजन के प्रकार' ह० भट्टाचार्य

(२९) पाणिनीय शिक्षादिसंग्रह—पं० कनकलाल शर्मा द्वारा संशोधित, विद्याविलास प्रेस, काशी से प्रकाशित ।

(३०) पर्यायवाची कोष—भोलानाथ तिवारी ।

(३१) बुद्धचरित—अश्वघोष—किटेल द्वारा सम्पादित, आक्सफोर्ड, १८९३ ।

(३२) भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, तृ० सं०, १९६३ ई० ।

(३३) भरतनाट्यशास्त्र—(१) मोतीलाल बनारसी दास, १९६४ ई० में प्रकाशित ।
(२) गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, १९२६ ई० ।

(३४) महाभाष्य शब्दकोष—पं० श्रीधरशास्त्री पाठक एवं पं० सिद्धेश्वरशास्त्री द्वारा भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना से १९२७ ई० में प्रकाशित ।

(३५) लिंगानुशासन—हर्षवर्धन – मद्रपुरी विश्वविद्यालय संस्कृत कार्यालय से प्रकाशित, १९३० ई० ।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

(३६) ,, --दुर्गसिंह-- दत्तात्रेय गंगाधर कोपरकर द्वारा प्रकाशित, डेकन कालेज, पूना, १९५२ ई०।

(३७) ,, --वामन -- गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज से प्रकाशित।

(३८) वैदिक कोष--डा० सूर्यकान्त।

(३९) वैदिक वाङ्मय का इतिहास--प्रो० भगवद्दत्त।

(४०) विश्वप्रकाश—महेश्वर—चौखम्बा संस्कृत सीरीज, बनारस, १९११ ई०।

(४१) वैदिक पदादिसूची—भाग २—एन० एस० सोनटक्के तथा सी० जी० काशीकर द्वारा संपादित, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, १९५१ ई०।

(४२) शाश्वतकोष—नारायणनाथजी कुलकर्णी द्वारा प्रकाशित, ओरियण्टल बुक एजेन्सी, पूना, १९३० ई०।

(४३) सामान्य भाषा-विज्ञान—डा० बाबूराम सक्सेना, इलाहाबाद, २०१३ वि०।

(४४) संस्कृत साहित्य का इतिहास—ए० बी० कीथ ( हिन्दी संस्करण )।

(४५) सौन्दरनन्द--अश्वघोष--संस्कृत भवन प्रकाशन, विहार, १९५९ ई०।

(४६) सम्मेलन पत्रिका--भाग ४६, संख्या ३, संस्कृत में लिंगानुशासन साहित्य।

(४७) हिन्दुस्तानी--भाग १९, अंक २, अप्रैल, जून १९५८ ई०, संस्कृत में कोष साहित्य का इतिहास, पं० बलदेव उपाध्याय।

(४८) हिन्दी-कोष-साहित्य--डा० अचलानन्द जखमोला--हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग विश्वविद्यालय, १९६४ ई०।

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

( अंग्रेजी )

1. Amarakosha ( According to Aufrecht—Cat. Cat. ) Calcutta, Stomepole Press, 1854 ( Bengali Character )
2. ,, edited by J. Vidyasagar, Calcutta 1675
3. ,, edited by Pt. Durga Prasad, K. P. Parab and Pt. Sivadatt, Bombay N. S. Press 1889
4. ,, edited with English interpretation and annotation by H. T. Colebrooke, Serampore 1809, 1825 ( II ed. ). Calcutta 1891 ( III ed. )
5. ,, in French in 2 Vols., Paris 1839.
6. ,, with Tibetan Version, ed. by MM. Satish Chandra Vidyabhushan, Calcutta 1911-12.
7. ,, in Italian, edited by P. Paulino. Romae, 1798.
8. The Amarakosha in Tibet—edited by Dr. Lokesh Chandra, Sutta-Pitaka Series, Indo Asian Literature Vol. 28, Pub. by International Academy of Indian Culture, New Delhi.
9. An Introduction to Comparative Philology—P. D. Gune.
10. Apte's English Sanskrit Dictionary.
11. A Comparative Grammar of the Dravidian—Rev. Robert Caldwell, Treibner & Co. (London) 1875.
12. A Concise Etymological Sanskrit Dictionary—Manfred Mayrhofer, Heidelberg 1956.
13. A Dictionary of Synonyms in the principal Indo-European languages, C. D. Buck. Pub. by University of Chicago Press,
14. A New History of Indian People, Vol. VI—R. C. Majumdar Pub. by The Bhartiya Itihasa Parishad.
15. Annals of The Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, Vol. VI 1925.
16. Bikaner MSS. Cat. No. 1392.
17. Bhandarkar Oriental Research Institute, 1886-92, MSS. No. 1027, Folio 30.
18. Comparative Grammar of the Greek Language—Joseph Wright, 1912.
19. Collected Works—Wilson.
20. Complete Sanskrit Grammar—Prof. Benfey (Dr. Muir's Translation)

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

21. Catalogus Catalogorum—Aufrecht.
22. Die Indische Genaslehren mit dem text der Linganusasana des Catyayana, Harsha Varadhana, Vararuci, Kiel 1880 ed. by Dr. Otta Franke.
23. Descriptive Catalogue of Royal Asiatic Society (Bombay Branch) No. 176-7.
24. Descriptive Catalogue (Madras) 23, No. 132-84.
25. Die Indische Worterbucher—Theodore Zacharie, Strasfurg 1897.
26. Descriptive Catalogue of Sanskrit Manuscripts Vol. VI 1931 Pub. by The Asiatic Society of Bengal.
27. Des. Cat. of MSS. in the Bombay University Library—1/41.
28. Des. Cat. of MSS (Tanjore) 9, Nos. 4960-65.
29. Essays on Indology—Dr. S. V. Shastri, Sri Bharat Bharati Pvt. Ltd., Delhi 1963.
30. Govt. MSS. Library in The Bhandarkar Oriental Research Institute, Des. Cat. Vol. XVI Pt. I nos. 105-10.
31. Indices & Appendices to the Nirukta—L. Sarup. Punjab University, Lahore. 1929.
32. India Office Catalogue No. 2736/37.
33. Indian Antiquary—Oct. 1912.
34. Indian Catalogue Vol. VI.
35. India : What can it teach us—Max Muller, I edition.
36. India Office Catalogue II—Keith.
37. Indian Culture—Prof. Das Gupta.
38. Indian Historical Quarterly—18.
39. Introductory Linguistics—Robert A. Hall.
40. Journal of Bihar and Orrisa Research Society Vol. XXI 1935.
41. Journal of Oriental Research, Madras, Vol. V, T. R. Chintamani.
42. Kuppuswamin Commemoration Volume, 1935, Article by P. K. Gode.
43. Language—Leonard Bloomfield.
44. Lexicography—Prof. S. M. Katre, Annamalai University Publications in Linguistics No. 6. 1965.
45. Miscelleneous Essays—H. T. Colebrooke, Vol. II, Madras 1872.
46. New Indian Antiquary 7, 174.
47. Notices of Sanskrit MSS—R. Mitra, 10, No. 4105.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

48. Oxford Catalogue of MSS., No. 451.
49. Problems in Lexicography—Fred-W. Householder & Sol Saparta, Pub. by Mouton & Co.
50. Persepolis Treasury Tablets—Cameron, Chicago 1948.
51. Rangachari's Catalogue of Sanskrit MSS, Govt. Oriental Library, Madras, Vol. III.
52. Sanskrit Poetics—S. K. De.
53. Sanskrit—Wilson, Pub. in 1819.
54. Sanskrit English Dictionary—Monier Williams, Oxford 1959.
55. The History of Sanskrit Lexicography—Dr. M. M. Patkar, Deccan College Post Graduate & Research Institute, Poona 1948, An unpublished Thesis.
56. The History of Sanskrit Literature—A. Wefer Trubner & Co. London. 1914.
57. The Classical Age—Bharatiya Vidya Bhawan, Bombay.
58. The Sanskrit Language—T. Burrow, Pub. by Faber & Faber Ltd., (London).
59. The Meaning of Meaning--Ogden & Richards.
60. The Nighantu & the Nirukta--Dr. L. Sarup, Punjab University. 1927.
61. The Nirukta—Hannes Skold., Oxford University Press, 1926.
62. The Vakataka Gupta Period—Majumdar and Altekar.
63. The Systems of Sanskrit Grammar—S. K. Belvalkar.
64. The Relation of Lexicon and Grammar—H. A. Gleasojr jr.
65. Vikrama Commomoration Vol. XVD, Scindia Oriental Institute, Ujjain 1948.
66. Vaishnavism—Bhandarkar.
67. Words and their Use—Stephen Ullmann, Fredrick Muller Ltd. ( London )
68. Webster's Dictionary of Synonyms.
69. Zeitschnift der Deutschen Morganlandischen Gesellochaft.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

Oxford Catalogue of MSS., No. 451.
Problems in Lexicography—Fred. W. Householder & Sol Saporta, Pub. by Mouton & Co.
Persepolis Treasury Tablets—Cameron, Chicago 1948.
Rangacharya's Catalogue of Sanskrit MSS. Govt. Oriental Library, Madras, Vol. III.
Sanskrit Poetics—S. K. De.
Sanskrit—Wilson. Pub. in 1819.
Sanskrit English Dictionary—Monier Williams, Oxford 1899.
The History of Sanskrit Lexicography—Dr. M. M. Patkar, Deccan College Post Graduate & Research Institute, Poona 1948, An unpublished Thesis.
The History of Sanskrit Literature—A. Weber Trubner & Co. London. 1914.
The Classical Age—Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay.
The Sanskrit Language—T. Burrow, Pub. by Faber & Faber Ltd., (London).
The Meaning of Meaning—Ogden & Richards.
The Nighantu & the Nirukta—Dr. L. Sarup, Punjab University, 1927.
The Nirukta—Hannes Skold., Oxford University Press, 1926.
The Vakataka Gupta Period—Majumdar and Altekar.
The Systems of Sanskrit Grammar—S. K. Belvalkar.
64. The Relation of Lexicon and Grammar—H. A. Gleason jr.
Vikrama Commemoration Vol. XVD, Scindia Oriental Institute, Ujjain 1948.
Vaishnavism—Bhandarkar.
Words and their Use—Stephen Ullmann, Fredrick Muller Ltd., (London)
Webster's Dictionary of Synonyms.
Zeitschrift der Deutschen Morgenlandischen Gesellschaft.

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection

## भावप्रकाशनम्

### सुविस्तृत भूमिका-टिप्पणी-हिन्दीभाष्यानुवादसहित

हिन्दीभाष्यानुवादकार—डॉ० मदन मोहन अग्रवाल

( उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत )

शारदातनय का भावप्रकाशन संस्कृत-नाट्य-शास्त्र की परम्परा का एक अद्वितीय रत्न है। भरत का नाट्यशास्त्र नृत्य और संगीत प्रधान है। उनके शिष्य कोहल ने लोकजीवन से सम्बन्ध रखने वाली उन सभी कलाओं, गीतों और उपरूपकों का विश्लेषण किया जिनके बीज केवल भरत में मिलते हैं या जो अछूते रह गये हैं। सागरनन्दी, रामचन्द्रगुणचन्द्र आदि ने भरत और अभिनव गुप्त के आधार पर नाट्यविद्या को सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया था। अनेक कश्मीरी चिन्तकों ने नाट्यविद्या की विवृत्ति की थी, जिनके अब केवल नाम यत्र तत्र सुरक्षित हैं। ऐसा जान पड़ता है कि शारदातनय के समक्ष नाट्यशास्त्र की अद्भुत परम्परा वाली व्याख्या-पद्धति अवश्य उपलब्ध रही होगी। शारदातनय ने १२ वीं शताब्दी तक की नाट्यशास्त्रीय परम्परा को भावप्रकाशन में बहुत कौशल के साथ उपनिबद्ध कर दिया है। नाट्यतत्त्व और काव्यतत्त्व दोनों एकत्र भावप्रकाशन में देखे जा सकते हैं। किन्तु शारदातनय को इतने से संतोष नहीं था। वे संगीत के परम मर्मज्ञ थे। संगीत की पारसीक परम्परा से भी वे परिचित हो चुके थे, साथ ही संगीत की दाक्षिणात्य शैली से भी वे अवगत थे। अतः शारदातनय ने बहुत ही उदारता के साथ भावप्रकाशन में इन सब को एक में गूँथ दिया है। १००–००

---

## JIVAGOSVAMI'S RELIGION OF DEVOTION AND LOVE

( BENGAL VAISNAVISM )

By

**Jadunath Sinha M. A. Ph. D.,**

*Premchand Roychand Scholar*

Retired Professor of Philosophy, Meerut College, Meerut.

Price Rs. 85–00

---

श्रीराजशेखरप्रणीतं

## बालरामायणम्

हिन्दीव्याख्यासमेतम्

व्याख्याकारः—डा० गङ्गासागर राय

मूल्य १००–००


CC-0. Nepal Sanskrit Academy, Kathmandu Collection